कहानी-कला
की
आधार शिलाएँ

दुर्गाशंकर मि
एम०

★
प्रकाशक—
नवयुग ग्रन्थागार
सी-७४७ महानगर
लखनऊ

★
प्रथमावृत्ति
अक्टूबर १९५८

★
मूल्य
चार रुपये

★
गामा प्रेस
नजीराबाद लखनऊ।

बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न सुपरिचित साहित्यकार

भाई

डॉ० प्रभाकर माचवे

को

सप्रेम

नागपुर निवास की उन मधुर स्मृतियों के उपलक्ष्य में जबकि प्रातः शाम बैठे-बैठे
ही विभिन्न साहित्यिक समस्याओं पर वार्तालाप छिड़ जाता था

और

[illegible] इसी प्रकार की बातचीत के मध्य लेखक को प्रस्तुत पुस्तक के लिखने
की प्रेरणा मिली ....

क्यों, क्या और कैसे ?

यद्यपि एक स्थल पर इन पंक्तियों के लेखक ने यह स्वीकार किया है कि अतृप्ति ही जीवन की उन्नति में सहायक सिद्ध होती है और तृप्त हृदय कभी भी पूर्ण उत्सव का आनन्द प्राप्त नहीं कर पाता क्योंकि तृप्ति के पश्चात् विकास-पथ पर अग्रसर होने वाले चरणों में शिथिलता आ जाने की पूर्ण सम्भावना रहती है परन्तु इस पुस्तक को प्रकाशित रूप में देखकर मुझे पहली बार बहुत कुछ अंशों में सन्तोष हो रहा है क्योंकि इसमें मेरा [illegible] प्रथम बार उस रूप में प्रस्तुत हो सका है जिस रूप में कि मैं उसे प्रस्तुत करना चाहता था। यों तो यह मेरी सर्वप्रथम कृति नहीं है और पिछले तेरह वर्षों में अनेक गद्य पद्य रचनाओं के साथ-साथ यदि मैं उन साधारण व्यवसाय परीक्षोपयोगी पुस्तकों को तालिका से अलग कर दूँ तो यह मेरी दसवीं [illegible] पुस्तक अवश्य कही जा सकती है। पिता अपनी सभी सन्तानों से अवश्य प्रेम करता है और इसी प्रकार लेखक के हृदय में भी अपनी सभी कृतियों के प्रति स्वाभाविक ही प्रेम रहना चाहिए परन्तु मैं अपनी अभी तक प्रकाशित सभी पुस्तकों को उस तरह दृष्टि से हर्षित न हो सका क्योंकि वे उस रूप में प्रस्तुत ही नहीं हुई जिस रूप में उन्हें प्रस्तुत होना चाहिए था। वस्तुतः अभी तक प्रकाशित कृतियों में से अधिकांश पुस्तकें इस पुस्तक के प्रकाशक के यहाँ से ही प्रकाशित हुई हैं और लेखक तथा प्रकाशक के मध्य दूसरा मात्र सौ मील की दूरी का अन्तर रहा है अतः लेखक को कभी यह जानने का सौभाग्य ही न प्राप्त हो सका कि आखिर उसकी पुस्तक किस रूप में छप रही है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि इस पुस्तक के प्रकाशक श्री रामचन्द्र तिवारी मेरे अभिन्नतम श्री रामविलास जी पाण्डेय के [illegible] ग्रामीण रिश्ते से मामा होते हैं और इस प्रकार वे मेरे भी मामा हुए लेकिन मेरा उनसे किसी भी प्रकार का कुछ परिचय या सम्पर्क नहीं था अतः मैं इस तथ्य से पूर्णतः अनभिज्ञ था कि वह प्रकाशन-सम्बन्धी अपेक्षित जानकारी रखते भी या नहीं। अस्तु अनभिज्ञता के कारण इसका परिणाम यही हुआ कि उनके द्वारा प्रकाशित होने वाली प्रकाशन संस्था से जब आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित की तब वह उन्हें न तो शुद्ध रूप में प्रकाशित ही कर सकी और न उन पर कैसी [illegible] ही ध्यान दे सकी कि उनके लिए [illegible] आवश्यक थी। हाँ पिछले समय [illegible] गुरु प्रथा और पूर्णतया [illegible] विचार [illegible] को लेकर [illegible] प्रकार [illegible]

हुआ क्योंकि उनके प्रकाशकों ने अपनी प्रकाशकीय का परिचय उसके माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'कहानी-कला की आधार शिलाएं' को देखकर मुझे इसलिए विशेष हर्ष हो रहा है कि प्रथम बार उक्त सरयुग ग्रंथागार से कोई पुस्तक इस रूप में प्रकाशित हो सकी है। मुझे भी इस बात का श्रेय श्री तिवारी जी को न मिलकर मेरे मित्र श्री [illegible] श्री प्रसाद तथा राम प्रेस के अन्य कर्मचारियों को प्राप्त हो जिनके सहयोग से मैं इसे इस रूप में प्रस्तुत कर सका।

जैसा कि आप स्वयं विषय सूची से स्पष्ट हो जाता है प्रस्तुत पुस्तक में कहानी के सिद्धान्तों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। यों तो अब हिन्दी में सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थों की अधिकता भी हो गई है परन्तु वे सभी शुद्ध समीक्षात्मक कोटि में आते हैं और अपेक्षित ग्रन्थों में तो उन कृतियों की संख्या बहुत ही न्यून है जिनमें कि साहित्य के किसी अंग-विशेष का ही विशद सैद्धान्तिक निरूपण किया गया हो। उदाहरणार्थ कहानी के सम्बन्ध में जब हम विचार करने बैठते हैं तब हम यह देखकर निराश होना पड़ता है कि हिन्दी में उसके तत्वों के सम्बन्ध में सम्पूर्ण प्रकाश डालने वाली पुस्तकों का निरा अभाव सा है। इसके विपरीत पाश्चात्य साहित्य में कहानी के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं और अभी भी लिखे जा रहे हैं। जो पुस्तकें हिन्दी में इस सम्बन्ध में प्रकाशित भी हुई हैं उनमें केवल श्री विनोदशंकर व्यास की 'कहानी कला' और डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा की 'कहानी का रचना-विधान' ही उल्लेखनीय हैं लेकिन इन दोनों कृतियों से पाठकों का पूर्ण समाधान नहीं हो पाता। 'कहानी कला' तो अत्यन्त लघु आकार की पुस्तक है और वह उस समय प्रकाशित हुई थी जबकि हिन्दी कहानियों का विकास हो रहा था अतः उसमें न तो कथा के सभी तत्वों का सम्यक निरूपण ही हो सका और न उन नवीन सिद्धान्तों पर ही प्रकाश डाला गया जिनसे कि हमारी कहानी अनुप्राणित हो रही है। इसके विपरीत 'कहानी का रचना-विधान' एक सफल कृति है और उसके रचयिता डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने बड़े ही सुलझे हुए रूप में कहानी के सिद्धान्तों का विवेचन-विश्लेषण किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर पद को सुशोभित करने वाले शर्मा जी को आलोचना सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य ग्रन्थों का अच्छा खासा गहन अध्ययन है और उनकी विचारशीलता उस कृति में पद पद पर लक्षित भी होती है लेकिन शर्मा जी भूल गए [illegible] के लिए [illegible] कि [illegible] भी अपनी पुस्तक के रूप में विषय अधूरा रह जाए [illegible]। 'कहानी का रचना विधान' में कहानी के सभी तत्वों का विशद विवेचन नहीं किया गया और न नई कहानियों [illegible] वाली कतिपय नाम विशेषताओं का ही उल्लेख किया गया है। [illegible] प्रथम दो [illegible] और [illegible] (विवेचन) द्वारा पुस्तक को [illegible] के कारण ही [illegible] अपेक्षा [illegible] [illegible] [illegible] इस प्रकार कहानी कला के

सम्बन्ध में एक ऐसी विशद सैद्धान्तिक पुस्तक की आवश्यकता अभी भी महसूस की जा रही थी जिसमें कि कहानी के सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया गया हो और इसी अभाव को लक्ष्य कर प्रस्तुत कृति को प्रकाशित किया है ।

मेरी यह पुस्तक कहानी-कला की आधार शिलाएं लगभग पौने दो सौ पृष्ठों की है जिसमें कि कहानी का स्वरूप कहानी का कथानक और उसकी विशिष्टताएं, कहानी में पात्र और चरित्र-चित्रण कहानी में कथोपकथन कहानी में देश-काल तथा वातावरण कहानी की भाषा शैली और उसकी विविध प्रणालियां तथा कहानी का उद्देश्य नामक सात अध्याय हैं । यहां अपनी इस पुस्तक के सम्बन्ध में मैं कुछ भी कहना उचित नहीं समझता और यह कार्य तो उन पाठकों तथा विचारकों का ही है जो कि इसका अनुशीलन करेंगे लेकिन इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मैंने अपनके एवं अपुष्ट विचारों से अपनी पुस्तक को बचाने का भरसक प्रयास किया है और साथ ही कहानियों के आवश्यक उदाहरण देते समय नवीन से नवीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिससे कि पाठकों को कहीं भी नीरस विश्लेषण न प्रतीत हो । अपने प्रयास की पूर्ण सफलता असफलता या आंशिक सफलता असफलता का निर्णय मैं अब इसके पाठकों एवं विचारकों पर ही छोड़ रहा हूँ लेकिन यह यह निवेदन कर देना भी उचित समझता हूँ कि इस पुस्तक के लेखन और प्रकाशन की भी एक कहानी है जिससे परिचित हुए बिना इसके सम्बन्ध में कोई निर्णय करना उचित न होगा ।

आज से चार-पांच वर्ष पूर्व स्वर्गीया प्रो॰ सुशीला अवस्थी एम॰ ए॰ शास्त्री ने अपने महाविद्यालय के एक साहित्यिक समारोह में कहानी की कला के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए मुझे आमंत्रित किया था और उनके इस अनुरोध को स्वीकार कर मैंने एक विस्तृत भाषण उस समारोह में दिया जो कि कालांतर में पत्र पत्रिकाओं में लेखमाला के रूप में प्रकाशित भी हुआ । मेरा विचार उस भाषण को (जिसको कि बाद में निबंध का रूप प्रदान कर लिया था) अपने निबंध संग्रह 'निबन्ध की रेखाएँ' में संगृहीत कर देने का था परन्तु 'अनुभूति और अध्ययन' के पश्चात मेरे किसी निबन्ध संग्रह का प्रकाशित होने का सौभाग्य ही न मिल पाया अतः उक्त निबंध उसी रूप में पड़ा रहा । कुछ समय पश्चात सन् ४६ में एक दिन भाई प्रभाकर जी माचवे से—जो कि उन दिनों आल इंडिया रेडियो स्टेशन नागपुर में थे—किसी विषय पर वार्तालाप करते समय अचानक मुझे उक्त निबंध को पुस्तक का रूप दे देने की इच्छा हुई और इस प्रकार लगभग पन्द्रह दिनों के सतत परिश्रम के पश्चात कहानी-कला की आधार शिलाएं अपने प्रथम रूप में तैयार हो गई । इस प्रथम रूप की प्रतिलिपि तैयार करते समय मुझे भाई रामाचन्द्र शुक्ल और उनके अनुज गोपालकृष्ण शुक्ल का अत्यधिक सहयोग मिला है अतः उन दोनों बन्धुओं का मैं यहां हृदय से आभारी हूँ ।..........इस पुस्तक का यह प्रथम रूप आकार में कोई बहुत विस्तृत न था और यह स्वाभाविक ही मुझे तनिक भी सन्तोष नहीं होता कि उसमें पर्याप्त परिश्र

भी रह गई थी। समय बीतता गया और पाण्डुलिपि तैयार हो जाने पर भी कतिपय उलझनों के कारण उसे प्रकाशित करवाने की ओर मेरा ध्यान नहीं गया। कालान्तर में सन् ५६-५७ में भाई दिनकर शर्मा ने जो कि मेरी पुस्तक 'हिन्दी पंचरत्न' के प्रकाशक हैं और जिन्होंने बहुत ही कम आयु में प्रकाशन सम्बन्धी अच्छी खासी योग्यता प्राप्त कर ली है, अपनी प्रकाशन संस्था भारतीय ग्रन्थमाला लखनऊ से कहानी कला की आधार शिला को प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की और मुझसे मौखिक स्वीकृति भी प्राप्त कर ली। उन्होंने प्रकाशन समाचार एवं हिन्दी प्रचारक में इसकी सूचना भी छपवा दी लेकिन उस पुस्तक उन्हें प्रकाशनार्थ न दी जा सकी। एक ओर तो उस समय मेरी धारणें ठीक न थीं और दूसरी ओर मेरे एक प्रकाशक महोदय ने जो कि मुझ पर 'हावी' होना चाहते थे तथा जिनका सिद्धान्त यह रहा है कि 'जहाँ जाती वहाँ सूखी पाती है' उनके हृदय में मेरे सम्बन्ध में बहुत सी भ्रान्त धारणाएँ पैदा कर दीं। फलतः यह पुस्तक विश्राम ही करती रही और इसका एक लाभ यह हुआ कि मैंने इसे पुनः संशोधित एवम् परिवर्धित करना चाहा। समय की कमी निरन्तर अस्वस्थता एवं आध्यात्मिक जीवन की गीतमयताओं के मध्य उसका संशोधन कोई सहज काम नहीं था और इसीलिए उसे परिवर्धित एवं संशोधित करने में काफी समय लग जाने पर भी बहुत सी बातें छूटी रह गईं जिन्हें विस्तार से उसमें देना चाहता था। ......समय बीतता गया और कुछ भी इधर उधर घरेलू झंझटों में जिन्दगी बिताने के कारण इसकी ओर ध्यान देने का समय ही न मिला और जब अगस्त ५८ में मैंने लखनऊ को स्थायी निवास स्थान बनाने का निश्चय किया तभी मैं इसकी ओर भी ध्यान दे सका। चूँकि इधर जीवनयापन के लिए अन्य कार्य में व्यस्त भी रहना पड़ता था अतः न तो मैं कहीं एक पर अवकाश कुछ लिख ही पाया और न अपनी कुछ अधूरी पाण्डुलिपियों को ही पूर्ण कर सका और न इस पुस्तक की ही प्रतिलिपि तैयार हो पाई। कुछ [illegible] फिर भी काफी [illegible] लेकिन इसमें बहुत कुछ [illegible] है कि लखनऊ की मिट्टी में व्यक्ति को अकर्मण्य बनाने का गुण है और यहाँ यह कर व्यक्ति जितना अधिक राजसी सुख प्राप्त करने के लिए आतुर हो उठता है उतना कर्म में रत रहने की इच्छा उसे नहीं होती। ठीक इसके विपरीत [illegible] की मिट्टी मनुष्य में कर्मण्यता ला देती है और वहाँ का व्यक्ति भौतिक सुखों का [illegible] कर्तव्य पर सर्वदा अग्रसर रहना चाहता है। मेरे परम शुभचिन्तक बन्धु डॉ० [illegible] जिन्होंने अपनी प्रेरणा एवं अनुकम्पा ही से लखनऊ को अपना स्थायी निवास बनाने का निश्चय किया और जिनके [illegible] सहयोग एवं स्नेह के कारण मैं अपना [illegible] इस नगरी में रह सका—अतएव मुझसे एक दो बार कहा कि मैं कहानी कला की आधार शिला की प्रतिलिपि तैयार करूँ तथा प्रस्तुत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

की निपुणता के साथ-साथ अपूर्व उत्साह एवं लगन भी है—इस पुस्तक के कतिपय अंशों को देख अपने मालवीय प्रकाशन लखनऊ से इसे प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। मैंने उन्हें स्वीकृति प्रदान करते हुए यह शर्त भी जोड़ दी कि यदि वे अगस्त ५८ तक इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित समझौता कर लेंगे और इसे इसी वर्ष प्रकाशित हो जाने का विश्वास मुझे दिला देंगे तब इस पुस्तक के प्रकाशन का सर्वप्रथम अधिकार उन्हीं को रहेगा परन्तु अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने अगस्त के अंत तक मुझे कोई सूचना नहीं दी। इधर श्री रामेश्वर तिवारी ने मुझसे इस बात के लिए पुनः पुनः आग्रह किया कि यह पुस्तक उन्हें ही प्रकाशनार्थ मिले और न चाहते हुए भी तथा हृदय में उनके प्रति स्नेह रहते हुए मुझे यह पुस्तक उन्हें इसीलिए देनी पड़ी क्योंकि यदि मैं ऐसा न करता तो कदाचित प्रतिलिपि तैयार करने तक इसके प्रकाशन की प्रतीक्षा करने में वर्षों लग जाते। यहाँ मैं इस बात को भी स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि अपनी कृतियों को प्रकाशित करवाने के लिए मुझमें कभी भी कोई विशेष उत्साह नहीं था और मैंने प्रकाशकों से सम्पर्क बढ़ाने के कभी सक्रिय प्रयास नहीं किए अतः या तो पुस्तकें बहुत दिनों तक पड़ी सड़ती रहीं या फिर जिसने माँगा उसे ही दे दी गयीं। यदि मैं अन्य अधिकांश लेखकों की भाँति प्रकाशकों से सम्पर्क स्थापित करता तो निश्चय ही मेरी कृतियाँ इनसे अधिक सुन्दर रूप में प्रकाशित होतीं और मुझे यह क्षोभ न होता जो कि अब उन्हें देख कर हो रहा है। इस प्रकार यह पुस्तक उन्हीं प्रकाशक महोदय के यहाँ से प्रकाशित हो रही है जिन्हें कि मैं कोई भी पुस्तक प्रकाशनार्थ न देना चाहता था लेकिन चूँकि नवयुग ग्रंथागार को इसका केवल प्रथम संस्करण प्रकाशित करने का ही अधिकार है अतः हृदय को पर्याप्त संतोष भी है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि प्रिंट आर्डर देते समय जब मैंने इस पुस्तक का अवलोकन किया तभी मुझे यह आवश्यक जान पड़ा कि शीघ्र ही इस पुस्तक का एक दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण तैयार किया जाय जिसमें कि रागों के सिद्धान्तों की चर्चा करते समय उन्हें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भी परखा जाय? भविष्य के गर्भ में क्या है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता अतः जब तक कि मैं ऊपरवर्णित रूप में इस पुस्तक का दूसरा संस्करण न तैयार कर लूँ तब तक मुझे इस पुस्तक से थोड़ा बहुत असंतोष सा बना ही रहेगा। आशा है पाठक तथा विचारक इसे अपना कर मुझे इस काम के लिए उत्साहित करेंगे कि शीघ्र ही इस पुस्तक का एक दूसरा समुचित संस्करण प्रकाशित करवाया जाए।

दुर्गाशंकर मिश्र

शारदीय पूर्णिमा सं० २०१५ वि०
२१४ [illegible] नगर
लखनऊ

की निपुणता के साथ-साथ अपूर्व उत्साह एवं लगन भी है—इस पुस्तक के कतिपय अंशों को देख अपने भारतीय प्रकाशन लखनऊ से इसे प्रकाशित करने इच्छा प्रकट की। मैंने उन्हें स्वीकृति प्रदान करते हुए यह शर्त भी जोड़ दी कि यदि वे अगस्त ५८ तक इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित समझौता कर लेंगे और इसे इसी वर्ष प्रकाशित हो जाने का विश्वास मुझे दिला देंगे तब इस पुस्तक के प्रकाशन का सर्वप्रथम अधिकार उन्हीं को रहेगा परन्तु अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने अगस्त के अंत तक मुझे कोई सूचना नहीं दी। इधर श्री रामेश्वर तिवारी ने मुझे इस बात के लिए पुनः पुनः बाध्य किया कि यह पुस्तक उन्हें ही प्रकाशनार्थ मिले और न चाहते हुए भी तथा हृदय में उनके प्रति सम्मान रखते हुए मुझे यह पुस्तक उन्हें इसीलिए देनी पड़ी क्योंकि यदि मैं ऐसा न करता तो कदाचित प्रतिलिपि तैयार करने तक इसके प्रकाशन की प्रतीक्षा करने में वर्षों लग जाते। यहां मैं इस बात को भी स्पष्ट कर देना उचित समझता हूँ कि अपनी कृतियों को प्रकाशित करवाने के लिए मुझमें कभी भी कोई विशेष उत्साह नहीं था और मैंने प्रकाशकों से सम्पर्क बढ़ाने के कभी समुचित प्रयास नहीं किए अतः या तो पुस्तकें बहुत दिनों तक पड़ी सड़ती रहीं या फिर जिसने मांगा उसे ही दे दी गयी। यदि मैं अन्य अधिकांश लेखकों की भाँति प्रकाशकों से सम्पर्क स्थापित करता तो निश्चय ही मेरी कृतियाँ इनसे अधिक सुन्दर रूप में प्रकाशित होतीं और मुझे यह क्षोभ न होता जो कि अब उन्हें देख कर हो रहा है। इस प्रकार यह पुस्तक उन्हीं प्रकाशक महोदय के यहां से प्रकाशित हो रही है जिन्हें कि मैं कोई भी पुस्तक प्रकाशनार्थ न देना चाहता था लेकिन चूंकि लखनऊ ग्रंथागार को इसका केवल प्रथम संस्करण प्रकाशित करने का ही अधिकार है अतः हृदय को पर्याप्त संतोष भी है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि प्रिंट आर्डर देते समय जब मैंने इस पुस्तक का अवलोकन किया तभी मुझे यह आवश्यक जान पड़ा कि शीघ्र ही इस पुस्तक का एक दूसरा संशोधित और परिवर्धित संस्करण तैयार किया जाय जिसमें कि रागिनी के सिद्धान्तों की चर्चा करते समय उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डाला जाय ? भविष्य के गर्भ में क्या है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता अतः जब तक कि मैं उपरवर्णित रूप में इस पुस्तक का दूसरा संस्करण न तैयार कर लूँ तब तक मुझे इस पुस्तक से थोड़ा बहुत असंतोष तो बना ही रहेगा। आशा है पाठक तथा विचारक इसे पसन्द कर मुझे इस बात के लिए उत्साहित करेंगे कि शीघ्र ही इस पुस्तक का एक दूसरा संशोधित संस्करण प्रकाशित करवाया जाय।

दुर्गाशंकर मिश्र

फाल्गुन पूर्णिमा सं० २०१५ वि०
२१८ [illegible] नगर
लखनऊ

सूची

विषय		पृष्ठांक

कहानी-कला

की

आधार-शिलाएँ

कहानी का स्वरूप

:१:

पाश्चात्य समीक्षक आर० के० लागू (R. K. Lagu) ने अपनी पुस्तक Introduction to Modern Stories from East & West में एक स्थल पर लिखा है : 'The storyteller has found a warm welcome and an eager audience in all ages and all countries. Young and old, the cultured and the illiterate—everyone succumbs to the spell which the storyteller casts upon us. The craving for a story is ingrained in us. It is in consequence of this that the storytelling tradition has suffered no break at any time and flourishes alike in the East and West.[1]' अर्थात् सभी समयों में और समस्त प्रदेशों में कहानीकार का सदा ही हर्षपूर्ण स्वागत होता रहा है तथा उसे अपने स्वागतार्थ उन्मुक्त जन समुदाय भी दृष्टिगोचर हुआ है। युवा तथा वृद्ध, सुसंस्कृत और असंस्कृत प्रायः समस्त श्रेणियों के व्यक्ति कहानीकार के उस मंत्र से विवश कि प्रभाव सब पर पड़ता है मुग्ध होने के हेतु लालायित रहते हैं। वस्तुतः कहानी के अंकुर हम सभी में विद्यमान हैं इसीलिए कहानी की परम्परा कभी विच्छिन्न नहीं हुई तथा पूर्व और पश्चिम दोनों में इसकी धारा समान रूप से प्रवाहित हो रही है।' इस प्रकार हम देखते हैं कि कथा-साहित्य दिन-प्रतिदिन अपने चरमोत्कर्ष की ओर उन्मुख होता जा रहा है और इस क्षेत्र में सर्वदा ही नूतन प्रति-

---

१ Tell-me-a story has been phrased on all tongues from the age when words were symbols scratched on stones and books were brick. Centuries ago at the gates of Bagdad beggars and petty merchants sat and passed the time with wonder tales of adventure and of man.

—International Short Stories Page 1

माएँ अवतरित होती रही हैं।[1] वस्तुतः मानव ने जिस दिन से भाषा द्वारा अपने भावों की अभिव्यक्ति करनी प्रारंभ की उसी दिन से उसने कहानी कहना और सुनना भी प्रारंभ कर दिया होगा अतः कथा-साहित्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम किस स्थान पर और किस रूप में हुई यह कहना तो सहज नहीं है लेकिन इतना तो निर्विवाद रूप से सर्वमान्य है कि उसका अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन है और यह सर्वकाल तथा सर्वदेश में विद्यमान रही है अतएव जैसा कि रिचर्ड बर्टन का कथन है "कहानी विश्व की सर्वाधिक प्राचीन वस्तु है। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि उसका आरंभ उसी समय हुआ होगा जब मनुष्य ने घुटनों के बल चलना सीखा हो।" इस प्रकार कहानी का आरंभ मानवसृष्टि के साथ ही हुआ है और उसका अंत भी प्रलय के साथ ही होगा तथा आदि मानव मनु और श्रद्धा की कहानी ही मानव जाति की सर्वप्रथम कथा है।

चूँकि कहानी का उद्भव हुए सहस्रों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं और मनुष्य के विकास के साथ-साथ कहानियों का रूप भी परिवर्तित होता चला गया अतः नया-नया रूप परिवर्तित करने वाली वस्तु को परिभाषा के चौखटे में बाँधना सहज साध्य नहीं है क्योंकि जिस प्रकार ईश्वर, प्रेम और सौन्दर्य आदि की निश्चित परिभाषाएँ अभी तक नहीं बन सकी हैं उसी प्रकार कहानी की भी एक सुनिश्चित परिभाषा निर्धारित नहीं हो सकती। स्मरण रहे विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टागुर का कथन है कि जीवन प्रतिक्षण एक सारगर्भित कहानी है अतः कथा क्या है और उसका स्वरूप क्या है इन प्रश्नों पर विभिन्न मत प्रस्तुत किए जा सकते हैं तथा जैसा कि श्री गुलाबराय जी का मत है "जो वस्तु दिन-दिन रूप बदलती हुई विकास को प्राप्त हो रही है उसकी परिभाषा देना उतना ही कठिन है जितना कि बिहारी की नायिका की तसवीर खींचना जो चतुर चितेरों को भी क्रूर बना देता है।"[2] चूँकि आधुनिक कथा साहित्य अपने प्राचीन रूप से पर्याप्त विभिन्न और विकसित है तथा उसके मूल में

---

१ हमारी सभ्यता के विकास के साथ साथ कहानियों के विषय तथा स्वरूप परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु उनका मूल तत्त्व वैसा ही अक्षुण्ण अपरिवर्तित बना रहता है। कहानी का मोह जीवन के प्रारंभ से लेकर जीवन के अंत तक का सहचर है। नानी की कहानी के बाद अध्यापक की कहानी का समय आता है। यौवन के प्रारंभ के साथ शृंगार रस की कहानियों का महत्व बढ़ने लगता है। जीवन के अंतिम दिनों में राम कृष्ण की कहानियाँ हमारा ध्यान आकृष्ट करने लगती हैं। संक्षेप में कहानी का प्रेम हमारे हृदयों में सदा बना रहता है।

—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास श्री कृष्णशंकर शुक्ल पृष्ठ २५४

२ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ठ २११)

अनेक विविध तत्व विद्यमान हैं अतः प्रत्येक पाश्चात्य या पौर्वात्य समीक्षक या लेखक ने अपने निजी दृष्टिकोण के अनुरूप ही कहानी को पारिभाषित किया है और जैसा कि डाक्टर जानसन ने एक स्थान पर कहा है "हम जानते हैं कि प्रकाश क्या वस्तु है लेकिन हममें से कोई भी यह नहीं बता सकता कि यह क्या है और कैसा है" ठीक इसी प्रकार की सम्मति कहानी की परिभाषा के सम्बन्ध में भी दी जा सकती है। साथ ही एक विचारक की दृष्टि में तो कथाप्रिय भावुक प्रज्ञावान और संस्कारसम्पन्न पाठक के सहयोग पर ही कहानी का विकास संभव है।[1] इतना ही नहीं कहानी के कई अन्य नाम भी प्रचलित हैं और जिस प्रकार प्राचीन भारतीय साहित्य में यह कथा, दंतकथा वार्ता आख्यायिका कादम्बरी, हितोपदेश तथा दृष्टान्त के रूप में प्रसिद्ध रही है इसी प्रकार अब आधुनिक काल में इसके कहानी (हिन्दी), लघुकथा (मराठी) शार्ट स्टोरी (अंग्रेजी) कोन्ते (फ्रेन्च) नौवेले (जर्मन) गल्प (बंगला), कथा (तमिल), टूंकी वार्ता (गुजराती) किस्सा (उर्दू) इत्यादि अनेक नाम प्रचलित हैं। अंग्रेजी साहित्य में कहानी का पर्यायवाची शब्द Story स्टोरी है और Story का मूल अर्थ a historical narrative or anecdote अर्थात् एक प्रकार का ऐतिहासिक इतिवृत्तात्मक वर्णन माना जाता है। यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि संस्कृत साहित्य में प्रचलित कहानी के पर्यायवाची शब्द आख्यान एवम् आख्यायिका का अर्थ भी ऐतिहासिक वर्णन का द्योतक ही है क्योंकि आख्या का शब्दार्थ कहना है और इस प्रकार आख्यान का अर्थ किसी पूर्ववृत्त को अभिव्यक्त करना माना जाता है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार तो आख्यायिका का पर्याय स्पष्ट रूप से इतिहास माना गया है। कहानी शब्द की उत्पत्ति 'कथानिका' या 'कथानक' से भी मानी जाती है। परन्तु आधुनिक युग में कथा ने कहानी की संज्ञा धारण कर ली है और क्रमशः उत्तरोत्तर पहले की भाँति उपदेश देना मात्र नहीं रहा है तथा उसमें उपयोगिता की अपेक्षा मार्मिकता और रसात्मकता पर बल दिया जाता है और इस बात का ध्यान रखते हुए कि वह मनोरंजन का साधन भी रहे उसमें जीवन के यथातथ्य चित्रण को ही प्रधानता दी जाती है। इस प्रकार जैसा कि डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने लिखा है "वर्तमान काल में आकर कहानी का जिस रूप से हम परिचित हो रहे हैं, अथवा जिस रूप का अत्यधिक विकास प्रचार हो रहा है उसमें न तो प्राचीन पद्धति का अनुसरण है, और न उसकी उपादेयता और न उस रचना प्रणाली से ही हमारा कोई सम्बन्ध रह गया है।"[2] स्मरण रहे कि विचारकों की दृष्टि में आधुनिक कहानियों का लेखनकार्य भी

---

1 Every work of every kind of art is a collaboration between th... one who can create and the others who can appreciate. The artist o... the short story needs a reader who is impressibl... emotional swiftly intelligent.

—The Short Story By Barry Pain Page 16

2 कहानी का रचना विधान—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (पृ० ४)

महत्व नहीं समझा जाता और इसके लिए उनमें उत्कट अनुभूति भी आवश्यक मानी जाती है।[1]

इसमें कोई संदेह नहीं कि श्री नंददुलारे वाजपेयी ने उचित ही लिखा है "वस्तुचयन की दृष्टि से आज की कहानी वास्तविकता का सच्चा आभास देती है। पुरानी कहानी उद्देश्य को प्रमुख मानकर विस्मयजनक कथा के सहारे अपनी उद्देश्य व्यंजना कर देती थी, उपदेश दे डालती थी; किन्तु नवीन कहानी शैली, वस्तु या साधनों को सजाने में अधिक व्यस्त रहती है यद्यपि ऐसा करने में साम्य का ध्यान छूटता नहीं। सच तो यह है कि वर्तमान कहानी अधिक कलापूर्ण और विश्वसनीय रूप में अपना कार्य पूरा करती है।"[2] स्मरण रहे जर्मनी में छोटी गद्य कथाएं उन्नीसवीं शताब्दी में ही 'नॉवेले' नाम से विकसित हो चुकी थीं और श्लेगेल तथा गेटे ने उनको पारिभाषित करते हुए कहा भी था "नॉवेले वह कथा है जिसमें कि एक ही विचित्र तथा वास्तविक घटना हो।" साथ ही सन १८७१ में हेसे का भी यही मत था कि "इसमें एक पूर्ण रूपरेखा होनी चाहिए तथा चरमोत्कर्ष भी अपेक्षित है।" इसी प्रकार फ्रांस में तो आरंभ में हर प्रकार की छोटी काल्पनिक कहानी कौन्ते कहलाती थी लेकिन आधुनिककालीन कौन्ते अंग्रेजी की शार्टस्टोरी के ही अनुरूप है। अतएव यह मानते हुए भी कि ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक हिंदी कथा साहित्य का भारतीय कथा साहित्य से क्रमागत संबंध है[3] हमें निःसंकोच रूप से यह भी स्वीकार करना चाहिए कि आधुनिक कहानी-कला पाश्चात्य कहानियों से विशेष रूप से प्रभावित है और इस प्रकार श्री गुलाबराय जी ने उचित ही लिखा है 'आजकल की हिंदी कहानियाँ जिनको गल्प आख्यायिका लघुकथा भी कहते हैं, हैं तो भारत की पुरानी कहानियों की ही संतति; किन्तु विदेशी संस्कार लेकर आई हैं। गदर के सूप की भाँति उनकी सामग्री प्रायः देशी रहती है, किन्तु काटछाँट अधिकांश में विलायती ढंग का होता

---

1 The first necessity of the short story, at the outset is neceasari ness. The story that is to say must spring from an impression or percepti-on pressing enough, to have made the writer write.

—Elizabeth Bowen

२ आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १९०)

३ "ऐतिहासिक दृष्टि से ऋग्वेद को संस्कृत आख्यान कथाओं और आख्यानों का मूल स्रोत मानना होगा क्योंकि संस्कृत के जितने आख्यान और आख्यायिकाएं ऋग्वेद में हैं वे बीजरूप अथवा संक्षिप्त रूप में आरम्भ होकर उपनिषदों निरुक्त बृहद्देवता रामायण महाभारत और पुराणों आदि में होती हुई अपने आख्यायिका या आख्यानक रूप में पूर्ण हुई हैं।"

—हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ८)

है।"[1] इस प्रकार कहानी-कला पर विचार करते समय हमें पाश्चात्य विचारकों के विचारों पर भी ध्यान देना होगा अतएव हम यहाँ पौर्वात्य तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रदेशों के समीक्षकों की कहानी सम्बन्धी परिभाषाएँ प्रस्तुत करेंगे।

पाश्चात्य जगत में अमेरिका के सुप्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलिन पो (Edgar Allen Poe) को आधुनिक कहानी का जन्मदाता माना जाता है और उन्होंने सन् १८४२ ई० में हाथन की कहानी 'Twice Told Tales' की आलोचना करते हुए कहानी की परिभाषा इस प्रकार की है 'A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting written to make an impression on the reader excluding all that does not forward that impression and final in itself' अर्थात् कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा हो कि एक बैठक में पढ़ा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव को उत्पन्न करने के लिये लिखा गया हो। उसमें ऐसी बातों को स्थान नहीं दिया जाता जो उसकी प्रभावोत्पादकता में बाधक होती हों और वह स्वतः पूर्ण होती है। स्पष्ट है एडगर एलेन पो ने तो कहानी की संक्षिप्तता पर जोर देते हुए यह भी लिखा है कि इसके पढ़ने में आधे घंटे से लेकर एक घंटे तक का समय लगना चाहिए। सुप्रसिद्ध कहानी लेखक एच० जी० वेल्स के अनुसार कहानी में भयानक, कारुणिक, मनोरंजक, सुन्दर और संपूर्ण रूप से चमत्कारपूर्ण घटनाओं में से किसी एक का चित्रण होना चाहिए जिससे कि पढ़ने में पन्द्रह से पचास मिनट तक समय लगता हो।[2] इसी प्रकार प्रोफेसर बाल्डू के शब्दों में "कहानी में एक ही चरित्र या एक ही घटनात्मक स्थिति में विभिन्न भावों का चित्रण होता है और उसे पूर्ण रूप से मार्मिक भी होना चाहिए।"[3] ह्यू वाकर ने तो मानव के प्रत्येक क्रिया-कलाप को ही कहानी माना है लेकिन हम इससे सहमत नहीं हैं कि जो भी मनुष्य करता है वही कहानी है। पुलेर की दृष्टि में "कहानी का विषय होता है एक प्रकाशित करने वाला तथा स्वयं आलोकित क्षण, चाहे वह सौन्दर्यपूर्ण हो चाहे भयपूर्ण चाहे विस्मयोत्पादक" और सीपोला के शब्दों में 'प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई कथानक संनिहित है, स्पष्ट है किन्तु कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ हमारे पूर्वजों की अपेक्षा कम घट गई हैं इसी दिशा में उनकी रहने के कारण देख नहीं पाती। लघु से लघु, छुद्र

1 काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृ० २११)

2 "It may be horrible or pathetic or funny or beautiful or profoundly illuminating having only this essential that it should take from fifteen to fifty minutes to read aloud."

3 "A short story deals with a single character or a series of emotions called forth by a single situation. The short story must be an organic whole."

से पुष्ट वस्तु में भी कुछ अभाव तत्व विद्यमान हैं और कहानीकार को उन्हें ही खोज निकालना है। एडविन हार्टन की दृष्टि में "आधुनिक कहानी वहाँ आरंभ होती है जहाँ घटना सड़क से आत्मा के अंदर प्रविष्ट होती है" तथा जैक लंडन का मत है "कहानी मूर्त, सम्बद्ध, त्वरागुणी, सजीव और रुचिकर होनी चाहिए।" ग्रैहम बेल-फौर के शब्दों में "मेरी दृष्टि में कहानी तीन प्रकार से लिखी जा सकती है, एक कथानक लेकर उसमें पात्रों के चरित्र की संयोजना की जाए, या एक पात्र लेकर उसके लिए घटनाओं का निर्माण हो या फिर एक विशिष्ट वातावरण लेकर उसके अनुरूप घटनाएँ और पात्र निर्मित हों" तथा स्टीवेंसन की दृष्टि में "कहानी जीवन भर की प्रतिनिधि नहीं, उसकी दिशाओं की ही अभिव्यंजना है" और गिल्बर्ट फ्रैंकन्यू का मत है "मेरा मुख्य उद्देश्य एक मनोरंजक घटनाक्रम चित्रित करना है जिससे कि मैं पहले शब्द से अंतिम शब्द तक पाठक को अपनी ओर आकर्षित कर सकूँ। जिस व्यक्ति में सुगठित, सुनिश्चित नाटकीय अंतवाली घटनाओं के लेखन की क्षमता नहीं है वह अपने आपको व्यर्थ ही कहानीकार और उपन्यासकार कहलाना चाहता है। डे० वी० हैसनबीन का कथन है "प्रभाव की एकता, कथानक की श्रेष्ठता, घटना की प्रधानता एक मुख्य पात्र और एक समस्या का समाधान-कहानी में ये पाँच गुण आवश्यक हैं" तथा वालपोल की दृष्टि में "कहानी में घटनाओं का ब्यौरा अपेक्षित है। उसे घटना दुर्घटना संकुल होना चाहिए, उसका प्रभाव तीव्र हो और विकास अप्रत्याशित। दुविधा के माध्यम से उसे संकट की परिस्थिति की ओर अग्रसर होना चाहिए"। वालपोल कहानी की स्थिति बस घुड़दौड़ की भाँति मानते हैं जिसका प्रारंभ और अंत दोनों ही महत्वपूर्ण होते हैं। आर० के० लागू (R. K. Lagu) के शब्दों में The modern story is a conscious literary effort. It is a cleverly planned artistic achievement अर्थात् आधुनिक कहानी सचेष्ट, साहित्यिक प्रयास है। यह सतर्कता से तैयार की गई एक कलात्मक पूर्णता है।

स्मरण रहे पाश्चात्य साहित्य में ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य में भी कहानी की परिभाषाएँ प्रचुरता के साथ उपलब्ध होती हैं। डा० श्यामसुन्दरदास के शब्दों में "आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा गया नाटकीय आख्यान है"[1] और प्रसाद जी तो आख्यायिका में सौन्दर्य की एक झलक का चित्रण करना और उसके द्वारा रस सृष्टि करना ही कहानी का उद्देश्य मानते हैं। सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री प्रेमचन्द का मत है कि "गल्प एक ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली उसका कथाविन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट

१ साहित्यालोचन—डा० श्यामसुन्दर दास (पृष्ठ १२९)

करते हैं। उपन्यास की भाँति उसमें मानवजीवन का संपूर्ण तथा बृहद्रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का सम्मिश्रण रहता है। यह एक ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे, सजे हुए हैं बल्कि एक गमला है, जिसमें एक ही पौधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टिगोचर होता है" साथ ही वे यह भी कहते हैं कि "कहानी वह ध्रुपद की तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं होता।"[१] श्री इलाचन्द्र जोशी के शब्दों में 'जीवन का चक्र नाना परिस्थितियों के संघर्ष से उल्टा सीधा चलता रहता है इस सुवृहत चक्र के किसी विशेष परिस्थिति की स्वल्प गति को प्रदर्शित करने, हृदय के भावों की किसी विशेष अवस्था के रंगों को रंजित करने में ही कहानी की विशेषता है।'[२] श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी कहानी को जीवन रहस्य की अभिव्यंजना मानते हुए कहते हैं 'रहस्य व्यक्ति के मानस में निवास करते हैं और उनका उद्घाटन घटनाओं द्वारा होता है। व्यक्ति समाज का अंग होता है। इस प्रकार प्रत्येक कहानी प्रकारान्तर से समाज की ही कहानी हुआ करती है।' साथ ही वे यह भी कहते हैं "जब तक कहानी चरित्र विशेष की दृष्टि नहीं होती, किसी व्यक्ति की अंतरात्मा का यथार्थ विशिष्ट प्रतिबिंब नहीं झलकता, उसके जीवन के रागात्मक अनुच्छ्वास शब्दों की काया नहीं ग्रहण करते तब तक कोई भी कहानी सही अर्थों में कहानी नहीं होगी।" वाजपेयी जी की दृष्टि में "कहानी मानव जीवन की उस वस्तुस्थिति और क्रिया कलाप का वर्णन है जो केवल घटना नहीं उस सत्य की कल्पना है जो घटना के एकान्त कोष में कहीं छिपा पड़ा रह गया है।'[३] श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार के शब्दों में "घटनात्मक इकहरे एकांत चित्र का ना कहानी है। साहित्य के सभी अंगों के समान रस उसका आवश्यक गुण है।" श्री विनयमोहन शर्मा के शब्दों में "कथा मानव जीवन का उत्स है और कुतूहल भी"[४] तथा श्री ललिताप्रसाद शुक्ल कहानी को घटना या चरित्र विशेष का संक्षिप्त रसयुक्त चित्रण" मानते हैं।"[५] श्री जैनेन्द्रकुमार ने तो इस कहानी क्यों लिखते हैं नामक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है 'यह तो एक भूख है जो निरन्तर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकाएं होती हैं, चिन्ताएं होती हैं और उनका उत्तर, उनका समाधान खोजने का पाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। उदाहरणों और मिसालों की खोज

१ कुछ विचार – श्री प्रेमचन्द (पृष्ठ ७)
२ साहित्य-सर्जना — श्री इलाचन्द्र जोशी (पृष्ठ २४)
३ प्रतिनिधि कहानियाँ — सं० श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी (पृष्ठ ६)
४ दृष्टिकोण — श्री विनयमोहन शर्मा (पृष्ठ)
५ साहित्य जिज्ञासा — श्री ललिताप्रसाद शुक्ल (पृष्ठ ३०)

होती रहती है। कहानी उस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर तो नहीं दे देती पर यह अवश्य कहती है कि शायद उत्तर इस रास्ते से मिले। वह सूचक होती है, कुछ सुझा देती है, और पाठक अपनी चिन्तन क्रिया के सहारे उस सूझ को ले लेते हैं।"[१] अज्ञेय जी की दृष्टि में तो "कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है एक शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।" इतना ही नहीं उनका तो यह भी मत है कि "कहानीकार एक प्रकार के मानसिक संघर्ष में जीता है। संघर्ष कला की जननी है। यह संघर्ष संकल्प और परिस्थिति में चला करता है। संघर्ष प्रगति को जन्म देता है।" श्री गुलाबराय के शब्दों में "छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक परंतु कुछ-कुछ अप्रत्याशित ढंग से, उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कुतूहलपूर्ण वर्णन हो।"[२] तथा डा० सुधीन्द्र की दृष्टि में "कहानी साहित्य की वह विधा है जो काल्पनिक आख्यान के माध्यम से स्थूल अथवा सूक्ष्म भावात्मक प्रभाव की एकांगिता का अनुसंधान करती हुई अपनी एकाग्र दृष्टि में जीवन का एक खंड चित्र मलक या झाँकी देती है।"[३] परन्तु जैसा कि हम प्रारंभ में ही कह चुके हैं। कहानी की निश्चित परिभाषा स्थिर करना सहज कार्य नहीं है क्योंकि विचारकों एवं कहानीकारों ने उसकी व्याख्या उनके उद्देश्य और विषय को लेकर निर्धारित करने का प्रयास किया है लेकिन चूंकि प्रत्येक युग की अपनी विशिष्ट समस्या होती है अतः स्वाभाविक ही परिभाषा में भी अन्तर आ जाता है। डा० रामरतन भटनागर का विचार है कि "कहानी के उद्देश्य, विषय या टेकनिक को लेकर उसकी परिभाषा नहीं बनाई जा सकती कहानी का क्षेत्र इतना विस्तृत है विषय और शैली दोनों की दृष्टि से कि हम किन्हीं दो चार वाक्यों को कहानी की परिभाषा के रूप में गढ़ नहीं सकते।"[४] अतएव हमारी दृष्टि में चूंकि उद्देश्य, विषय और टेकनिक की दृष्टि से हम उसकी निश्चित परिभाषा करने में असमर्थ रहते हैं अतः उचित तो यह होगा कि हम कहानी के स्वरूप से परिचित होने का प्रयास करें क्योंकि साहित्य के अन्य अंग-उपांगों से न केवल वह सम्बंधित है अपितु उसकी उपयोगिता में भी वे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। इस प्रकार हम यहाँ यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे कि साहित्य के अन्य अंग-उपांगों से कहानी का क्या सम्बंध है?

---

१ साहित्य का श्रेय और प्रेय—श्री जैनेन्द्रकुमार (पृष्ठ ३७८)
२ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ठ २१२)
३ साहित्य संदेश – जनवरी-फरवरी १९५३ (पृष्ठ २८-)
४ प्रबन्ध पूर्णिमा— डा० रामरतन भटनागर (पृष्ठ ७८-७९)

उपन्यास और कहानी के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार व्यक्त करते हुए श्री गुलाबराय ने लिखा है "कहानी अपने पुराने रूप में उपन्यास की अग्रजा है और नये रूप में उसकी अनुजा। वृत्त या कथा-साहित्य की वंशजा होने के कारण कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानतायें हैं।"[1] इसी प्रकार श्री नंददुलारे वाजपेयी ने भी दोनों की समानता पर विचार करते हुए कहा है कि "उपन्यास और कहानी रचनात्मक कला सृष्टियाँ नहीं हैं उनमें जीवन का स्वरूप दिखाया जाता है। उनमें घटनाओं पात्रों और परिस्थितियों के वास्तविक चित्र उपस्थित किए जाते हैं। विशेषकर उपन्यास तो जीवन की ऐसी झलक दिखाने का उद्देश्य रखता है जिसमें मूल जीवन घटना और उसकी कलात्मक अभिव्यंजना में कोई अन्तर ही न दिखाई दे। जीवन के या वास्तविक संसार के, किसी अंश या खंड को काटकर जैसे उपन्यास में रख दिया गया हो – चलते फिरते पात्रों और सजीव घटनाओं का अंकन जिसमें मूल और प्रतिकृति का अंतर ही न रह गया हो। कहानी में यह बात यद्यपि इतनी स्पष्ट नहीं होती—उसके छोटे आकार और उसकी तीव्र घटना प्रगति के कारण यद्यपि वह किसी वास्तविक जीवन खंड का प्रतिरूप नहीं बन सकती—फिर भी कहानी-लेखक का यह प्रयास तो रहता ही है कि वह कहानी में भी यथार्थ जीवन चित्र का आभास अधिक से अधिक दे। अंग्रेजी का शब्द 'फिक्शन' जो उपन्यास और कथा-साहित्य के लिए काम में लाया जाता है कदाचित इसी तथ्य को व्यक्त करता है कि उपन्यास तथा कहानी में कल्पना द्वारा रची गई कथा को वास्तविक जीवन घटना से पृथक करना आसान नहीं है। कथा में वास्तविकता का भ्रम हो जाने की पूरी संभावना है।"[2] श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र की दृष्टि में "कहानी और उपन्यास में तत्वों की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। भेद है घटनाओं की व्यष्टि और समष्टि की योजना की दृष्टि से। कहानी की विस्तार सीमा छोटी ही होती है, चाहे उसका कितना ही फैलाव क्यों न किया जाय। उपन्यास की विस्तार सीमा बड़ी ही होती है चाहे उसका कितना ही संक्षेप क्यों न किया जाय। कहानी जीवन का एक चित्र रखती है—निरपेक्ष, स्वच्छंद। उपन्यास जीवन के एकाधिक चित्रों का योग संघटित करता है, सापेक्ष, संबद्ध।"[3] यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि दोनों में समानतायें होते हुए भी कहानी और उपन्यास दोनों की अपनी विशेषतायें भी हैं जिनसे कि दोनों ही विधायें पारस्परिक एक दूसरे से पृथक सी प्रतीत होती हैं और इस प्रकार न तो हम कहानी को छोटा उपन्यास ही कह सकते हैं और न उपन्यास को कहानी

---

१ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ठ २१४)

२ नया साहित्य नये प्रश्न—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १)

३ हिन्दी का सामयिक साहित्य—श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र (पृष्ठ ३४६)

तथा श्री गुलाबराय के शब्दों में "यह कहना ऐसा ही असंगत होगा, जैसे चौपाये होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहना। दोनों के शारीरिक संस्कार और संगठन में अन्तर है। बैल चारों पैरों पर समान बल देकर चलता है तो मेंढक उछल उछलकर रास्ता तय करता है।"[1] इस प्रकार कहानी और उपन्यास के रूप, विषय उद्देश्य तथा विधान में समानतायें होते हुए भी दोनों में कई मूल विभिन्नतायें हैं और कहानी को उपन्यास का coming form कहना उपयुक्त नहीं है तथा श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त का तो यही स्पष्ट मत है कि "उपन्यास और गल्प भिन्न कला हैं। यह आवश्यक नहीं कि सफल उपन्यासकार अच्छा गल्प-लेखक भी हो। उपन्यास में जीवन का दिग्दर्शन होता है, गल्प में केवल झाँकी मात्र होती है। मानव चरित्र के किसी एक पहलू पर प्रकाश डालने को, किसी घटना या वातावरण की सृष्टि के लिए कहानी लिखी जाती है।"[2] इसी प्रकार श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है "उपन्यास एवं गल्प दो भिन्न वस्तुएँ हैं। एक का स्थान दूसरा ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि एक दूसरे के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकता। उपन्यास एवं गल्प में सादृश्य है अवश्य किन्तु साथ ही दोनों में विभिन्नताएँ भी हैं। उपन्यास में किसी चरित्र की सम्पूर्णता होना आवश्यक है, गल्प में चरित्र के किसी अंश विशेष का चित्रण होने से ही काम चल जाता है। उपन्यास में नाना चरित्रों के समावेश द्वारा समाज का एक सर्वांगपूर्ण चित्र अंकित किया जाता है, गल्प में दो एक चरित्रों के दो एक स्वरूपों को चित्रित कर देना ही यथेष्ट है। किन्तु इस चरित्र चित्रण की प्रणाली क्या होगी, इसको लेकर ही समस्या उपस्थित होती है। गल्प में विषय-वस्तु होती है, रचना कौशल होता है और उसमें भी बढ़कर एक वस्तु होती है वास्तविकता को प्रस्तुटित करने का कौशल। उपन्यास में जटिल मानव-जीवन की मनोवृत्तियाँ तथा उसके बाह्य एवं आंतरिक द्वन्द्वों का जो सूक्ष्म एवं विभिन्नमुखी चित्र हमें देखने को मिलता है, वह छोटी कहानी में संभव नहीं हो सकता; क्योंकि इसके लिए चाहिए सुपरिसर स्थान, जिसका छोटी कहानी में अभाव होता है। चरित्र का क्रम विकास उसकी उर्मिलताओं का विश्लेषण एवं सहज समाधान भी हम छोटी कहानी में पाते।"[3] स्मरण रहे कि दोनों में केवल लघुता-दीर्घता या आकार और मात्रा की ही विभिन्नता नहीं है अपितु प्रकार का भी अंतर है।[4] श्री प्रभाकर माचवे के

१ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ट २११)

२ नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त (पृष्ट १०८)

३ साहित्य की वर्तमान धारा—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र

4 The story differs from the novel in length so it must of necessity differ from it in motive plan and structure

—W. H. Hudson

शब्दों में "कहानी जीवन के खंड या अंश मात्र को प्रस्तुत करती है, उपन्यास जीवन की समग्रता को। कहानी उछलता कूदता हुआ वन्य निर्झर है, उपन्यास गंभीर कूलहीन समुद्र। कहानी एक ही दिन में मुरझा जानेवाली खिली कली है; उपन्यास विशाल युगों युगों तक स्तब्ध मौन, तना खड़ा देवदारु। कहानी लेखक जैसे कुछ रेखाचित्र या 'स्नैप' मात्र लेता है, उपन्यास वृहद् भित्तिचित्र (फ्रेस्को) के समान है। कहानीकार भीड़ को अपनी छोटी सी खिड़की में से या मध्य के एक कोने में देख लेना पर्याप्त समझता है, उपन्यास-लेखक एक ऊँची मीनार पर चढ़कर जैसे आस पास का विस्तृत भू प्रदेश देखता है।"[1] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी यही मत है कि "उपन्यास एक शाखा प्रशाखा वाला विशाल वृक्ष है, जब कि छोटी कहानी एक सुकुमार लता"[2] और वैरीपिन ने भी उचित ही कहा है कि "उपन्यास पढ़ना भरपेट भोजन से पूर्ण संतोष पाना है, कहानी का केवल भूख जगाना या उकसाना मात्र।" पाश्चात्य विचारकों ने तो कहानी को जीवन के केवल एक भाग (aspect) की झाँकी (snapshot) मात्र मानकर उचित ही किया है क्योंकि उपन्यास यदि जीवन का पूर्ण चित्र है तो कहानी उसके एक अंग की झलक मात्र है लेकिन यह झाँकी स्वतः अपने आप में सर्वथा पूर्ण होती है। स्मरण रहे कहानी समस्त जीवन के किसी एक विशिष्ट अंग या बिन्दु की ही झलक प्रस्तुत करती है किन्तु उपन्यास में पूर्णता की अधिकता रहती है; घटनाओं परिस्थितियों तथा देश, काल और वातावरण का अत्यन्त विशद विवेचन भी होता है। इतना ही नहीं उपन्यास में तो कई आकर्षण केन्द्र होते हैं और उसमें पाठकों को आकर्षित करने वाली अनेकानेक परिस्थितियों की संयोजना की जाती है परन्तु कहानी में केवल एक ही आकर्षण केन्द्र होता है, क्योंकि कहानी का पात्र विशेष सीमित क्षणों के लिए ही हमारे सामने आता है तथा पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर मंत्र-मुग्ध सा कर देता है। यह भी सत्य है कि कहानी के पात्र का पाठक के हृदय पर विशेष प्रभाव पड़ता है लेकिन कुछ विचारकों का मत है कि औपन्यासिक पात्रों का पाठक की मानस-स्थली पर अधिक हृदयग्राही प्रभाव पड़ता है।[3]

---

१ अनुगन — श्री प्रभाकर माचवे (पृष्ठ २८६)

साहित्य का मर्म — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृष्ठ ८६)

३ It is true of men and women in fiction as it is of men and women in actual life. But in the short story we meet people for few minutes and see them in few relationships and circumstances only and while it is indeed true that concentration of attention upon a particular aspect of character may result in a very powerful impression still as a rule such impression is not exactly comparable with that left by an ampler more detailed and more varied representation.

—W. H. Hudson

यथा श्री गुलाबराय के शब्दों में "यह कहना ऐसा ही असंगत होगा, जैसे चौपाये होने की समानता के आधार पर मेंढक को छोटा बैल और बैल को बड़ा मेंढक कहना। दोनों के शारीरिक संस्कार और संगठन में अन्तर है। बैल चारों पैरों पर समान बल देकर चलता है तो मेंढक उछल-उछलकर रास्ता तय करता है।"[1] इस प्रकार कहानी और उपन्यास के रूप, विषय उद्देश्य तथा विधान म समानतायें होते हुए भी दोनों में कई मूल विभिन्नतायें हैं और कहानी को उपन्यास का coming form कहना उपयुक्त नहीं है तथा श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त का तो यही स्पष्ट मत है कि "उपन्यास और गल्प भिन्न कला हैं। यह आवश्यक नहीं कि सफल उपन्यासकार अच्छा गल्प-लेखक भी हो। उपन्यास में जीवन का दिग्दर्शन होता है, गल्प में केवल झाँकी मात्र होती है। मानव चरित्र के किसी एक पहलू पर प्रकाश डालने को, किसी घटना या वातावरण की सृष्टि के लिए कहानी लिखी जाती है।"[2] इसी प्रकार श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है "उपन्यास एवं गल्प दो भिन्न वस्तुयें हैं। एक का स्थान दूसरा ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि एक दूसरे के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकता। उपन्यास एवं गल्प में सादृश्य है अवश्य किन्तु साथ ही दोनों में विभिन्नतायें भी हैं। उपन्यास में किसी चरित्र की सम्पूर्णता होना आवश्यक है, गल्प में चरित्र के किसी अंश विशेष का चित्रण होने से ही काम चल जाता है। उपन्यास में नाना चरित्रों के समावेश द्वारा समाज का एक सर्वांगपूर्ण चित्र अंकित किया जाता है, गल्प में दो एक चरित्रों के दो एक स्वरूपों को चित्रित कर देना ही यथेष्ट है। किन्तु इस चरित्र चित्रण की प्रणाली क्या होगी, इसको लेकर ही समस्या उपस्थित होती है। गल्प में विषय-वस्तु होती है, रचना-कौशल होता है और उसमे भी बढ़कर एक वस्तु होती है वास्तविकता को प्रस्फुटित करने का कौशल। उपन्यास में जटिल मानव जीवन की मनोवृत्तियाँ तथा उसके बाह्य एवं आंतरिक द्वन्द्वों का जो सूक्ष्म एवं विभिन्नमुखी चित्र हमें देखने को मिलता है, वह छोटी कहानी में संभव नहीं हो सकता, क्योंकि इसके लिए चाहिए सुपरिसर स्थान, जिसका छोटी कहानी में अभाव होता है। चरित्र का क्रम विकास उसकी जटिलताओं का विश्लेषण एवं सहज समाधान भी हम छोटी कहानी में पाते—।"[3] स्मरण रहे कि दोनों में केवल लघुता-दीर्घता या आकार और मात्रा की ही विभिन्नता नहीं है अपितु प्रकार का भी अंतर है।[4] श्री प्रभाकर माचवे के

१ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ठ २१६)

२ नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि—श्री प्रकाशचंद्र गुप्त (पृष्ठ १०८)

३ साहित्य की वर्तमान धारा—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र

४ The story differs from the novel in length, so it must of necessity differ from it in motive plan and structure

—W. H. Hudson

शब्दों में "कहानी जीवन के खंड या अंश मात्र को प्रस्तुत करती है, उपन्यास जीवन की समग्रता को। कहानी चंचलता कूदता हुआ वन्य निर्झर है, उपन्यास गंभीर कूलहीन समुद्र। कहानी एक ही दिन में मुरझा जानेवाली जूही की कली है; उपन्यास विशाल युगों युगों तक स्तब्ध मौन, तना खड़ा देवदारु। कहानी लेखक जैसे कुछ रेखाचित्र या 'स्नैप' मात्र लेता है उपन्यास बृहद् भित्तिचित्र (फ्रेस्को) के समान है। कहानीकार भीड़ को अपनी छोटी सी खिड़की में से या सराय के एक कोने में देख लेना पर्याप्त समझता है; उपन्यास-लेखक एक ऊँची मीनार पर बैठकर आस पास का विस्तृत भू प्रदेश देखता है।"[1] डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी यही मत है कि "उपन्यास एक शाखा प्रशाखा वाला विशाल वृक्ष है जब कि छोटी कहानी एक सुकुमार लता"[2] और बैरीपेन ने भी उचित ही कहा है कि "उपन्यास पढ़ना भरपेट भोजन से पूर्ण संतोष पाना है कहानी का केवल मुँह लहकना या चखना मात्र।" पाश्चात्य विचारकों ने तो कहानी को जीवन के केवल एक भाग (aspect) की झाँकी (snapshot) मात्र मानकर उचित ही किया है क्योंकि उपन्यास यदि जीवन का पूर्ण चित्र है तो कहानी उसके एक अंग की झलक मात्र है लेकिन यह झाँकी स्वतः अपने आप में सर्वथा पूर्ण होती है। स्मरण रहे कहानी समस्त जीवन के किसी एक विशिष्ट अंग या बिन्दु की ही झलक प्रस्तुत करती है किन्तु उपन्यास में पृष्ठों की अधिकता रहती है, घटनाओं परिस्थितियों तथा देश काल और वातावरण का अत्यन्त विशद विवेचन भी होता है। इतना ही नहीं उपन्यास में तो कई आकर्षण केन्द्र होते हैं और उनमें पाठकों को आकर्षित करने वाली अनेकानेक परिस्थितियों की संयोजना की जाती है परन्तु कहानी में केवल एक ही आकर्षण केन्द्र होता है, क्योंकि कहानी का पात्र विशेष सीमित क्षणों के लिए ही हमारे सामने आता है तथा पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर मंत्र-मुग्ध सा कर लेता है। यह भी सत्य है कि कहानी के पात्र का पाठक के हृदय पर विशेष प्रभाव पड़ता है लेकिन कुछ विचारकों का मत है कि उपन्यासगत पात्रों का पाठक की मानस स्थली पर अधिक हृदयग्राही प्रभाव पड़ता है।[3]

---

१ अनुराग — श्री प्रभाकर माचवे (पृष्ठ ३०६)

२ साहित्य का मर्म — डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृष्ठ ८६)

3 It is true of men and women in fiction as it is of men and women in actual life. But in the short story we meet people for few minutes and see them in few relationships and circumstances only and while it is indeed true that concentration of attention upon a particular aspect of character may result in a very powerful impression, still, as a rule such impression is not exactly comparable with that left by an ampler, more detailed and more varied representation.

—W. H. Hudson

इसमें कोई संदेह नहीं कि उपन्यास की सी अनेकरूपता कहानी में नहीं होती तथा उसमें न तो प्रासंगिक कथाएँ ही रहती हैं और न वातावरण एवं देश काल की परिस्थितियों का विस्तार ही रहता है। स्मरण रहे कि उपन्यासों में तो जीवन के विभिन्न चित्र दृष्टिगोचर होते हैं तथा विस्तार के साथ उनका निरूपण भी किया जाता है लेकिन कहानी का क्षेत्र छोटा होता है और उसमें न तो पात्रों का उस प्रकार का चरित्र-चित्रण ही संभव है और न जीवन की वैसी विस्तृत व्याख्या ही हो सकती है। श्री पहाड़ी ने भी उपन्यास और कहानी में अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है "उपन्यास में जीवन की समस्याओं की व्याख्या मिलती है और उन समस्याओं का समाधान मिलता है। कहानी में यह बात नहीं पाई जाती। कहानी एक प्रश्न को उठाती है किन्तु उसका उत्तर पूर्णरूप से नहीं देती। व्याख्या उपन्यास का प्राण है। संकेत और गूँज (Suggestion and Echo) कहानी की जीवन स्वासें हैं। उपन्यास को हम नक्षत्रखचित आकाश कहें तो कहानी को सप्तरंगी इन्द्रधनुष मान लें। अकस्मात रहस्यपूर्ण क्षितिज के कोने से रंगों की रागिनी उठी और देखते-देखते नयनाभिराम होकर अछोर फैल गई और देखते-देखते न जाने कहाँ विलीन हो गई। पर बहुत देर के लिए आँखों और मन में एक कसक और एक गूँज छोड़ गई।" उपन्यास की सी जटिलता भी कहानी में नहीं होती और उसकी अपेक्षा कहानी में पाठकों को अंतिम संवेदना तक शीघ्रातिशीघ्र ले जाने की क्षमता विशेष रूप से पाई जाती है। साथ ही कथानक चरित्र-चित्रण तथा शैली आदि तत्वों में से किसी एक को ही कहानीकार प्रमुखता दे सकता है सबको एक साथ नहीं लेकिन उपन्यास में तो सभी का समावेश हो सकता है। संक्षिप्तता के फलस्वरूप कहानी की शैली अधिक व्यंजना प्रधान होती है अतः उसमें काव्यत्व की मात्रा भी अधिक होती है। उपन्यास तथा कहानी में एक और भेद प्रभाव की अन्विति (Unity of Impression) जिसे कि एडगर एलेन पो ने पूर्णता का प्रभाव (Effect of Totality) कहा है मानते हुए Evelyn May Albright की The Short Story Its Principles and Structure में कहा गया है — Brander Matthews in his 'Philosophy of the short story' lays great stress on this Unity of Impression what Poe calls the "Effect of totality"—as the mark of distinction between the short story and the novel. And Canby carrying the distinction further says it is the deliberate and conscious use of impressionistic methods together with the increasing emphasis of situation that distinguishes the short story of today from the tale or simple narrative and makes

it seem a new work of art अर्थात् प्रेण्डर मैथ्यू ने अपनी पुस्तक 'छोटी कहानी का दर्शन' में प्रभावान्वित को विशेष महत्व दिया है जिसे 'पो' पूर्णता का प्रभाव मानते हैं- छोटी कहानी और उपन्यास में यही सबसे बड़ा अन्तर है केनयाह ने इस अन्तर को और आगे स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह प्रभावोत्पादक साधनों का एक संश्लिष्ट और सतर्क प्रयोग है तथा इसमें परिस्थिति पर भी विशेष जोर दिया जाता है जिससे कि आधुनिक कहानी कथा या आख्यायिका से विभिन्न जान पड़ती है और वह एक सुन्दर नूतन कलाकृति के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार जैसा कि श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' ने लिखा है "संक्षेप में कहानी की सामग्री एक स्थिति है। आधुनिक कहानी इस विषय में उपन्यास और सरल वर्णन या कथा एवं उपाख्यान जिससे इनका प्रादुर्भाव हुआ है। से सर्वथा भिन्न है। उपन्यास का सम्बन्ध जीवन चरित्रों से है और सरल वर्णन एवं उपाख्यान का घटनाओं के रोचक तारतम्य से। परन्तु कहानी जिसे अंग्रेजी में शार्ट स्टोरी कहते हैं, जीवन के दृष्टिकोणों को जिस ढंग से प्रस्तुत करती है वह उपाख्यान और उपन्यास के ढंग से सर्वथा भिन्न है। कहानी में पात्रों के जीवन को हम तीन रूपों में पाते हैं। एक पूर्व चिन्तन द्वारा, दूसरे भावी निर्देश द्वारा और तीसरे प्रमुख संकट के प्रस्तुत द्वारा। कहानी में घटनाओं के तारतम्य का प्रयोग एक निश्चित उद्देश्य द्वारा होता है जिससे एक स्थिति के प्रभाव की अभिव्यक्ति हो।"[1] अन्य समीक्षकों की भाँति डा० भगीरथ मिश्र ने भी उपन्यास और कहानी में तत्वों की दृष्टि से सादृश्यता मानते हुए भी दोनों का अंतर बड़ी ही कुशलता के साथ अपनी हाल ही में प्रकाशित 'काव्य-शास्त्र' नामक सैद्धान्तिक समीक्षा सम्बन्धी ग्रंथ में स्पष्ट किया है। देखिए—

कहानी	उपन्यास
(१) कहानी जीवन की एक झलक मात्र प्रस्तुत करती है।	(१) उपन्यास सम्पूर्ण जीवन का विशद और व्यापक चित्र उपस्थित करता है।
(२) कहानीकार के लिए संक्षिप्त और सशक्त शैली आवश्यक है।	(२) उपन्यासकार के लिए विवरणपूर्ण विशद और व्याख्यापूर्ण शैली आवश्यक है।
(३) कहानीकार एक भाव या प्रभाव विशेष का चित्रण करता है।	(३) उपन्यासकार पूरी परिस्थिति की गतिशील जीवन की विवृति करता है।

१ कहानी कला—श्री रामनारायण 'यादवेन्दु'
काव्य-शास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ ८०-८१)

(४) कहानी में प्रासंगिक कथाओं का अवसर नहीं होता।

(४) उपन्यास में प्रासंगिक कथाओं का संगठन आधिकारिक कथा की एकरसता को दूर करने तथा वर्णन में विविधता लाने के लिए आवश्यक होता है।

(५) कहानी में थोड़े समय में ही महत्व पूर्ण बात कहनी होती है। अत कथा की सूक्ष्मता इसमें आवश्यक होती है। कहानी कलात्मक अधिक होती है। वह एक भाव-विशेष का ही चित्रण करने का प्रयत्न करती है।

(५) उपन्यास में सूक्ष्म कला की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी व्यापक उदात्त दृष्टिकोण तथा भाव रस और परिस्थिति के समग्र रूप में चित्रण की। रस के विविध रूपों का समावेश उपन्यास में हो सकता है।

(६) कहानी द्वारा हल्का मनोरंजन ही प्राय सम्पादित हो पाता है।

(६) उपन्यास परिस्थिति और पात्र के पूर्ण चित्रण द्वारा हृदय-मंथन और मनस्संस्कार भी करता है।

इस प्रकार अपनी संक्षिप्तता एकध्येयता प्रभावोत्पादकता अनुभूति की तीव्रता आदि के कारण कहानी उपन्यास से सर्वथा स्वतंत्र सत्ता रखती है।

स्मरण रहे कि संस्कृत साहित्य में आधुनिक कहानी के समकक्ष आख्यायिका, कथा, कथानिका या कथालिका परिकथा और खंडकथा नामक शब्द सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही मिलते हैं तथा कालांतर में दण्डी ने आख्यान आख्यानक और चित्रकथा नामक तीन अन्य पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग किया है लेकिन आधुनिक कहानी से इनमें पर्याप्त विभिन्नता है। अग्निपुराण में आख्यायिका के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि उसमें लेखक के वंश की विस्तारपूर्वक प्रशंसा होनी चाहिए तथा साथ ही कन्याहरण संग्राम, विप्रलम्भ आदि विपत्तियों की घटनाएँ भी अंकित की जानी चाहिए। संपूर्ण आख्यायिका में वक्त्र या अपवक्त्र छंदों का प्रयोग कर उसे विभिन्न परिच्छेदों में उच्छ्वास नाम देकर विभाजित करना चाहिए। दंडी ने भी इन्हीं लक्षणों को दुहराते हुए कहा है कि आख्यायिका के विषयों की कोई तालिका निर्धारित नहीं की जा सकती तथा आचार्य वामन के अनुसार आख्यायिका की कथा को किसी सरपाल से संबंधित होना चाहिए। इसी प्रकार अभिनवगुप्त आदि ने भी उसके लक्षणों पर प्रकाश डाला है परंतु विचारपूर्वक देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आख्यायिका तथा कथा आधुनिक कहानी के समकक्ष प्रतीत नहीं होती अपितु वे उपन्यास के समीप की ही वस्तु मानी जा सकती हैं। यही बात खंडकथा, परिकथा, कथानिका और सकलकथा के विषय में भी कहा जा सकती है।

साथ ही नीतिकथा और लोककथा तथा आधुनिक कहानियों में भी विभिन्नता है। वस्तुतः नीतिकथाओं का प्रतिपाद्य विषय सदाचार, नीति और व्यावहारिक ज्ञान ही है तथा लोककथाओं को विशेष रूप से मनोरंजन प्रधान ही होती है। आधुनिक कहानी प्राचीन कथा, आख्यायिका, लोककथा और नीतिकथा से बिलकुल ही भिन्न वस्तु है तथा उसकी कला, उसका विधान, उसकी भाषा, उसकी शैली सब कुछ नई है। यद्यपि साहित्य की परंपरा पर प्रकाश डालते समय उनका उल्लेख अवश्य किया जा सकता है परंतु जैसा कि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है "यह गलत धारणा है कि उपन्यास और कहानियाँ संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी संतान हैं।" स्वरूप रा० के० लागू (R K Lagu) ने भी यही कहा है कि "एक शब्द में प्राचीन लेखक उन सिद्धान्तों से पूर्णतः अविज्ञ था जो कि आधुनिक कहानी के रूप को नियंत्रित करते हैं। अपना कार्य उसने अपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न किया होगा लेकिन उसे इसलिये सफलता न मिल सकी कि उसने कहानी की कलात्मकता पर शास्त्रीयता के साथ अपना कार्य प्रारम्भ किया था। इन प्राचीन कहानियों को केवल उनमें वर्णित मनोरंजक विषय-सामग्री और जीवन विषयक साधारण बातों के कारण ही हम पढ़ते हैं तथा उनमें विद्यमान ज्ञान और अनुभवों की प्राप्ति के लिए भी हम उनका अध्ययन करते हैं। आधुनिक कलाकार अपनी अँगुलियों से अपनी कला का अंकित करने में समर्थ है। वह समझ-बूझकर कुछ भावात्मक, मानसिक तथा हास्यप्रद प्रसंगों को अंकित करता है और उनके निर्वाह में पूर्ण योग देता है।"[1]

इधर हिन्दी पत्रिकाओं में ही नहीं अन्य भाषा भाषी पत्रिकाओं में भी रेखाचित्रों (Sketches) के उदाहरण प्रचुरता से मिलते हैं और यदि हम विचारपूर्वक देखें तो बहुत सी कहानियाँ, कहानियाँ न हो कर रेखाचित्र ही होती हैं। श्री शिवदानसिंह चौहान ने रेखाचित्र को साहित्य का सबसे स्वतंत्र अंग माना है और उनकी दृष्टि में

---

1 In a word the old writer was entirely unconscious of the principles which control the short story form. He might have accomplished his work with superb success but he did it without worrying about the formal technical side of his art. We enjoy those old stories for their delightful subject matter the quips and quarrels which flash through them and best of all. For the teaching of knowledge and experience which is enshrined in them. The modern story teller is conscious of his art to his fingertips. He deliberately plans certain emotional intellectual and humorous effects and strains every nerve to attain them.

—Introduction to Modern Stories from East & West

"कथा के अंदर रेखाचित्र की एक स्वतंत्र सत्ता है, उसे पढ़ने के बाद पाठक को समाज या व्यक्ति की जीवनधारा के अगले मोड़ प्रवाहों को जानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह उस पूरी तसवीर को पढ़कर संतुष्ट हो जाता है और चूँकि रेखाचित्र एक चित्र है इस कारण उसका वर्ण्यविषय कल्पना प्रधान भी हो सकता है और वास्तविक भी।"[1] यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि डा० भगीरथ मिश्र रेखाचित्र को शब्द चित्र मानते हैं और उनका विचार है कि "अपने सम्पर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इस प्रकार उभार कर रखना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाय रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है।"[2] वस्तुतः रेखाचित्र में एक ही वस्तु या पात्र का स्थायी रूप से चित्रांकन किया जाता है और उसमें वर्णन की ही प्रधानता होती है परन्तु कहानी में वर्णन के साथ साथ प्रबंधात्मक कथन भी रहता है और गत्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। डा० नगेन्द्र ने भी बड़े ही सुन्दर ढंग से कहानी और रेखाचित्र का तुलनात्मक विवेचन करते हुए कहा है "कहानी और रेखाचित्र में कोई वास्तविक अंतर करना कठिन है, फिर भी दोनों में अन्तर अवश्य है क्योंकि ये दोनों शब्द आज भी बराबर प्रचलित हैं और इनका प्रयोग करने वाले इनके द्वारा एक ही वस्तु की व्यंजना नहीं करते। कहानी के विषय में तो किसी का विशेष भ्रांति होने की गुंजाइश नहीं है, रेखाचित्र के विषय में हो कठिनाई है। स्पष्टतया ही रेखाचित्र चित्रकला का शब्द है जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। इसमें चित्रांकन का मूल आधार रेखाएँ होती हैं। ज्यामिति में रेखा की विशेषता यह है कि इसमें लम्बाई होती है, मोटाई चौड़ाई आदि नहीं होती। अतएव अपने मूलरूप में रेखाचित्र में मोटाई चौड़ाई अर्थात् मूर्तरूप और रंग आदि नहीं होते। उसमें आकार तो होता है, पर भराव नहीं होता इसीलिये उस स्केच भी कहते हैं। जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई अर्थात् रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएँ हों पर मूर्तरूप अर्थात् चढ़ाव उतार दूसरे शब्दों में कथानक का उतार-चढ़ाव आदि न हों, तथ्यों का उद्घाटन मात्र हो। पूर्व आयोजन अथवा आयोजित विकास न हो। रेखाचित्र में तथ्य खुलते जाते हैं, संयोजित नहीं होते हैं। कहानी के लिए घटना का होना जरूरी नहीं है, पर रेखाचित्र के लिए उसका न होना जरूरी है घटना का अभाव वह वहन नहीं कर सकता। इसी प्रकार कहानी के लिए विश्लेषण किसी भी प्रकार वर्जनीय नहीं है परंतु रेखाचित्र का यह भाव

१ प्रगतिवाद —श्री शिवदानसिंह चौहान (पृष्ठ ११)
२ काव्यशास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र (पृ० ०३)

अनिवार्य साधन है।[1] यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि रेखाचित्र में न तो कथानक ही होता है और न चरम सीमा वाली स्थिति ही आती है तथा कहानियों में शृंखलाबद्ध घटनाएँ भी रहती है अन्यथा असम्बद्ध घटनाओं के होने से उसका समस्त सौन्दर्य ही विनिष्ट हो सकता है। इस प्रकार जैसा कि डा० लक्ष्मीनारायण लाल का मत है "आधुनिक कहानी कला में रेखाचित्र शैली को कहीं-कहीं प्रमुखता मिल रही है लेकिन तुलनात्मक दृष्टि से अभी तक रेखाचित्र कहानी के सम्म सहायक तत्वों में आता है।"[2]

यद्यपि विचारकों का मत है 'एक कहानी लेखक के समान रिपोर्ताज-लेखक को भी अपने सीमित कलेवर में उस समस्या का समाधान प्रस्तुत करना पड़ता है जिसको कि लक्ष्य में रखकर वह रिपोर्ताज लिखता है। ... ...एक रेखाचित्रकार अपनी कूँची के जरा से संकेत से ही समग्र चित्र की भावनाओं को व्यक्त करने की सामर्थ्य रखता है उसी प्रकार रिपोर्ताज-लेखक को भी संक्षिप्त शब्दावली में घटना का ठीक-ठीक और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करना होता है।[3] परंतु कहानी की सी साहश्यता रखते हुए भी रिपोर्ताज कहानी नहीं है, हाँ वह कहानी का एक विशिष्ट शैली का प्रयोगात्मक प्रयोग अवश्य कहला सकता है। रिपोर्ताज में घटनाओं के चित्रण के साथ-साथ कहानी की सी रोचकता भी अपेक्षित है और कहानीकार की भाँति रिपोर्ताज लेखक को भी कम समय तथा कम स्थान में ही अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है परन्तु कहानी किसी निश्चित उद्देश्य को लक्ष्यकर ही लिखी जाती है जब कि रिपोर्ताज में विभिन्न घटनाओं का समावेश होता है और रिपोर्ताज लेखक नियमों के कई बंधनों से स्वतंत्र रहता है। इतना ही नहीं कहानी गद्यकाव्य या गद्यगीत से भी सर्वथा भिन्न है क्योंकि गद्यकाव्य या गद्यगीत में किसी भाव के धरातल से कलाकार की भावना मधुर उड़ान लेती है तथा उसमें घटनाओं का अभाव सा रहता है और यदि प्रसंगानुसार घटनाएँ संक्षिप्त भी की जाएँ तो भी उनको महत्व न प्रदान कर उनमें आगत हृदयोद्गारों को प्रमुखता दी जाती है परन्तु कहानी में उद्गारों के साथ-साथ घटनाओं को भी समान महत्व दिया जाता है और वह अपनी कथावस्तु की पूर्ति में इस प्रकार के अनेकों भावचित्रों का संजोये रहती है।

विचारकों ने निबंध और कहानी की तुलना करते हुए दोनों में पर्याप्त साम्यता मानी है और कहा जाता है कि दोनों के आकार, रूपरेखा तथा उद्देश्य में

---

1 विचार और विश्लेषण—डा० नगेन्द्र (पृष्ठ ८०-८१)
2 हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ११०)
3 साहित्य विवेचन—श्री क्षेमचन्द्र सुमन और श्री योगेन्द्रकुमार मल्लिक (पृष्ठ १००)

साम्य है । जिस प्रकार कहानी का सृजन एक विशिष्ट उद्देश्य के प्रतिपादन हेतु ही होता है और उसके प्रतिपादन के अनन्तर ही वह समाप्त हो जाती है उसी प्रकार निबंध भी एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही लिखा जाता है तथा उसके पूर्ण होने पर वह भी समाप्त हो जाता है । निबंध की भाँति कहानी भी व्यक्तित्वप्रधान ही है परन्तु दोनों के शिल्पविधान में पूर्ण विभिन्नता है और दोनों में किसी भी व्यक्तिगत विचार का प्रतिपादन तथा उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति सर्वथा विभिन्न रूप में होती है । स्मरण रहे जब कि निबंध में केवल विषय-समस्या से सम्बंधित *बौद्धिक विश्लेषण, शुष्क ज्ञान, तर्क एवं व्याख्या के ही दर्शन होते हैं* वहाँ कहानीकार किसी भाव या समस्या के चित्रण विश्लेषण हेतु उसके अनुरूप कथावस्तु का अंकन कर आकर्षक इतिवृत्त में उसे गढ़ कर पात्रों और घटनाओं के माध्यम से कौतूहल-पूर्ण सजीवता और गति उत्पन्न करता है तथा इस प्रकार संपूर्ण कहानी के कार्य व्यापार में आकर्षण उत्पन्न होता है और वह अपने सामूहिक प्रभाव के सहित हृदय के चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है । साथ ही जैसा कि डा० कन्हैयालाल सहल का मत है 'जिस निबंध में वर्ण्य विषय तो हो किन्तु व्यक्ति नदारद हो वह सच्चे अर्थ में निबंध नहीं । सच्चा निबंध लेखक वर्ण्य विषय का उतना प्रस्फुटन नहीं करता जितना वह अपने व्यक्तित्व का प्रस्फुटित करता है ।'[1] परन्तु कहानी में ठीक उसके विपरीत स्थिति रहती है क्योंकि उसमें व्यक्ति तो गौण रहता है तथा वर्ण्य विषय को प्रधानता दी जाती है । साथ ही निबंध के पाठक प्रायः परिष्कृत बुद्धि वाले व्यक्ति ही होते हैं जब कि कहानी सामाजिकों की सामाजिक बुभुक्षा का स्वाभाविक सामग्रियों को जुटाकर शमन करती है अतः वह निबंध की अपेक्षा न केवल अधिक प्रभावोत्पादक है अपितु लोकप्रिय भी है ।

जैसा कि एक समीक्षक ने लिखा है "कहानी में घटनाओं की योजना और उनका आकर्षण नाटक के ढंग का होता है"[2] तथा इसमें कोई संदेह नहीं कि दृश्य काव्य नाटक और श्रव्य-काव्य कहानी में एक ही समान तत्त्वों की अभिव्यंजना की जाती है । इतना ही नहीं विचारकों का तो यहाँ तक कहना है कि 'बिना नाटकीय ढंग का अनुसरण किए कहानी सफल नहीं हो सकती । नाटकीय गुणों के समावेश से इनके प्रभाव में प्रबलता आती है । हृदय पर गहरी छाप लगाने वाली रीतियों का प्रयोग, पात्रों के जीवन में संकट उपस्थित करना, स्थिति को प्रोत्साहन देना, *कथोपकथन की कलापूर्ण नाटकीय रचना केवल एक ही समस्या पर मनोयोग दृश्य का मर्मस्पर्शी चित्रण आदि चमत्कार पूर्ण कहानियों के ही लक्षण हैं और यह विकसित रूप नाट्यकला की सहायता का ही परिणाम है ।* अब इसे सिद्ध करने

---

१ समीक्षायन—डा० कन्हैयालाल सहल (पृष्ठ ११५)

आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १८९-९०)

की आवश्यकता नहीं है कि कहानी का यह सुन्दर, सरल, रोचक एवं कलामय रूप बहुत अंशों में नाटकों के द्वारा ही बन सका है। सच तो यह है कि यदि नाटक के ये सुन्दर उपकरण कहानियों से निकाल दिये जायें तो कहानी मनोरंजन का साधन न बनकर विरक्ति का साधन हो जाय।'[1] इसी प्रकार श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है 'आकार के सम्बन्ध में उपन्यास की अपेक्षा नाटक के साथ छोटी कहानी का अधिक सादृश्य है। नाटककार को भी इस बात पर दृष्टि रखनी होती है कि नाटक बहुत बड़ा न हो जाय और एकबार में ही वह समाप्त हो जाय। इस प्रकार के संकीर्ण क्षेत्र में ही नाटककार को अपना उद्देश्य सिद्ध करना पड़ता है। रंगशाला में अभिनय करने योग्य नाटक दो हजार पंक्तियों से अधिक का नहीं होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गल्प-लेखक एवं नाटककार को संकीर्ण क्षेत्र के अंदर ही अपने रचना-कौशल की विशिष्टता एवं मनोरम रूप में अपना उद्देश्य पूरा करना पड़ता है।'[2] यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बिना अभिनय के नाटक पूर्णतया रससृष्टि में असमर्थ ही रहता है जब कि कहानी के पढ़ने और मनोरंजन हेतु न तो किसी अन्य निश्चित स्थान पर ही जाना पड़ता है और न समय का ही प्रतिबंध रहता है। साथ ही अभिनय के समय रंगमंच को सजाने के लिए एकत्रित किए जाने वाले विपुल उपकरणों की भी कहानी के लिए आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार नाटक की अपेक्षा कहानी सर्वजन सुलभ है लेकिन कहानी की सफलता और उसके प्रभाव में प्रखरता, रोचकता तथा चमत्कार को लाने के लिए कहानी में वर्णित घटना-वैचित्र्य की नाटकीय अभिव्यंजना अत्यंत आवश्यक है। नाटकीय अभिव्यंजना से अभिप्राय नाटकीय गुणों के समावेश तथा नाटकीय ढंग के अनुसरण से है क्योंकि उनके अभाव में कहानी में साहित्यिकता का अभाव हो सकता है और वह मनोरंजन शून्य भी हो सकती है। कहानी में पात्रों का आकस्मिक प्रवेश, अकस्मात् अंत आदि में भी हमें नाटकीय ढंग ही दृष्टिगोचर होती है और साथ ही बहुत सी कहानियों का कथोपकथनात्मक आरंभ भी नाटकीय तथा कौतूहलपूर्ण नवीन होता है। प्रसाद जी की 'आकाश-दीप' का आरंभ देखिए—

'बन्दी
'क्या है? सोने दो।'
'मुक्त होना चाहते हो?'
'अभी नहीं। निद्रा खुलने पर चुप रहो।
'फिर अवसर न मिलेगा।
'बड़ी शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत-मुक्त करता।

१ साहित्य – श्री शिवनारायण शर्मा (पृष्ठ २८)
२ साहित्य की वर्तमान धारा—श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र (पृष्ठ ३०)

साम्य है। जिस प्रकार कहानी का सृजन एक विशिष्ट उद्देश्य के प्रतिपादन हेतु ही होता है और उसके प्रतिपादन के अनन्तर ही वह समाप्त हो जाती है उसी प्रकार निबंध भी एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु ही लिखा जाता है तथा उसके पूर्ण होने पर वह भी समाप्त हो जाता है। निबंध की भाँति कहानी भी व्यक्तित्वप्रधान ही है परंतु दोनों के शिल्पविधान में पूर्ण विभिन्नता है और दोनों में किसी भी व्यक्तिगत विचार का प्रतिपादन तथा उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति सर्वथा विभिन्न रूप में होती है। स्मरण रहे जब कि निबंध में केवल विषय-समस्या से सम्बंधित बौद्धिक विश्लेषण, शुष्क ज्ञान, तर्क एवं व्याख्या के ही दर्शन होते हैं वहाँ कहानीकार किसी भाव या समस्या के चित्रण विश्लेषण हेतु उसके अनुरूप कथावस्तु का अंकन कर आकर्षक इतिवृत्त में उसे गढ़ कर पात्रों और घटनाओं के माध्यम से कौतूहल-पूर्ण सजीवता और गति उत्पन्न करता है तथा इस प्रकार संपूर्ण कहानी के कार्य व्यापार में आकर्षण उत्पन्न होता है और वह अपने सामूहिक प्रभाव के सहित हृदय के चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। साथ ही जैसा कि डा० कन्हैयालाल सहल का मत है 'जिस निबंध में वर्ण्य-विषय तो हो किंतु व्यक्ति नदारद हो वह सच्चे अर्थ में निबंध नहीं। सच्चा निबंध लेखक वर्ण्य विषय का उतना प्रस्फुटन नहीं करता जितना वह अपने व्यक्तित्व को प्रस्फुटित करता है।'[1] परन्तु कहानी में ठीक उसके विपरीत स्थिति रहती है क्योंकि उसमें व्यक्ति तो गौण रहता है तथा वर्ण्य-विषय को प्रधानता दी जाती है। साथ ही निबंध के पाठक प्राय परिष्कृत बुद्धि वाले व्यक्ति ही होते हैं जब कि कहानी सामाजिकों की सामाजिक बुभुक्षा का सामाजिक सामग्रियों को जुटाकर शमन करती है अतः वह निबंध की अपेक्षा न केवल अधिक प्रभावोत्पादक है अपितु लोकप्रिय भी है।

जैसा कि एक समीक्षक ने लिखा है "कहानी में घटनाओं की योजना और उनका आकर्षण नाटक के ढंग का होता है"[2] तथा इसमें कोई संदेह नहीं कि दृश्य काव्य नाटक और श्रव्य काव्य कहानी में एक ही समान तत्त्वों की अभिव्यंजना की जाती है। इतना ही नहीं विचारकों का तो यहाँ तक कहना है कि "बिना नाटकीय ढंग का अनुसरण किये कहानी सफल नहीं हो सकती। नाटकीय गुणों के समावेश से इनके प्रभाव में प्रखरता आती है। हृदय पर गहरी छाप लगाने वाली रीतियों का प्रयोग, पात्रों के जीवन में संघर्ष उपस्थित करना, स्थिति को प्रोत्साहन देना, कथोपकथन की कलापूर्ण नाटकीय रचना केवल एक ही समस्या पर मनोयोग दृश्य का मर्मस्पर्शी चित्रण आदि चमत्कार पूर्ण कहानियों के ही लक्षण हैं और यह विकसित रूप नाट्यकला की सहायता का ही परिचायक है। बस इसे सिद्ध करने

---

१ समीक्षायन—डा० कन्हैयालाल सहल (पृष्ठ ११५)
आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १८६-९०)

भी आवश्यकता नहीं है कि कहानी का यह सुन्दर, सरल, रोचक एवं कलामय रूप बहुत अंशों में नाटकों के द्वारा ही बन सका है। सच तो यह है कि यदि नाटक के ये सुन्दर उपकरण कहानियों से निकाल दिये जायें तो कहानी मनोरंजन का साधन न बनकर विरक्ति का साधन हो जाय।"[1] इसी प्रकार श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र ने भी लिखा है "आकार के सम्बन्ध में उपन्यास की अपेक्षा नाटक के साथ छोटी कहानी का अधिक सादृश्य है। नाटककार को भी इस बात पर दृष्टि रखनी होती है कि नाटक बहुत बड़ा न हो जाय और एकआध में ही वह समाप्त हो जाय। इस प्रकार के संकीर्ण क्षेत्र में ही नाटककार को अपना उद्देश्य सिद्ध करना पड़ता है। रंगशाला में अभिनय करने योग्य नाटक दो हजार पंक्तियों से अधिक का नहीं होना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि गल्प-लेखक एवं नाटककार को संकीर्ण क्षेत्र के अंदर ही अपने रचना-कौशल की विशिष्टता एवं मनोरम रूप में अपना उद्देश्य पूरा करना पड़ता है।"[2] यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बिना अभिनय के नाटक पूर्णतया रससृष्टि में असमर्थ ही रहता है जब कि कहानी के पढ़ने और मनोरंजन हेतु न तो किसी अन्य निश्चित स्थान पर ही जाना पड़ता है और न समय का ही कोई प्रतिबंध रहता है। साथ ही अभिनय के समय रंगमंच को सजाने के लिए एकत्रित किए जाने वाले विपुल उपकरणों की भी कहानी के लिए आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार नाटक की अपेक्षा कहानी सर्वजन सुलभ है लेकिन कहानी की सफलता और उसके प्रभाव में प्रबलता, रोचकता तथा चमत्कार को लाने के लिए कहानी में वर्णित घटना-वैचित्र्य की नाटकीय अभिव्यंजना अत्यंत आवश्यक है। नाटकीय अभिव्यंजना से अभिप्राय नाटकीय गुणों के समावेश तथा नाटकीय ढंग के अनुसरण से है क्योंकि उनके अभाव में कहानी में साहित्यिकता का अभाव हो सकता है और वह मनोरंजन शून्य भी हो सकती है। कहानी में पात्रों का आकस्मिक प्रवेश, अकस्मात् अंत आदि में भी हमें नाटकीय ढंग ही दृष्टिगोचर होती है और साथ ही बहुत सी कहानियों का कथोपकथनात्मक प्रारंभ भी नाटकीय तथा कौतूहलपूर्ण प्रतीत होता है। प्रसाद जी की 'आकाश-दीप' का प्रारम्भ देखिए—

'बन्दी'
'क्या है ? सोने दो।'
'मुक्त होना चाहते हो ?'
'अभी नहीं' निद्रा खुलने पर चुप रहो।
'फिर अवसर न मिलेगा।
'बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल डालकर कोई शीत-मुक्त करता।

---

१ साहित्य — श्री शिवनारायण शर्मा (पृष्ठ ५८)
२ साहित्य की वर्तमान धारा — श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र (पृष्ठ ७०)

'आँधी की संभावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं ?'

'तो क्या तुम भी बंदी हो।'

'हाँ धीरे बोलो इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं ?'

'शस्त्र मिलेगा ?'

'मिल जायगा। पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?'

'हाँ।'

—आकाश-दीप जयशंकर 'प्रसाद

वस्तुत इस प्रकार की संवाद शैली को विशुद्ध ढंग से नाटकीय शैली कहना ही अधिक उपयुक्त होगा और इसीलिए न केवल प्रसाद जी अपितु अन्य कई कहानीकारों की कहानियों के कथोपकथनात्मक अंश पढ़ते समय हमें ऐसा प्रतीत होता है मानों कि हम कोई नाटक ही पढ़ रहे हों। यहां यह भी स्मरण रहना चाहिए कि इस प्रकार के संवादों में प्रसंगानुसार पात्रों के क्रियाकलाप सम्बन्धी संकेत भी रहते हैं। यहाँ एक दो उदाहरण उद्धृत करना असंगत न होगा। देखिए—

"सत्या अपने उस भारी सन्देह के साथ सो गयी थी। सुशीला बड़ी देर तक सत्या के पलंग के पास ही कुर्सी पर बैठी रही। अपने पलंग पर पहुँची थी कि सत्या चिल्लाई 'जीजी', 'जीजी'।

सुशीला कुछ भी समझ नहीं पाई थी। पास पहुँची। देखा कि सत्या सफेद पड़ गयी थी। और भय से काँपती बोली 'जीजी न जाने क्यों भारी डर लग रहा है।"

'मैं तो जगी हूँ।'

'फिर वह आया था।

'कौन।'

'वही लड़का। उसके हाथ में वही खिलौना था। बोला 'चल सत्या मेरे साथ, मुझे देरी हो रही है।

'जीजी को मैं नहीं छोड़ूँगी मैंने कहा था और वह खिलखिला कर हँस पड़ा।

सुशीला बात नहीं समझ सकी थी। दिमागी यह तमाशा या स्वल्प भार केवल स्वप्न ही तो था। क्या सत्या मर रही है। उसने सत्या की 'पल्स' देखी —— सुस्त। घबरा गई। उठकर बाहर आई। दूसरे कमरे में धरा फोन उठाया, नम्बर मिलाकर चिल्लाई थी डाक्टर. सत्या का दिल डूब रहा है।

लौटकर सत्या के पास बैठ गई थी। सत्या अब सोती थी—

'भाभी मैं उसके साथ जाऊँगी।'
'और अस्पताल, वह सारी स्कीम!'
'मुझे माफ़ करना भाभी।'
'क्या सत्या!'
'मैं उससे प्रेम करती हूँ!'
'प्रेम!'
'तू अस्पताल चलाना। किसी से प्रेम मत करना। वह मुझे बुला रहा है'

—तमाशा पहाड़ी

और भी—

'खाना पी चुकने के पश्चात् लैम्प सिरहाने रक्खे वह एक डेढ़ घंटे लाई हुई पुस्तक पढ़ता रहा। पढ़ कर जब उसने बत्ती कम की तो पास ही की चारपाई पर लेटी हेम को देखा। पुकारा 'हेम!'

'हूँ।' स्वर कराहता-सा था।

'होने लगा सिर में दर्द? मैंने तो पहिले ही कहा था कि इस को भटकौनी ही ना लेंगे, पेट में गाम थोड़े ही रहती है?' और वह बिस्तर से बाहर आ गया। लैम्प तेज़ किया।

'ज़ोर से हो रहा है?' पास आकर सिर पर हाथ रक्खा, गरम था—'अब ठीक नहीं? दूसरे कमरे में जाकर गोली लाया, शीशे के गिलास में पानी भी। पास आकर बोला- 'लो इसे पी लो?' सिरहाने की ओर बैठकर सहारा देकर उसे उठाया। हेम ने चुपचाप गोली खाकर पानी पी लिया। वह अमृतांजन की डिबिया लाकर उसके सिरहाने बैठ गया।

'लाओ मल दूँ।'

'अरे तुमने तो आफ़त कर दी भला ज़रा सा सिर में दर्द है, ठीक हो जाएगा।'

'चुप रहो।' तकिये पर अधलेटा होकर वह उसके माथे पर मलने लगा।

'डाक्टर को ले आऊँ, विभूति को?' अरुण ने पूछा।

'तुम भी गज़ब कर रहे हो?' हेम हँस दी फिर एकदम चौंकी 'क्यों भला तुम्हें माँ की याद है।'

'नहीं—मैं इतनी बुआ के पास था। जब मैं दस बरस का था तो माँ मर गई और अब तुम दस बरसों की हुई तो पिता जी—हम दोनों अभागे हैं।' प्यार धीरे से वह व्यथा की हँसी हँसा। उसका हाथ हेम के सिर माथे पर चलता रहा दीवार पर उसकी परछाईं—चुप निश्चल।

'अब होते तो पन्द्रह अगस्त को छोड़ दिये जाते।' हेम बोली।

'हाँ शायद उन लोगों ने जेल में ही विद्रोह कर दिया था, दीवार फाँदते हुए गोली लग गई।' हाथ उसी तरह चलता रहा।

'क्यों भैया, कैसा लगता होगा, अकेले ही अकेले वहाँ, वही बँधी-बँधी दिनचर्या। काले पानी वालों का जीवन कैसा होता होगा।'

'मुझे क्या मालूम ?' फिर धीरे से हँस कर बोला—'वैसा ही होता होगा जैसा हमारा है।'

—'बारह वर्ष बारह घन्टे' राजेन्द्र यादव

इतना ही नहीं हिन्दी में तो अब नाट्य कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं और जिस गति से उनका प्रकाशन हुआ है उसे देखते हुए कोई आश्चर्य न होगा कि भविष्य में उनकी संख्या काफी अधिक हो जाए। आधुनिक कहानीकारों में श्री रावी को इस दिशा में विशेष सफलता मिली है तथा उनकी 'पूर्व और पश्चिम' नामक पुस्तक में दस नाट्य कहानियाँ संगृहीत हैं। यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि इन नाट्य कहानियों में नाटकीय संकेतों की प्रचुरता सी रहती है और इस प्रकार उन्हें कहानियाँ न कहकर नाटक कहना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। एक उदाहरण देखिए—

'[आधुनिक ढंग का एक सजा हुआ शयन गृह। पीछे की दीवार के सहारे एक लम्बा सोफा और उसके पास दो कोच पड़े हुए हैं। दीवार से सटी, सोफा के किनारे, कपड़ों की एक आलमारी है। आलमारी के बगल में एक आदमकद शीशा जड़ा हुआ सिंगारदान है। कमरे के बीचो बीच दो पलंग बिछे हुए हैं। उन दोनों के बीच एक तिपाई है। कमरे में बिजली का प्रकाश है। उधर वाले पलंग का लिहाफ उघरा हुआ अस्त व्यस्त पड़ा है—उस पर सोने वाला उठ गया है। इधर के पलंग पर एक सुन्दर नवयुवती—रेखा गले से पैर तक लिहाफ में लिपटी सो रही है। पलंग के सिरहाने की ओर के दरवाजे से एक दूसरी नवयुवती पहली की अतिथि और सहेली, रजनी प्रवेश करके इस सुन्दरी के पलंग पर बैठ जाती है। रेखा आँखें खोल देती है।]

रजनी—(रेखा के ऊपर झुकी हुई) तुम अब बहुत सोने लगी हो रेखा, मैं कब की उठी हुई हूँ।

रेखा—(एक अँगड़ाई लेकर) हिस्ट्री की किताबों और परचों का भूत अब तो मेरे सिर पर नहीं है। सुख की नींद अब भी न सोऊँ। रात में जागने से अधिक श्रम करती हूँ। (रजनी की आँखों में आँखें गड़ा कर मुस्कराती है)

रजनी—मानो में जागने से अधिक काम ! यह किसी कविता की भाषा है या वही तुम्हारी पुरानी ओकल्ट फिलासफी का कोई सिद्धान्त ? मैं आज जाऊंगी ।

रेखा—तुम अभी निरी बच्ची हो रजनी । तुम आज जाना चाहती थी ! नहीं नहीं जाने दूँगी । ऐसी मुसीबत क्या है ? रमेश दादा को मैं तार दे दूँगी रजनी अभी पन्द्रह दिन और नहीं जा सकती ।

रजनी—पन्द्रह दिन मुझे रोक कर क्या करोगी रेखा ?

रेखा—पन्द्रह दिन में जवान कर दूँगी ।

[दोनों हँसती हैं । रेखा उठकर तकिये के सहारे बैठ जाती है ।]

रेखा—रजनी मैं स्त्री हूँ ! हूँ न ?

रजनी—हाँ, हाँ ना ! इसको भी याद दिलाने की आवश्यकता है ?

रेखा—निस्संदेह मैं स्त्री हूँ (गर्दन झुका कर कुछ देर तक अपने सीने की ओर देखने के पश्चात्) अब पूरी स्त्री हूँ लेकिन रजनी, मैं मनुष्य भी हूँ ।

रजनी मनुष्य ?

रेखा—हाँ मनुष्य । स्त्री और पुरुष, मनुष्य के केवल दो रूप हैं । मैं वह सब कर सकती हूँ जो किसी भी मनुष्य द्वारा किया जा सकता है ।"" ... '

—रेखा मनुष्य भी है यवी

स्मरण रहे जेम्स डब्ल्यू लीन (James W Linn) के अनुसार Short story is a representation, in a brief, dramatic form of a turning point in the life of a single character अर्थात् आधुनिक कहानी संक्षेप में नाटकीय ढंग से किसी एक पात्र के जीवन में संक्रमण बिन्दु की अभिव्यंजना ही है । वस्तुत नाटकीय गुणों के अभाव में कहानी हृदयस्पर्शी नहीं होती क्योंकि वास्तविकता तो यह है कि उसमें किसी विशिष्ट पात्र के जीवन की किसी महत्वपूर्ण घटना का ही नाटकीय रूप प्रदान किया जाता है और प्रभाव एवं तथा शैली की दृष्टि से तो दोनों एक दूसरे के बहुत समीप पहुँच जाते हैं[1] लेकिन नाटक की अपेक्षा कहानी एकांकियों के अधिक अनुरूप जान पड़ती है तथा यह कहना अनुचित न होगी कि नाट्य साहित्य में जो स्थान एकांकी नाटकों को दिया जाता है वही कथा साहित्य में कहानी का है । डा० नगेन्द्र का कथन है कि 'स्पष्ट तथा एकांकी एक अंक में समाप्त होने वाला नाटक है और यद्यपि इस अंक के विस्तार के लिये कोई नियम नहीं है फिर भी दोनों कहानी की तरह उसकी एक सीमा तो है

1 Evelyn May Albright ने भी इस तथ्य का समर्थन और स्पष्ट की तुलना करते हुए ... लिखा है ? — The story writer like the dramatist is compelled by lack of space to present his situation effectively

ही। परिधि का यह संकोच कथा-संकोच की ओर इंगित करता है और एकांकी में हमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर, उसके एक पहलू, एक महत्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा एक मदीप्त क्षण का चित्र मिलेगा।"[१] यद्यपि एकांकी की इस परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि एकांकी और कहानी में कोई मौलिक अन्तर नहीं है तथा दोनों एक ही वस्तु हैं और दोनों का अन्त भी आकस्मिक ही होता है। श्री प्रभाकर माचवे का भी यही मत है कि "कहानी बहुत कुछ एकांकी नाटक के समान होती है। प्रभाव की एकाग्रता, जीवन का आंशिक रूप चित्रण, संवाद की स्वाभाविकता, घटनाओं की नाटकीयता आदि दोनों में एक सी आवश्यक वस्तुएँ हैं।"[२] परन्तु दोनों के उद्देश्य एवं दृष्टिकोण में समानता होते हुए भी शिल्पविधान और रूपरचना की दृष्टि से दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। यों तो श्री मोहनलाल 'जिज्ञासु' का भी यही विचार है कि "जिस प्रकार एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक क्षण मेघमाला में दामिनी की चमक की तरह विद्यमान रहता है उसी प्रकार कहानी में भी जीवन के किसी अंग विशेष की व्यंजना होती है"[३] लेकिन जैसा कि डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है "कहानी और एकांकी नाटककला में कथावस्तु, पात्र और संवाद आदि तमाम तत्त्वों के होते हुए भी दोनों कला वस्तुएँ अपने रूपविधान में विभिन्न हैं"[४] वह वस्तुतः उचित ही है। यहाँ यह

in a few strong strokes, and to render his main characters prominent in their true relations to teach other and to their whole environment without the aid of many groups of lesser characters and without the background of a long series of minor events which prepare for and emphasize the climax The artificial isolation of a limited number of people and events, the artistic heightening of dialogue the concentration of a single issue the vivid picturing of a scene that *is significant* are essentially dramatic In a word the drama is largely responsible for the brilliant technique which is one of the distinguishing features of modern story writing

— (From the Short Story Its Principles and Structures by Evelyn May Albright)

१ आधुनिक हिंदी नाटक—डा० नगेन्द्र
२ समुलन—श्री प्रभाकर माचवे (पृष्ठ १८६)
३ कहानी और कहानीकार—श्री मोहन लाल जिज्ञासु (पृष्ठ ११)
४ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ १४७)

स्मरण रखना चाहिए कि कहानी कला के शिल्प विधान पर विचार करते समय हम देखते हैं कि कहानी निर्माण की विभिन्न प्रणालियों के अंतर्गत नाटकीय शैली का भी उल्लेख किया जाता है और इस नाटकीय शैली के अंतर्गत भी दो मुख्य प्रणालियाँ प्रचलित हैं जिनमें से एक तो संलाप प्रणाली या वार्तालाप प्रणाली कहलाती है तथा दूसरी एकांकी नाटक के विधान का अनुसरण करती है और इस दूसरी प्रणाली का प्रचलन आधुनिक काल में विशेष रूप से देखा पड़ता है।[1] परन्तु एकांकी दृश्य-काव्य के ही अंतर्गत आता है और कहानी श्रव्य काव्य के अंतर्गत अतः एकांकी नाटक एक अभिनय की वस्तु है तथा मेरियन गौफोर्ड के अनुसार "इसकी रंगशाला इसी में निहित है।" एकांकी कला का संपूर्ण प्रभाव और उसकी संपूर्णता के हेतु रंगमंच की समस्त आवश्यकताएँ अपेक्षित हैं जब कि कहानी में किसी बाह्य स्थिति का तनिक भी प्रतिबंध नहीं रहता। इतना ही नहीं डा० सत्येन्द्र के शब्दों में "एकांकी के लिए कथा भूमि' नहीं जैसे नाटक के लिए है केवल स्तम्भ या धुरी (pivot) है जिस पर एकांकीकार अपने एकांकी की वस्तु को घुमाता है ... एकांकी में कथा निमित्त भर धुरी के बिंदु जैसी बन जाती है और उसके ऊपर पात्रों के उभरे व्यक्तित्व की झाँकी में भी अधिक विषय की मार्मिकता प्रकट हो उठती है।"[2] साथ ही कहानी की अपेक्षा एकांकी में घटनाओं से अधिक महत्व पात्रों को दिया जाता है और पात्रों के माध्यम से ही घटनाओं का आरोहावरोह, कार्य-व्यापार आदि का चित्रण होता है।

---

१ एकांकी नाटक प्रणाली का एक उदाहरण देखिए—

"और ठीक उसी समय स्त्री का पति प्रवेश करता है। पति वैसा ही उमड़ा हुआ है मतवाला, न कहता न बोलता जिसमें कुछ मतवाला भी है कुछ उदासीनता भी लेकिन क्या मतवाला और उदासीनता प्यार के परिचय के ही दो पहलू नहीं हैं?

पति—कामनी।

स्त्री—जी।

पति—(विहँसता हुआ) आज मैं बाहर खड़ा खड़ा यह सोचता था न जाने कौन गुमसुम बातें कर रहा है। यह क्या पता था कि आप मुर्दे तस्वीरों से भी बातें कर सकती हैं।

स्त्री—जी-हाँ।

पति—काफी इतनी तन्मय होकर बात कर रही थीं कि मुझे मालूम ही नहीं। कौन था वह मनमोहन सुख विलासन चीज ——— आया था?

स्त्री—(मुस्कराती हुई) बसंत।

पति—न समझे हुए कौन बसंत?

—बसंतोत्सव — (पृष्ठ १०)

२ हिंदी एकांकी—डा० सत्येन्द्र (पृष्ठ २२-२३)

डा० रामकुमार वर्मा का भी यही मत है "एकांकी में पात्र ही महारथी होता है। घटनाएँ रथ बनकर समस्या संग्राम में उसे गति प्रदान करती हैं। मेरी दृष्टि में पात्र प्रधान एकांकी कला की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली हुआ करते हैं।"[1] चूँकि एकांकी-कला अपने रूपविधान की मान्यताओं में ही सीमित रहकर अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच पाती है जब कि कहानीकार को अधिक से अधिक शिल्प विधान संबंधी अधिकार प्राप्त होते हैं अतः एकांकी कला की अपेक्षा कहानी कला स्वभाविक ही पूर्ण सुगमता और सरलता के साथ एकांत प्रभाव, मनोरंजन तथा आनन्द प्रदान करने में अधिक सक्षम होती है लेकिन अब तो आधुनिक कहानियाँ और एकांकी एक दूसरे के अधिक समीप पहुँच रहे हैं क्योंकि रंगमंच और अभिनय के अभाव से कहानी की भाँति एकांकी भी प्रायः पढ़ने के लिए अधिक लिखे जाते हैं। इस प्रकार डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा के शब्दों में 'कहानी और उपन्यास, और कहानी और नाटक में तो भेद है, पर एकांकी में आकर कहानी एकांकी का कथात्मक रूप ही ज्ञात होती है। इस आधार पर यदि दोनों की रचना प्रणाली की विवेचना की जाय तो विभिन्न तत्त्वों और उनके संयोजन के विचार से भी दोनों में समानता है—ऐसा दिखाया जा सकता है।'[2]

साहित्य के अन्य अंग उपांगों से कहानी की तुलना करते समय हमें न केवल गद्य से अपितु कविता से भी कहानी का संबंध स्पष्ट करना होगा। यद्यपि कविता को पद्यबद्ध रचना तथा कहानी को गद्य में लिखी जानेवाली कृति माना जाता है परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कहानियाँ कविता में नहीं लिखी जातीं। आख्यानक काव्य या कथा काव्य की परम्परा तो प्राचीन ही है और महाकाव्य तथा खंडकाव्य के कथावस्तु चरित्र, वातावरण आदि कतिपय तत्त्व भी कहानी के तत्त्वों से सर्वथा विभिन्न नहीं हैं। स्मरण रहे महाकाव्य में तो छोटी कहानियों के आकार प्रकार की अनेक प्रासंगिक कथाएँ अंतर्भूत रहती हैं तथा उसमें संपूर्ण जीवन का चित्रण किया जाता है और खंडकाव्य में भी जीवन की किसी विशिष्ट घटना को आधार बनाया जाता है लेकिन काव्यमर्मज्ञों में रसपक्वता आवश्यक मानी जाती है जब कि कहानी में केवल भाव चित्रण ही अपेक्षित है और साथ ही शैली की विभिन्नता तो उनमें है ही। यों तो कवि और कहानीकार चिरकाल से मानवजीवन के भाष्यकार माने जाते हैं तथा दोनों का जन्म मानव-जीवन और मानव हृदय से ही हुआ है और एक यदि भावनाओं का गायक कहा जाता है तो दूसरा मनोवृत्तियों का निरूपक लेकिन कविता में भावजगत की घन संचित अनुभूतियों को मूर्तिमान रूप प्रदान किया जाता है जिनकी कि अभिव्यक्ति में कल्पना का महत्त्वपूर्ण योग रहता है, जब कि कहानी का सृजन जीवन के किसी

१ अनुराग—डा० रामकुमार वर्मा (भूमिका पृष्ठ १४)
२ कहानी का रचना-विधान—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (पृष्ठ ७८)

विशिष्ट सत्य को आलोकित करने के उद्देश्य से ही होता है अतः उसमें कविता की अपेक्षा चिन्तन और मनन की प्रधानता रहती है। कविता केवल भाव या हृदय चित्रण पर ही आधारित रह सकती है लेकिन कहानी में सामान्य दैनिक जीवन की सजीव सत्यता अपेक्षित है। स्मरण रहे कि डा० भगीरथ मिश्र ने विस्तार के साथ कहानी और कविता का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है "कहानी और कविता में स्थूल भेद तो यह है कि कहानी की भाषा गद्य और कविता की भाषा पद्य रूप होती है। कविता के अंतर्गत मैं आजकल की छन्द-स्वच्छन्द कही जाने वाली कविता को भी ले रहा हूँ। कविता के अंतर्गत छन्द आवश्यक है। जहाँ पर हमारा उद्गार किसी भी नियमित गति के अनुकूल चलता है वहीं छन्द आ जाता है। गति ही छन्द का प्रमाण है और गति कविता के लिए भी अनिवार्य है। व्याकरण के नियमों की अवहेलना या उसका त्याग जहाँ पर भी गति के लिए किया जाए वहीं हमें छन्द की सत्ता माननी पड़ेगी। अतः कविता और कहानी का स्थूल भेद कहानी की गद्य रचना में है। दूसरा भेद कहानी और कविता में यह है कि कविता विशिष्ट भावनाओं को लेकर चलती है जब कि कहानी जीवन की सामान्य अनुभूतियों को ही ग्रहण करती है। कवि वस्तुओं और अनुभूतियों के कल्पनागत रूपों का चित्रण करता है, कहानीकार अनुभूत जीवन की यथार्थता को। कवि वास्तविकता का ध्यान रखते हुए भी ऐसा चित्र उपस्थित करेगा जो हमारी कल्पना को अधिक सन्तुष्ट करे। उसका प्रयत्न वस्तु की अंतरात्मा का चित्रण करने में और उस भावभास सत्य को पकड़ने में है जो हमारी आंतरिक वृत्तियों का जीवन है, पर कहानीकार कल्पना के सहारे वास्तविक जीवन के स्थूल दृश्य उपस्थित करता है। हमारे अनुभूत जीवन के चित्रों को फिर से जगाता है। कवि विषय से पूर्णमिलकर एक हो जाता है। अतः कविता अपने और पाठक के बीच में कोई अन्तर नहीं रखना चाहती और कहानीकार विषय का दृष्टा रहता है और पाठक देखे सुने जीवन के दृश्यों को फिर से देखता है। कहानीकार विषय और घटनाओं का संचालक होता है, परन्तु कवि उनके साथ स्वयं चलता है।"[1] इसमें कोई सन्देह नहीं कि कहानी का भावात्मक अंश कविता ही है और हिन्दी कहानियों में कई ऐसे स्थल दृष्टिगोचर होते हैं जहाँ कि भावनात्मक शैली में कहानीकारों ने किसी पात्र या दृश्य-विशेष का काव्यात्मक चित्रण किया हो।[2]

1 काव्य-शास्त्र—डा० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ [illegible])

2 "तुम उतना [illegible] पूछा हो मैं उनका [illegible] [illegible] [illegible] —हृदय के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] कि मैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।"

—[illegible]

इतना ही नहीं कुछ कहानियाँ तो ऐसी भी दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें काव्यात्मकता की प्रधानता सी हो जाती है। स्मरण रहे कि निराला जी की अधिकांश कहानियों में स्पष्ट रूप से कविता की छाया विद्यमान है और कहीं कहीं तो वे उनमें रहस्यशक्ति की वन्दना सी करते प्रतीत होते हैं।[1] यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि हमारी अधुनातन नई प्रतिभाओं में भी भावात्मकता की ओर विशेष रुझान दीख पड़ती है और इस प्रकार नई कहानियों में भी काव्यात्मक अंशों का नितान्त अभाव नहीं है।[2] लेकिन इतना अवश्य है कि प्रायः उनमें रहस्यात्मकता और

इसी प्रकार का चमत्कारपूर्ण चित्रण निम्नांकित अवतरण में भी देख पड़ता है

"उस दिन की रात्रि मानो मदिरा के खुमार से अचेतन सी हो रही थी। निस्तब्ध रात्रि मुग़ल बादशाह का महल। प्रहरीगण के नैनों में निद्रा की सम्मोहिनी। झपती सी आँखें। केवल उस दिन के संसार की श्रेष्ठ सुन्दरी नूरजहाँ के नैनों में निद्रा के बदले में जीवन्त विस्मय प्रहरी की भाँति बैठा हुआ था। उसके कमरे में सब दीप निर्वापित थे किन्तु फिर भी एक उज्ज्वल विचित्र प्रकाश से जगमगा रहा था। और नूरजहाँ चाँदी की चौकी पर पत्थर की रकाबी पर रक्खे हुए हीरे को अपलक नैनों से निहार रही थी। उस हीरे में कदाचित चाँद ने अपनी ज्योत्स्ना को निचोड़कर भर दिया हो लुटा दिया हो ऐसा लग रहा था। तीव्र नहीं किन्तु स्निग्ध प्रकाश जो कि मन में अपना अस्तित्व रख जाया करता है वैसे ही विचित्र प्रकाश से कमरा उज्ज्वल हो रहा था।

—राणा प्रताप का हीरा उषादेवी मित्रा

१ देखिए—

"अब धीरे धीरे उगने लगा। देखा आकाश की नीली लता में सूर्य चन्द्र और तारकों के फूल हाथ जोड़े लिए हुए अज्ञात शक्ति की समीर से हिल रहे हैं पृथ्वी की लता पर पर्वतों के फूल हाथ जोड़े नमस्कार कर रहे हैं—आशीर्वाद की शुभ्र हिम धारा उन पर प्रवाहित है मनुष्यों की फैली लता में आवर्तों के फूल खिले हुए अज्ञात किसी पर चढ़ रहे हैं डाल डाल की बाहें अज्ञात की ओर पुष्प बढ़ाए हुए हैं। धूप-धूप पूजा के धूप और कलश हैं। इसके बाद उन्हीं उन्हीं पुष्पों के पुष्पासवों से दूर और छाया प्रतीयमान होने लगे—अब जैसे आरती करते हिमने मौन भाषा में भावना स्पष्ट करते हों सबमें गंध निर्गत हो रही है मलय की पवन वहन कर रही है पुष्प-पुष्प पर अज्ञात कहीं से आशीर्वाद की किरणें पड़ रही हैं इसके बाद उसकी स्वर्गीया प्रिया वैसे ही सुहाग का सिन्दूर लगाए हुए सामने आई।"

— 'भक्त और भगवान' सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

२ देखिए—

"आषाढ़ की प्रथम घटाएँ किरणों के कमलों पर लहराने वाली भ्रमर-पंक्ति की भाँति आईं किन्तु रिमझिम संदेश देकर चली गईं। उद्यान में मोर पंख फैलाकर नाच उठे किन्तु

दुरूहता का लेश मात्र भी दृष्टिगोचर नहीं होता। वस्तुतः कहानी में कल्पना, भाव तथा बुद्धितत्व में से अंतिम को ही विशेष महत्व दिया जाता है और साथ ही कविता तथा कहानी की भावग्राहिका-शक्ति में भी विभिन्नता है क्योंकि कहानी की अपेक्षा कविता के प्रेमी सीमित संख्या में ही होते हैं। वस्तुतः अनुभूति, कल्पना और चिन्तन के विविध वेष्टनों में ढँकी हुई कविता का प्रकृत रूप भावविधान तथा उक्ति-वैचित्र्य के भार से इस प्रकार दब जाता है कि वह हमें दुरूह प्रतीत होती है जब कि कहानी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता ही है जिसके फलस्वरूप वह अन्य साहित्यांगों की अपेक्षा अधिक मनोरंजक और मर्मस्पर्शी मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कविता और कहानी का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा है कि "कविता सुननेवाला किसी भाव में मग्न रहता है और कभी-कभी बार-बार एक ही पद्य सुनना चाहता है। पर कहानी सुनने वाला आगे की घटना के लिए आकुल रहता है। कविता सुनने वाला कहता है "ज़रा फिर तो कहिए"। कहानी सुनने वाला कहता है 'हाँ! तब क्या।'"[1] इस उद्धरण से भी यही स्पष्ट होता है कि कहानी हमारी उत्सुकता को जाग्रत कर आगे की घटनाओं से ज्ञानराशि प्राप्त करने के लिए बाध्य करती है जब कि कविता में ज्ञानार्जन वृत्ति की अपेक्षा रमणवृत्ति ही विशेष रूप से रहती है। इस प्रकार श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी ने कविता की अपेक्षा कहानी को ही जीवन की वास्तविक झलक अंकित करने में समर्थ मानते हुए कहा है "मनुष्य की आत्मा का मूल स्वर यों तो व्यापक रूप से समस्त साहित्य है, किन्तु मनोवेगों का जो रूप शिल्प-विधान के माध्यम से कविता द्वारा प्रकट होता है वह जितना अधिक स्थायी होता है उतना ही चिन्तनहीन भी रहता है। कदाचित इसका कारण यह है कि सभ्यता के युग-युगान्त पार कर डालने पर भी कविता का गेयगुण अब तक यथावत् स्थिर है। जो कविता गेय नहीं हो पाती, वह स्मरण शक्ति को पावन गान के आश्रय से भी वंचित हो जाती है और गेय बनी रहने के कारण वह परिवर्तनशील जीवन की नाना वृत्तियों पर विचार, तर्क, मंथन और चिंतन प्रकट करने की अपनी सामर्थ्य सम्पदा भी खो देती है।"[2] कविता के विविध रूपों में से गीत को कहानी की तुलना में यथासंभव रखा जा सकता है तथा भावात्मकता और वैयक्तिक दृष्टिकोण की प्रधानता के कारण दोनों में

उसके मुख को देखकर [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] न कर पाया।

—[illegible] की मृत्यु [illegible] [illegible]

1 चिन्तामणि (दूसरा भाग) - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (पृष्ठ [illegible])

2 प्रतिनिधि कहानियाँ — भगवतीप्रसाद वाजपेयी (पृष्ठ [illegible])

घनिष्ट संबंध भी जान पड़ता है अतः बहुत से विचारक काव्य में जो स्थान गीत का है वही कथासाहित्य में कहानी का भी मानते हैं लेकिन दोनों में पर्याप्त समानता होते हुए भी कहानी और गीतिकाव्य में यह मूल अंतर बना ही रहता है कि गीत भाव जगत की अनुभूतियों के आधार पर सृजित होते हैं और वे भावना के गगन में पंख खोलकर उड़ने लगते हैं तथा कल्पना-तत्व के साथ-साथ संगीतात्मकता की तादात्म्यता भी उनमें रहती है परंतु कहानीकार अपनी भावनाओं को सजीवता और स्वाभाविकता प्रदान करने के लिए ठोस धरातल खोज निकालता है तथा इस प्रकार कहानी में जीवन के धरातल से जीवन की आलोचना और सत्यदर्शन ही अंकित किया जाता है। गीतों की सी भावुकता के लिए कहानी में कम से कम स्थान की गुंजाइश रहती है।

यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने एक स्थल पर कहा है कि हर एक काल्पनिक कृति में मौलिक सत्य अवश्य विद्यमान रहता है तथा इसी प्रकार एक विचारक का मत है कि इतिहास में सब कुछ यथार्थ होते हुए भी वह असत्य है और कथा-साहित्य में सब कुछ काल्पनिक होते हुए भी वह सत्य है अतः कहानी और इतिहास के पारस्परिक संबंध पर विचार करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। वस्तुतः इतिहास में अतीत की अनेक घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में उपस्थित किया जाता है लेकिन उन्हें कहानियाँ नहीं कहा जा सकता तथा इतिहास के सत्य और कहानी के यथार्थ में विभिन्नता भी है क्योंकि कहानीकार को किसी भी प्रकार के तथ्य-संग्रह की आवश्यकता नहीं रहती और वह सम्भाव्य सत्य को ही अंकित करता है जब कि इतिहासकार को तथ्यान्वेषण और घटना के घटित होने के प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ते हैं। इतिहास में समाज और जाति को प्रमुखता दी जाती है तथा व्यक्ति का महत्व गौण ही रहता है लेकिन कहानी में व्यक्ति को प्रधानता देते हुए मनुष्य की उच्चतम अभिलाषाओं को भी स्थान दिया जाता है। इतिहासकार देश और काल का यथातथ्य चित्रण ही कर सकता है तथा इतिहास में सत्य का जो रूप अंकित होता है वह देश और काल तक ही सीमित रहता है अतः उसमें उत्सुकता और रोचकता पर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा जाता लेकिन कहानी में तो हृदय को संवेदनशील बनाने की क्षमता विद्यमान है और यह न केवल सत्य, शिव और सुन्दर का रूप हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है अपितु लोकोत्तर आनंद की भी सृष्टि करती है। स्मरण रहे इतिहास के आधार पर लिखी गई कहानियों में भी कहानीकार व्यक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करता है। श्री प्रेमचंद का भी यही मत है कि "कहानी में नाम और सन के सिवा और सब कुछ सत्य है और इतिहास में नाम और सन के सिवा कुछ भी सत्य नहीं।"[1]

१ कुछ विचार—श्री प्रेमचंद (पृष्ठ ३७)

इस प्रकार आधुनिक कहानी के स्वरूप पर विचार करते समय हम यह कह चुके हैं कि कहानी का अपना निजी स्वरूप और अपनी स्वतन्त्र गतिविधि है तथा प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से तो भी विश्वनाथप्रसाद मिश्र का यह मत उचित ही जान पड़ता है कि "कहानी ने कविता को दबाया, निबंधों को भगाया, नाटकों को नचाया और उपन्यासों को खाया" अर्थात गद्य की अन्य समस्त विधाएँ उसकी समकक्षता में अपना अधिक महत्व नहीं रखतीं। इस प्रकार आधुनिक कहानी की सबसे सरल एवं पूर्ण परिभाषा डा० मोहनलाल के शब्दों में यह हो सकती है—"आधुनिक कहानी साहित्य का वह विकसित कलात्मक रूप है, जिसमें लेखक अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा, कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक, चरित्र, वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।"[1] इसी प्रकार डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने भी कहानी की सुन्दर और सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत की है—"कहानी गद्यरचना का कथात्मक वह स्वरूप है जिसमें सामान्यतः लघु विस्तार के साथ किसी एक ही विषय अथवा तथ्य का उत्कर्ष संवेदन इस प्रकार किया गया हो कि वह अपने में सम्पूर्ण हो और उसके विभिन्न तत्त्व एकोन्मुख होकर समन्विति में पूर्ण योग देते हों।"[2]

मानव शरीर कुछ तत्त्वों से निर्मित है और यदि उनमें से किसी एक का भी अभाव हो जाए तो सारा शरीर ही मिट्टी में मिल सकता है अतः स्वाभाविक ही इन तत्त्वों का अत्यन्त महत्व माना जाता है। इसी प्रकार साहित्य के प्रत्येक अंग उपांग के भी कुछ निश्चित तत्त्व रहते हैं और अपने मनोवांछित अभिप्राय तक पहुँचने के हेतु कथाकार को कलासृजन में जो प्रक्रिया करनी पड़ती है उसे टैकनिक, शिल्पविधान या रूप-विधान कहा जाता है और उसके लिए जिन उपकरणों को वह ग्रहण करता है वे समस्त उपकरण उसके मूलतत्त्व कहलाते हैं। आधुनिक कहानी का स्वरूप निश्चित करते समय हम देख चुके हैं कि विचारकों ने उसके तत्त्वों की भी चर्चा की है और इस प्रकार कहानी का निर्माण कुछ विभिन्न तत्त्वों के आधार पर ही होता है परन्तु विचारकों में इस सम्बन्ध में मत विभिन्नता सी पाई जाती है कि वस्तुतः कहानी के कितने तत्त्व माने जाएँ? यों तो उपन्यास की भाँति कहानी के भी कथानक या कथावस्तु, पात्र और चरित्रचित्रण, कथोपकथन, वातावरण, शैली और उद्देश्य नामक छः तत्त्व माने जाते हैं तथा शरीर के अवयवों की भाँति इन तत्त्वों का भी अन्योन्याश्रित होना आवश्यक कहा जाता है परन्तु यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि कृति के रूप विशेष के कारण इन तत्त्वों के प्रयोग में कुछ

१ हिंदी कहानियाँ सम्पादकर्ता डा० मोहनलाल (भूमिका पृष्ठ २१)
२ कहानी का रचना-विधान—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (पृष्ठ १७)

विभिन्नता सी रहती है। जैसा कि अभी अभी हम कह चुके हैं वस्तुत: अधिकांश विचारक इन छ: तत्त्वों को ही कहानी के प्रमुख तत्त्व मानते हैं और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री गुलाबराय, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, डा० भगीरथ मिश्र प्रभृति विचारक इन छ: तत्त्वों को ही कहानी-निर्माण में आवश्यक समझते हैं परन्तु डा० रामकुमार वर्मा डा० विनयमोहन शर्मा और श्री मोहनलाल 'जिज्ञासु' आदि समीक्षकों ने तो कहानी के केवल पाँच तत्त्व ही माने हैं। स्मरण रहे कि डा० रामकुमार वर्मा का मत है कि "कहानी मुख्यत: पाँच अंगों में विभाजित की जाती है। प्रथमत: कहानी उन घटनाओं और कार्यों से सम्बन्ध रखती है जो पात्रों द्वारा किए जाते हैं और वही कथानक का रूप ले लेते हैं। दूसरे, ऐसी घटनाएँ जिन व्यक्तियों पर घटित होती हैं अथवा जो व्यक्ति कथानक का कार्य करते हैं– वे ही पात्र कहलाते हैं। पात्र जो वार्तालाप करते हैं वही कथोपकथन कहलाता है। जिस भाषा अथवा रीति से कथानक सज्जित होता है उसी में शैली का अस्तित्व रहता है और लेखक जो जीवन का लक्ष्य दिखलाना चाहता है वही आदर्श कहानी के सम्मुख रहता है।"[1] इतना ही नहीं कतिपय समीक्षकों ने तो कथा-साहित्य के विधायक तत्त्वों की संख्या देने की अपेक्षा कहानी का स्वरूप उसकी विशिष्टताओं को अंकित करते हुए स्पष्ट किया है और इस प्रकार जैसा कि सुप्रसिद्ध कवि श्री अंचल जी का कहना है कि "कहानी में सुखान्त–दुखान्त का सम्मिश्रण प्राचीनता-नवीनता स्नेह-सिद्धान्त का संघर्ष और इतिहास के स्मरणीय युगों के—नये विचारों की तूफानी मनोवृत्तियों के सूक्ष्मतम अध्ययन, स्त्रियों के कोमल और कठोर हृदयों का—पुरुषों के प्रति उनके आकर्षण विकर्षण का—उनके उद्दीप्त हृदयान्दोलन का और उसी प्रकार पुरुषों के मन में उठने वाली स्पन्दनशील भावनाओं का सच्चा अवलोकन-सभी कुछ मिलता है। भाव-जगत और उसकी समस्त क्रियाओं प्रति-क्रियाओं का फल कहानी का आधार है। जीवन के आदर्श और यथार्थ दोनों का चित्रण कहानी में होता है। कहानी की सबसे बड़ी शक्ति उसकी कला है—प्रभाव को एक नाटकीय और आघातकारी रूप में उत्पन्न करने की क्षमता। कहानी में आदर्श और यथार्थ दोनों कला से अनुप्राणित होने पर ही जीवित रहते हैं। कलाविहीन आदर्श और यथार्थ दोनों नश्वर हैं।"[2] परन्तु अंचल जी का सा दृष्टिकोण अन्य सभी विचारकों का नहीं है और फिर वास्तव में सैद्धांतिक चर्चा के लिए यह नितान्त आवश्यक भी नहीं है अत: कहानी के विधायक तत्त्वों पर चर्चा हमेशा ही होती रही है तथा न केवल समीक्षकों अपितु कहानीकारों ने भी अपने मत व्यक्त किए हैं और इस प्रकार श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की दृष्टि में "यों तो कहानी को हम कई अंगों में विभाजित कर सकते हैं जैसे कथानक, दृश्य, कथोपकथन दुविधा की तीव्रता तथा चरम परिणति। किन्तु इनमें कथानक, दृश्य दुविधा की तीव्रता तथा

१ साहित्य-समालोचना—डा० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ६२)
२ रेखा-रेखा—श्री अंचल (पृष्ठ ७–७९)

चरम परिणति का निर्वाह अपेक्षाकृत असाधारण होता है।" इसी प्रकार मेंटसमरी तो कथानक (Plot), चरित्र-चित्रण (Character), संवाद (Dialogue) और वर्णन या वातावरण (Description) नामक चार अंग ही कहानी के आवश्यक मानते हैं परंतु श्री प्रभाकर माचवे ने कहानी में दस आवश्यक तत्त्व माने हैं।[1] वस्तुत जैसाकि हम कह चुके हैं कथानक, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण शैली तथा उद्देश्य नामक छः तत्त्व ही कहानी के मूल तत्त्व हैं अत अब हम इन्हीं पर विस्तार के साथ विचार करेंगे।

---

१ कहानी के आवश्यक तत्त्व निम्न माने गए हैं—

(१) कहानी छोटी हो (२) एक ही भावना का उसमें उद्रेक हो (३) कहानी लिखने में जितनी आवश्यकता स्मृति की है उतनी ही विस्मृति की भी है यानी कहानी में चुनाव बहुत जरूरी चीज है (४) कथानक वृत्त या वस्तु—पात्रों द्वारा किए जाने वाले कार्य या घटनाएं (५) ऐसी घटनाएं जिन पर घटित होती हैं वे पात्र और उनका चरित्र चित्रण (६) कथोपकथन या संवाद (७) जिस रीति से कथानक लिखित होता है वह रचनात्मक (८) भाषा शैली वर्णन या वातावरण निर्मिति तथा उस पर लेखक के विचार (९) शीर्षक आरम्भ और अन्त (१०) कहानी का समग्र प्रभाव और मूल हेतु उद्देश्य या आदर्श का निर्वाह।

—अनुराग प्रभाकर माचवे (पृष्ठ १८८-१८९)

कहानी का कथानक और उसकी विशिष्टताएँ

:२:

कथानक को कथावस्तु तथा वृत्त के अतिरिक्त अंग्रेजी में प्लाट कहते हैं और एक विचारक ने तो यह लिखकर कि "कहानी के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है घटना-सम्बन्धित कथानक का ऐसा प्रसार, जो अपनी सीमा में, एक प्रभावशाली और असाधारण जीवनमर्म को पूरा पूरा व्यक्त कर दे"[1] कहानी में कथावस्तु का वही महत्व माना है जो कि शरीर में अस्थियों का है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कहानी में कथानक का स्थान मुख्य है क्योंकि इसी पर सम्पूर्ण कहानी आधारित रहती है और यह भी कहा जाता है कि यदि कहानी में भाषा, भाव चरित्र-चित्रण शैली तथा वातावरण आदि सभी तत्व हों लेकिन कथावस्तु न हो तो वह अस्थिरहित तन के सदृश प्रतीत होगी। रिचार्ड्स् ने तो कहानी को सृजनात्मक साहित्य का बीज मानते हुए वस्तु तत्व को अत्यन्त महत्व दिया है परन्तु यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि ऐसे समीक्षकों की भी संख्या कुछ कम नहीं है जो कि कहानी में कथातत्व की प्रमुखता को स्वीकार नहीं करते। कुछ विचारकों ने तो किसी निश्चित कथा का आधार लेकर कहानी में किसी भी प्रकार का वस्तु-विन्यास उचित नहीं समझा है।[2] उनकी दृष्टि में किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था योजना में आस्था रखना आवश्यक नहीं है क्योंकि बिना इस प्रकार की किसी प्रारंभिक

---

१ आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १८९ ९०)

२ "With or without your kind permission I will kick the word *Plot* right into the sea, hoping that it will sink and never reappear It is the most deceptive word in the jargon of the art craft or what would you As a *noun* it usually means nothing more or less than *story-outline* or *synopsis* As a *verb it means to shape or plan*

I had ambiguities and so I am substituting story outline for the noun and devise' for the verb

—Creative Technique in Fiction by Francis Vivian pp 42-43

योजना के भी कहानी का सृजन हो सकता है। स्मरण रहे कि कहानी में कथातत्व की भर्त्सना करनेवाले समीक्षकों के विचारों में विरोधाभास भी है लेकिन कथावस्तु की अनिवार्यता स्वीकार न करनेवाले विचारकों की विचारधारा को निरा महत्वहीन ही नहीं कहा जा सकता। शेरवुड एन्डरसन (Sherwood Anderson) ने कथानक को कहानी का विष कहा है और शोन ओ फाओलेन (Seon o Faolain) का कहना है कि आधुनिक कहानी लेखकों ने घटना अथवा किस्सा या कथानक और उसके सब साथ के तत्वों को छोड़ा नहीं है अपितु केवल उनका स्वाभावमात्र परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक कहानियों में भी घटनाएँ रहती हैं किन्तु ये केवल मन की यात्राएँ होती हैं। उनकी दृष्टि में तो आधुनिक कहानीकार के लिए यात्राएँ मानव-स्वभाव के जंगल में होती हैं। कतिपय आलोचकों ने तो कथानक को कहानी के विभिन्न तत्वों में निम्नतम अर्थात् सौतेली पुत्री माना है लेकिन अरस्तू ने तो कथानक को ही कहानी में विशेष महत्व प्रदान किया था। उनकी दृष्टि में तो ट्रैजिडी का अस्तित्व चाहे बिना पात्रों के सम्भव भी हो लेकिन कथानक के बिना असंभव था। कथानक उनकी दृष्टि में चित्र की रेखाओं के समान था और अन्य तत्व रंगों के सदृश थे जो कि चित्र में सुन्दरता अवश्य ला देते हैं किन्तु अनिवार्य नहीं हैं। इस प्रकार कथावस्तु का कहानी में अपना विशिष्ट स्थान अवश्य है।

जैसा कि एक विचारक का मत है 'कथावस्तु का जन्म कहानीकार की उन अनुभूतियों और लक्ष्यात्मक प्रवृत्ति से होता है जिसके परोक्ष अथवा मूल प्रेरणा से कहानीकार अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है।'[1] इसमें कोई सन्देह नहीं कि जितनी भी कहानियाँ निर्मित होती हैं, उनके मूल में कोई कल्पना, भावना अनुभूति विचार या तथ्य अवश्य विद्यमान रहता और उसी से कहानीकार को कथा-निर्माण की चेतना या प्रेरणा होती है। कहानीकार के अंतःकरण में जब प्रेरणा उठती है तब वह कहानी का निर्माण कार्य प्रारम्भ कर देता है और कथावस्तु के मूल में उन्हीं भावों का निवास रहता है जो कि उसके मानस में स्पष्ट दिखाई देते हैं और इस प्रकार हम इन भावों को कथावस्तु का बीज कह सकते हैं। यहाँ पर भी स्मरण रखना चाहिए कि ये बीजभाव अनेक प्रकार के और अनेक रूप के होते हैं तथा इन्हीं के संयोग से कहानीकार कथानक का आधार रूप देकर अपनी कहानी का निर्माण करता है तथा पाश्चात्य समीक्षकों ने तो इन्हें सर्वाधिक महत्व देते हुए इसी को प्रेरणा (motive)[2] या कहानी का बीजभाव (जर्मिनल

1 हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृ० १ ४)

2 Post starts most commonly with an idea originating in the impression made by a single incident in a situation experienced or invented in a chance mood or fancy or in a conception of character. The starting

आइडिया)' माना है। स्मरण रहे कि स्वयं प्रेमचंद जी ने भी इसका महत्व स्वीकार करते हुए कहा है कि 'आज लेखक कोई रोचक दृश्य देखकर कहानी लिखने नहीं बैठ जाता। उसका उद्देश्य स्थूल सौंदर्य नहीं है। वह तो कोई ऐसी प्रेरणा चाहता है जिसमें सौंदर्य की झलक हो और इसके द्वारा वह पाठक की सुन्दर भावनाओं को स्पर्श कर सके।' [२]

यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि आधुनिक कहानीकार जो कुछ भी कहना चाहता है उसे अपनी कथावस्तु का विषय बना लेता है और इस प्रकार आधुनिक कहानी की विषय-सीमा के अंतर्गत एक निरीह अश्व की मृत्यु से लेकर एक युवा तरुणी के प्रेम व्यापार तक को घटनाएं चित्रित की जा सकती है। एक ओर तो ऐसी कथावस्तु भी अंकित की जा सकती है जिसमें चलित मशीनें और कैमरे की परिधि में आनेवाली अनेक कथाएं या घटनाएं आदि आ सकती हैं तथा दूसरी ओर जिनमें कोई कथावस्तु या कथानक स्थूल रूप से उत्पन्न ही न होता हो अतः आधुनिक युग में कथानक की विषय सीमा व्यापक सी हो गई है जिसके फलस्वरूप कहानी के शिल्प-विधान में भी वैविध्यता सी आ गई है।[३] साथ ही कहानी की कथावस्तु में मौलिकता का होना भी नितान्त आवश्यक है परन्तु कथावस्तु की मौलिकता लेखक

point for the plot may be called the story *theme* the idea the *plot-germ* or the *motive* By the term *motive* is meant whatever in the material has served as the spur of stimulus to write, the moving force of a story in short its reason for existence

—The Short Story By E.M. Albright pp 28.

१ "A dramatic incident or situation; a telling scene a phase of character a bit of experience; an aspect of life a moral problem any one of these and innumerable other motives which might be added to the list, may be made the nucleus of a thoroughly satisfactory story"

—An Introduction to the Study of Literature By W H Hudson pp 457

२ कुछ विचार—श्री प्रेमचन्द (पृष्ठ ३९)

३ "The short story can be anything the author decides it shall be. It can be anything from the death of a horse to a young girl's first love affair from the static sketch without plot to the swiftly moving machine of bold action and climax from the prose poem, painted rather than written, to the piece of straight reportage in which style colour and elaboration have no place from the piece which catches like a cob-web the light subtle iridescence of emotions that can never be really captured or measured to the solid tale in which all emotions all actions all reactions is measured

—Modern Short Story By H. E. Bates pp 15

की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति पर निर्भर रहती है और यही कथानक पाठकों के मानस पर अधिकाधिक प्रभाव डालने में सक्षम हो सकता है जिसमें कि कहानीकार की अंतर्दृष्टि मानव प्रकृति के विभिन्न रूपों की ओर गई हो। मोपासा का तो यही मत है कि वस्तुओं का चित्रण करते समय उनका सूक्ष्म-निरीक्षण आवश्यक है और अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षणी शक्ति द्वारा ही हम उन वस्तुओं की वह नूतनता देख सकते हैं जिसका न तो किसी ने अवलोकन ही किया है और न अनुशीलन ही किया है।

यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि विचारकों का मत है कि फ्लाबेयर ने मोपासा को भी मौलिकता के विषय में इसी प्रकार का उपदेश दिया था। देखिए—

Every thing which one desires to express must be looked at with sufficient attention and during a sufficiently long time to discover in it some aspect which no one has yet seen or described In everything there is still some plot unexplored because we are accustomed only to use our eyes with the recollection of what others before us have thought on the subject which we contemplate The smallest object contains some thing unknown find it To describe the fire that flames and a tree on plain, look keep looking at the flame and that tree until in your eyes they have lost all resemblance to any other tree or any other fire

This is the way to become original.

When you pass a grocer seated at his shopdoor a janitor smoking his pipe a stand of hackney coaches show me that grocer and janitor—their attitude their whole physical appearance embracing likewise as indicated by the skillfulness of the picture their whole moral natures so that I can not confound them with any other grocer or any other janitor Make me see in one word that a certain cab horse does not resemble the fifty others that follow or precede it

वस्तुतः चित्र की रूपरेखा वस्तु में कोई न कोई स्थान निस्संदेह रखती है लेकिन वह अपने निजी अनुक्रम द्वारा ही स्पष्टतया हो सकता है।¹ अब कि

---

1 "Everything which one desires to express must be looked at with sufficient attention and during a sufficiently long time to discover in it some aspect which no one has yet seen or described In everything there is still some plot unexplored, because we are accustomed only to use our eyes with the recollection of what others before us have thought on the subject which we contemplate the smallest object contains some thing unknown find it"

कहा जा चुका है, कहानी के प्रारंभिक युग में कथानक को ही विशेष महत्व दिया जाता था परन्तु शनैः शनैः ज्यों ज्यों कहानी-कला विकसित होती गई त्यों त्यों उसका स्थान गौण होता गया और "सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो"¹ सदृश्य विचारों द्वारा जब से कहानियों में मनोवैज्ञानिक अनुभूति और मनोविश्लेषण को प्रधानता दी जाने लगी तब से कथावस्तु की प्रमुखता अपेक्षाकृत कम हो गई क्योंकि कथानक का उद्भव कहानीकार की घन अनुभूतियों तथा सृजनात्मक प्रवृत्ति से ही होता है जिसकी मूल प्रेरणा या दबाव से वह अपनी कहानी का निर्माण करने बैठता है। प्रारंभ में जब उसकी अनुभूतियाँ घटनाओं या कार्य-व्यापारों की शृंखला से निर्मित हुई तब वह उनके आलोक में सहज ही कथानक को प्रमुखता देने लगा और इस प्रकार कथावस्तु पूर्णतः इति वृत्तात्मक तथा स्थूल ही रही परन्तु जब उसकी अनुभूतियाँ मनोवैज्ञानिक सत्य तक अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोविश्लेषण के धरातल से आविर्भूत हुई तब स्वाभाविक ही कथावस्तु का रूप सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गौण होता गया तथा कभी-कभी तो बहुत से आधुनिक कहानीकार उसे बिल्कुल ही परोक्ष में रखकर एकमात्र पात्रों के चरित्र या परिस्थितियों के अंकन में ही कहानियाँ प्रस्तुत करने लगे लेकिन जैसा कि हम कह चुके हैं इतना होते हुए भी कथानक के सर्वथा अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि किसी न किसी रूप में कहानीकार को उसका अवलम्ब ग्रहण करना ही पड़ता है। वस्तुतः मानवजीवन ही कथानक का आधार है तथा कहानीकार अपना कथावस्तु का बीज उन्हीं मानव अनुभूतियों से ग्रहण करता है जिन्हें वह दैनिक जीवन से संचित करता है। स्मरण रहे जीवन की विविध समस्याएँ तथा कार्य-व्यापारों का ही कहानी में चित्रण होता है अतः कहानीकार की अन्तर्दृष्टि जीवन जगत की गूढ़तम समस्याओं की ओर जानी चाहिए जिससे कि उसका कथानक जीवन से ओतप्रोत हो सके। वस्तुतः प्रत्येक उत्कृष्ट कहानी का कथावस्तु मानवजीवन से इस प्रकार सम्बद्ध रहती है कि वह ऐसा प्रतीत होती है मानों कि वह उसका ही एक अंग हो। कदाचित इसीलिए उसमें मानव जीवन के चित्रण के साथ-साथ सांसारिक दुःख-सुख की वेदना एवं हर्षध्वनि की हिलोरें भी रहती हैं और ये पाठकों के मानस में स्थयता के लिए अपनी स्मृति छोड़ जाती हैं। यहाँ प्रेमचंद की सुपरिचित कहानी "रानी सारन्धा" का अन्तिम अंश उद्धृत करना आवश्यक है क्योंकि उसमें कहानीकार ने अत्यन्त निपुणता के साथ यह बतलाया है कि रानी सारन्धा का अंत जीवन की अनंत वेदनाओं से परिपूर्ण था और इसीलिए यह पाठकों को अत्यधिक हृदयस्पर्शी भी जान

१ कुछ विचार—श्री प्रेमचंद (पृष्ठ ३)

पड़ता है। देखिए

'रानी ने जिज्ञासा-दृष्टि से राजा को देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिये।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा करोगी?

रानी—सिर के बल करूँगी।

राजा—देखो तुमने वचन दिया है। इनकार न करना।

रानी—(काँप कर) आपके कहने की देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छाती में चुभा दो।

रानी के हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बोली—जीवननाथ! इसके आगे वह और कुछ न कह सकी, आँखों में नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियाँ पहनने के लिए जीवित नहीं रहना चाहता।

रानी—मुझसे यह कैसे होगा?

पाँचवाँ और अंतिम सिपाही धरती पर गिरा। राजा ने झुँझला कर कहा—इसी जीवट पर मान निभाने का गर्व था?

बादशाह के सिपाही राजा की तरफ लपके। राजा ने नैराश्यपूर्ण भाव से रानी की ओर देखा। रानी क्षण भर अनिश्चित रूप से खड़ी रही। लेकिन संकट में हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजा को पकड़ लें कि सारन्धा ने दामिनी की भाँति लपक कर अपनी तलवार राजा के हृदय में चुभा दी।

प्रेम की नाव प्रेम के सागर में डूब गई। राजा के हृदय से रुधिर की धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शांति छाई हुई थी, कैसा करुण दृश्य है! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है। जिस हृदय से आलिंगित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओं का केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमान का पोषक था, उसी हृदय को आज सारन्धा की तलवार छेद रही है। किसी स्त्री की तलवार से ऐसा काम हुआ है?

आह! आत्माभिमान का कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़ के इतिहास में भी आत्मगौरव की ऐसी घटनाएँ नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धा का यह साहस और धैर्य देखकर दंग रह गए। सरदार ने आगे बढ़ कर कहा—रानी साहबा! खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो हम बसरोचश्म बजा लायेंगे।

सारन्धा ने कहा—अगर हमारे पुत्रों में से कोई जीवित हो तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदय में चुभा ली। जब वह बे- होकर पृथ्वी पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पतराय की छाती पर था।"

—रानी सारन्धा प्रेमचन्द

स्मरण रहे कि इसी प्रकार के हृदयस्पर्शी उदाहरण अधुनातन कहानियों भी दृष्टिगोचर होते हैं, उदाहरणार्थ –

"पहलवान को बाहर निकले दो मिनट भी नहीं होते कि श्यामलाल भी पहुँच जाता है और जमुना फर्श पर बिछी हुई एक मैली दरी के ऊपर हाथ पं फैलाकर प्राय: अधमरी सी अवस्था में लेटी है। धुमली हुई बत्ती के बहुत ही मध्धरा में श्यामलाल कुछ क्षणों तक उसके उस भयावने रूप की ओर देखता जाता है। आतंक की एक ठंडी सिहरन क्षण भर के लिये उसकी रीढ़ में हो कर दौ आती है। पर फिर दूसरे ही क्षण अपनी उस भावना को झाड़ फेंकता है और प- पर जमुना के निकट जरा बैठकर वह कहता है 'सा पहलवान ने क्या दिया तुझे? मैंने ही उसे तेरे पास भेजा था। मुझे इस समय रुपयों की सख्त जरूरत है। चुपचाप से मेरे हाथ में दे दे। मैं तुमसे ब्याज फिर कुछ नहीं माँगूगा। इसके बाद वाला गाहक तुझे जो कुछ देगा उसे तू ही रख लेना। उसमें से मैं एक पैसा भी नहीं लूँगा। जल्दी दे।' वह अपेक्षाकृत नम्र स्वर में कहता है और हाथ से उसे हिलाने लगता है।

जमुना चौंक कर उठ बैठती है। स्पष्ट ही वह इतनी देर तक या तो बेहोशी की सी हालत में पड़ी थी या सोयी हुई थी। कमरे के क्षीण प्रकाश में श्यामलाल को देखते ही वह चीखता उठती है। उसकी सारी मानसिक और शारीरिक थकावट पल भर के लिए लुप्त हो जाती है। सिरहाने के नीचे रखे हुए रुपयों को अंटी में छिपाकर वह पूरी ताकत से चिल्लाकर कहती है—'तुम फिर आ गये? यहाँ से इसी क्षण चले जाओ, नहीं तो मैं तुम्हारा बड़ा बुरा हाल कर दूँगी।' और उठकर अलग खड़ी हो जाती है।

श्यामलाल का स्वर फिर कठोर हो जाता है। वह दाँतों को किटकिटाता हुआ झपटकर उसके पास आता है और उसकी अंटी टटोलने का प्रयत्न करता है। उसके मुँह से कच्ची शराब की तीव्र गंध आ रही है।

'मैं यह रुपये हर्गिज नहीं दूँगी। हर्गिज नहीं दूँगी।' वह चीखती हुई रोने-के से स्वर में कहती है। 'इन्हें मैंने बच्चों की दवा-दारू और डाक्टर की फीस के लिए रख छोड़ा है।'

वह उसके दोनों हाथों को अपने बायें हाथ की मुट्ठी में कसकर पकड़ लेता है और दाहिने हाथ से उसकी अन्टा में रुपये निकालने का प्रयत्न करता है। वह

छटपटाती है। अपने दाँतों को उसके बायें हाथ पर गड़ा कर पूरी ताकत से काटती है। पीड़ा के कारण एक धीमी-सी कराह श्यामलाल के मुँह से निकलती है, पर फिर भी वह मुट्ठी नहीं छोड़ता। वह काट काट कर उसके हाथ से खून निकाल देती है पर कोई फल नहीं होता। अन्त में वह उसके हाथों को छोड़ देती है। वह नाखूनों से उसका मुँह नोचने लगती है पर तब तक श्यामलाल उसकी अण्टी से रुपये निकाल कर बाहर से साँकल चढ़ा कर अट्टहास करता है। चिल्लाकर कहता है 'पहलवान बड़े-बड़े बाबुओं में भी हरियादिल निकला। दस रुपये दिये, उसने पूरे दस! कच्ची पीकर तबीयत खराब हो गई थी अब जाकर 'थ्री एक्स' पीऊँगा। शिब्बन के यहाँ अब भी मिल जाएगी, एक रुपया ज्यादा देकर! हा! हा! रात भर बन्द रहो। आराम करो, बहुत थक गई होगी........'।

जमुना भीतर से दरवाज़े पर पूरी ताकत से हाथ से धक्के देती रहती है और चिल्लाती है 'शैतान, जल्दी खोल दरवाज़ा जल्दी खोल! मेरे रुपये वापस कर दे! बच्चे पर रहम कर!' और वह गुहार मारकर रोने लगती है।

बहुत देर तक वह इसी तरह रोती हुई किवाड़ पर धक्के देती रहती है पर न कोई उत्तर मिलता है न दरवाज़ा खुलता है। वह अपना सिर किवाड़ पर पटकने लगती है, पर किवाड़ को रहम नहीं आता। अन्त में थक कर वह फर्श पर पछाड़ खाकर गिर पड़ती है। काफ़ी देर तक उसी अवस्था में पड़ी रहती है। उसके बाद सहसा उठकर लड़खड़ाते हुए पाँवों से उस खटिया पर जाती है जहाँ बच्ची पड़ी है। किसी तरह उसकी बगल में आकर लेट जाती है। पिछले कुछ घन्टों के मार-धक्कड़ में अपने को इस कदर थकी हुई महसूस करती है कि उसे लगता है कि उसे मूर्छा आ जायगी। उसे सब कुछ घूमता हुआ सा मालूम होता है। लालटेन की बत्ती की लौ धीरे-धीरे बुझती जा रही है। उसे नींद मालूम होने लगती है। आँखें झेंपने लगती हैं और वह सो जाती है।

काफ़ी देर बाद जब एक दुःस्वप्न देखने के कारण उसकी नींद उचटती है तब वह बच्ची की ओर करवट बदलती है। अभ्यासवश अनजाने भाव से बच्ची की पीठ थपथपाती जाती है, जैसे उसे सुला रही हो। उसके थके हुये निःशक्त शरीर और बदहवास मन पर नींद का खुमार अभी तक ऐसा छाया है कि बच्ची देर से मरी हुई पड़ी है इसकी कुछ सुध भी उसे नहीं है। वह अभ्यासवश उसकी पीठ थपथपाती हुई लोरी के स्वर में कहती जाती है 'आ आऊ! आ आऊ! आ आऊ! आऊऊऊ!'

—डाक्टर की फीस — इलाचन्द्र जोशी

यहाँ यह भी स्मरण रहना चाहिए कि कहानीकार के मानस-पट पर जिस घटना का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है उसे ही वह कथानक का रूप दे देता है, चाहे फिर

वह घटना उसके निजी जीवन में घटी हो या दूसरों के और अन्य व्यक्तियों के जीवन-घटनाओं को वह देखकर, पढ़कर या सुनकर ही जान पाता है। अतः प्राचीन भारतीय आचार्यों ने प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्रित नामक तीन भेद कथानक के माने हैं। जिस कथावस्तु का मूल स्रोत पुराण, इतिहास या जनश्रुति हो वह प्रख्यात कहलाती है तथा उसमें कथानक की अभिव्यंजना-प्रणाली चाहे किसी भी रूप में क्यों न हो लेकिन पूर्णतया वह मूल कथा के अनुरूप ही होती है और उसमें घटनाओं के तथ्य परिवर्तित नहीं हो सकते। उत्पाद्य कथावस्तु पूर्णत मौलिक होती है तथा उसका प्रेरणा स्रोत कहानीकार की मानसिक अनुभूतियाँ ही हैं और कथानक की पृष्ठभूमि में प्रख्यात की सी वास्तविकता नहीं होती तथा लेखक के सामान्य सत्य पर ही वह आधारित रहता है। वस्तुतः प्रख्यात कथावस्तु के वातावरण चित्रण में लेखक युग-विशेष की संकीर्ण परिधि में ही बँधा रहता है परंतु उत्पाद्य कथानक में वह कल्पनाशक्ति के सहारे किसी भी घटना को अतीत वर्तमान एवं भविष्य जीवन का वर्ण्य विषय बनाकर अंकित कर सकता है और उसे काल्पनिक वातावरण के सृजन में पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। जब कोई कहानीकार प्रख्यात कथावस्तु को लेकर अपनी इच्छानुसार उसमें कलात्मक परिवर्तन परिवर्धन या संशोधन करता है तब वह कथानक मिश्रित कहलाता है। कुशल कलाकार अपनी प्रतिभा शक्ति के बल पर प्रसिद्ध तथा नीरस घटनाओं को भी भावनाओं की सुघरता के योग से मौलिक, नवीन, भव्य और रुचिकर बना देता है तथा साधारण से साधारण बातों में भी असाधारणता और लौकिक घटनाओं में अलौकिकता ला देता है।

कथानक प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्रित नामक उक्त तीनों भेदों में से चाहे किसी भी प्रकार का हो परंतु स्वरूप की दृष्टि से उसके घटनाप्रधान चरित्रप्रधान, भावप्रधान और वातावरणात्मक नामक चार प्रकार होते हैं। घटनाप्रधान कथानक में घटनाओं या कार्य-व्यापारों की ही प्रधानता होती है तथा प्रत्येक घटना या कार्य व्यापार की पारिस्परिक सम्बद्धता भी अपेक्षित है। इस प्रकार की कहानियों में चरित्र-विकास की ओर विशेष ध्यान न देकर घटनाओं को रोचक और कुतूहल वर्धक बनाकर पाठकों का मनोरंजन करने की चेष्टा की जाती है तथा दैवी घटनाओं और अति मानवीय प्रसंगों के योग से उनमें कार्य-व्यापारों की सीमा स्वाभाविकता से बहुत आगे बढ़ जाती है। पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति चाहे इस प्रकार की कहानियों से शांत होती हो किंतु उनमें कला चरित्र का सौंदर्य नाम मात्र होने से उन्हें निम्नकोटि की समझा जाता है। जासूसी कहानियों की कथावस्तु इसी प्रकार की होती है और गोपालराम गहमरी जी की श्रीपालचरित, दुर्गाप्रसाद खत्री आदि की अधिकांश कहानियों का कथानक इसी श्रेणी का है।

जैसा कि डा० श्रीकृष्णलाल का मत है "चरित्रप्रधान कहानियों में लेखक का मुख्य उद्देश्य किसी चरित्र का सुन्दर चित्रण होता है"[1] अतः चरित्रप्रधान कथानक में चरित्र चित्रण और विश्लेषण को ही प्रधानता दी जाती है तथा घटना और संयोग का महत्त्व गौण ही रहता है और कहानीकार किसी एक पात्र विशेष के सुन्दर चरित्रांकन पर ही अपना ध्यान देता है। चूँकि संक्षिप्तता के कारण मानव चरित्र के सभी अंगों और पक्षों का विशद चित्रण संभव नहीं रहता अतः कहानीकार केवल एक पक्ष विशेष का ही इस प्रकार अत्यंत सावधानी के साथ चित्रण करता है कि चरित्र पूर्णतः अंकित हो जाता है और अन्य सभी पक्ष अछूते बच जाते हैं। साथ ही कहानीकार उसी पक्ष का चित्रण करता है जो कि चरित्र के मुख्यतम गुण विशेष का द्योतक होता है। चरित्रप्रधान कथावस्तु में आत्म-त्याग, वीरता, प्रेम, लोभ कायरता इत्यादि विशिष्ट गुणों या अवगुणों के प्रतीक पात्रों का ही चरित्र अंकित किया जाता है, संश्लिष्टतम शब्दों के प्रयोग व आरोहावरोह के कलात्मक क्रम द्वारा कुशल कहानीकार अत्यन्त निपुणता के साथ मानव की चारित्रिक उलझनों और विभिन्न परिस्थितियों में अभिव्यक्ति होनेवाली उसकी चारित्रिक विशेषताओं को वर्ण्य-विषय बनाता है और जैसा डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने चरित्रप्रधान कथानक के विषय में कहा है "इसका रूप अपेक्षाकृत सूक्ष्म और पूर्ण कलात्मक होता है क्योंकि ऐसे कथानकों के निर्माण में बाह्य घटनाएँ, कार्य-व्यापार विशेषकर प्रयुक्त नहीं होते वरन चारित्रिक अन्तर्मुख पात्रों की मानसिक ऊहापोह और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्त होनेवाली उनकी समस्त चरित्रगत विशेषताएँ उसके निर्माण में परिलक्षित होती हैं।"[2] प्रेमचंद की सुजान, आत्माराम, बूढ़ी काकी, दीक्षा, शंखनाद, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था, प्रसाद की सिकन्दर की शपथ, देवदासी, गुण्डा, कौशिक की ताई, जैनेन्द्र की निर्मम, जाह्नवी अज्ञेय की रोज, छाया, पुरुष का भाग्य आदि कहानियों की कथावस्तु चरित्रप्रधान ही है।

भावप्रधान कथावस्तु में मनोभावों का विश्लेषण किया जाता है तथा कथानक में प्रेम सहानुभूति करुणा आदि चिरन्तन भावों में से किसी एक की अभिव्यक्ति की जाती है और घटना तथा चरित्र को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। इसमें कथावस्तु का रूप अत्यन्त सूक्ष्म तथा अमूर्त हो जाता है और वर्णनात्मकता एवं इतिवृत्तात्मकता का अभाव रहता है तथा कथासूत्र की व्यापकता व्यंजना और संकेतों द्वारा की जाती है। अन्तर्द्वन्द्वों का अंकन होते हुए भी इसमें अभीष्ट भाव की धारा कारण रूप से प्रवाहित होती हुई जान पड़ती है और उस भावविशेष की अभिव्यक्ति कथावस्तु की साधारणता होते हुए भी अपने आप में पूर्ण होती है। प्रसाद

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्णलाल (पृष्ठ ३१)
२ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ४१०)

भी तथा अज्ञेय की अधिकांश कहानियों में कथावस्तु इसी प्रकार की है। वर्णन-प्रधान कहानियों को जिन्हें कि वातावरणप्रधान कहानियाँ भी कहा जाता है कथावस्तु में वर्णन की ही प्रधानता रहती है। श्री बुद्धिनाथ झा 'कैरव' के शब्दों में "वातावरण प्रधान कहानियों में कथानक और चरित्र के विकास के लिए परिस्थितियों को संयोग प्रधान बना दिया जाता है। लेखक अपनी निर्दिष्ट भावना को अभिव्यक्त करने के लिए पात्रों की मनोनुकूल योजना कर लेता है और उसके लिए उनसे ऐसे कार्य कराता है जो उस विशेष भावना की पुष्टि करने वाले हों। पात्रों की चरित्रगत विशेषता उस वातावरण के अनुकूल भावना की समर्थक होती है और उनमें ऐसी सामर्थ्य नहीं होती कि वातावरण के प्रतिकूल अपना कोई कार्य दिखला सकें। मनुष्य परिस्थितियों का दास होकर किस प्रकार विशेष वातावरण में अपना जीवन तक व्यर्थ नष्ट कर लेता है, यही दिखलाना ऐसी कहानी का लक्ष्य रहता है।"[1] साथ ही, इस प्रकार की कहानियों में दृश्यचित्रण एवम् वातावरण की सृष्टि हेतु कहानीकार चित्रमय शब्दों का प्रयोग करता है तथा कभी-कभी परिपार्श्व पर भी बहुत जोर दिया जाता है। इस प्रकार की कथावस्तु में घटना-वैचित्र्य, चरित्र-विश्लेषण और भावसिद्धि की अपेक्षा वर्णन-वैचित्र्य को ही महत्ता दी जाती है तथा चूंकि कहानीकार को अपनी कलानिपुणता के प्रदर्शन के लिए उचित अवसर मिल जाता है अतः वह कवित्वपूर्ण, लाक्षणिक सौंदर्य से युक्त वातावरण का चित्रण सफलता के साथ कर सकता है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की योगिनी, उन्माद, प्रेमपरिणाम तथा प्रेमचंद की शतरंज के खिलाड़ी जयशंकर प्रसाद की आकाशदीप, बिसाती, स्वर्ग के खंडहर में, समुद्र-संतरण गोविन्दवल्लभ पंत की जूठा आम, सुदर्शन की हार की जीत इत्यादि कहानियों की कथावस्तु वर्णनप्रधान ही है। इन चार श्रेणियों की कथावस्तु के अतिरिक्त कथानक के हास्यप्रधान ऐतिहासिक, प्राकृतवादी नामक कुछ अन्य प्रकार भी कहे जाते हैं लेकिन यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इन चार श्रेणियों में ही शेष प्रकार भी आ जाते हैं अतः उनका स्वतंत्र विवेचन अप्रासंगिक ही है।

कहानी की कथा-वस्तु का संक्षिप्त होना अत्यंत आवश्यक है और उसकी रचना अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से तथा क्रमिक विकास के रूप में ही होनी चाहिए। चूंकि उसमें एक या अधिक घटनायें क्रमबद्ध रूप से संश्लिष्ट रहती हैं अतः घटनाओं का परस्पर सम्बद्ध रहना भी आवश्यक है तथा कहानीकार का भी मूलमंत्र addmittance except on business must be the short story writer s motto यही होना चाहिए। वस्तुतः कुशल कहानीकार का यही लक्ष्य रहता है। स्मरण रहे जिस कथानक के अंग छिन्न-भिन्न होते हैं उसमें भिन्न भिन्न

१ साहित्य साधना की पृष्ठभूमि—प० बुद्धिनाथ झा 'कैरव' (पृष्ठ १२४)

घटनायें एक कच्चे धागे के सहारे गूँथी हुई प्रतीत होती हैं। उनमें पारस्परिक सम्बन्ध रहता ही नहीं तथा कथावस्तु का विन्यास कार्य-विन्यास पर न होकर किसी ऐसे रूपक अथवा ऐसी घटना पर होता है जिसके चारों ओर बिखरी हुई घटनायें कच्चे धागे से जुड़ी रहती हैं। वस्तुतः ऐसी कहानी किसी व्यक्ति विशेष के कार्यों के इतिहास का रूप ग्रहण कर लेती है। उदाहरणार्थ—

'कमला ने मायके में एक बात सीखी थी कि धन मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। किन्तु बाबू साहब इस सिद्धांत से सहमत नहीं थे। वह धन को आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन ही नहीं, वरन् उपासना की वस्तु भी समझते थे।

मायका विशेष सम्पन्न न था किन्तु वहाँ कमला को वे सभी सुख थे जो साधारणतया लड़कियों को माता पिता के घर प्राप्त होते हैं। अपने माता-पिता की अकेली बेटी होने के कारण मायके में कमला का विशेष मान था। उसे पूर्ण स्वतंत्रता थी, उसकी इच्छाशक्ति पर किसी दूसरे का आधिपत्य न था किन्तु ससुराल में परिस्थिति और थी। वहाँ स्वतन्त्रता नहीं पराधीनता थी।

हृदयनारायण के स्वभाव में सुरुचि का अभाव था। एक वेशभूषा को ही ले लीजिये। आपका कोई वस्त्र ऐसा न था जो अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ न गिन रहा हो।

अपने चिर-संचित स्वप्नों का इस प्रकार नाश होता देखकर कमला रो पड़ी। घर काटे खाता था। उसका चित्त हर समय मुरझाया हुआ सा रहता, किसी से बात-चीत करना अच्छा न लगता। अन्नजल से अरुचि होने लगी।

शनैः शनैः दिन बीतने लगे। जब कमला का स्वभाव पति के स्वभाव से लड़ते-लड़ते पूर्णतया शिथिल हो गया तो प्रतिक्रिया का आरम्भ हुआ। घर की ओर खानेवाली प्रवृत्ति मंद पड़ने लगी। धीरे-धीरे वह उस घर में हिलमिल गई और वहाँ के जीवन में भी। नारी सुलभ समर्पण की मनोवृत्ति ने पुरुष के रौद्ररूप के सम्मुख सिर झुका दिया।'

— कीचड़ राजेश्वरप्रसादसिंह

यहाँ कमला का स्वभाव, मायके का दिग्दर्शन हृदयनारायण का स्वभाव, कमला की निराशा और अंत में उसका संतोष आदि सभी घटनायें एक कच्चे धागे में बाँधकर साथ पिरोई गई प्रतीत होती हैं पर सम्पूर्ण कथा में वह आकर्षण नहीं है जो कि उसमें रहना चाहिए था। परंतु जिस कथावस्तु के अंग परस्पर सम्बद्ध रहते हैं वे स्वाभाविक रूप से हो आगे बढ़ते हैं और प्रत्येक अंग का दूसरे अंग से पूर्ण एवं घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है तथा यदि एक घटना भी वह जाय तो सम्पूर्ण

कथानक छिन्न भिन्न शृंखला की भाँति भूलने लगता है। स्मरण रहे समस्त घटनाओं के पीछे एक शक्ति रहती है जो उनको यथा-स्थान सजाकर सेनापति की भाँति संचालित करती है और घटना में पात्र सजे रहते हैं तथा पात्रों में घटनाएँ। ये सभी शक्तियाँ परस्पर मिलकर अंतिम फल की ओर बढ़ती हैं और अंत में उसे प्राप्त भी कर लेती हैं। एक उदाहरण देखिए —

"नजर उठाकर नाथ की ओर देखा—आपकी दृष्टि लालटेन के चित्रों की ओर न थी, आप बाँई ओर पहिली तीन आधी लाइनों में बैठी हुई महिलाओं की ओर देख रहे थे। विशेष निरूपण करने पर ज्ञान पड़ा पहिली लाइन की पहिली कुर्सी पर ही उसका लक्ष था।

कोहनी से टोहका देकर मैंने पूछा— 'क्या यही लेक्चर सुन रहे हो ?

मेरे प्रश्न का उत्तर न दे उसने पूछा–'जानते हो वह कौन है ?'

वह चेहरा मेरा विशेष परिचित नहीं था। पूछा–'क्यों ?'

एक गम्भीर निश्वास छोड़ नाथ ने कहा— 'देखते नहीं आधुनिक रमणी समाज में जिन तीन 'वकारों' सुशिक्षित' सुसंस्कृता और सुसज्जिता का होना जरूरी है उनका इसमें कितना प्राचुर्य है।

नाथ का कहना ठीक था। आयु, शास्त्र की व्यवस्था से युवावस्था को पार कर जाने पर भी वहाँ मोद की मात्रा यथेष्ट थी। जल के किनारे उगे फूले हुए, वायु के झोंके से लहराते हुए कास के समान पग-पग पर लचकती हुए उसके बेत्र लता के समान लचीले शरीर से लावण्य झड़ा पड़ रहा था। मुख के उस कच्चेपन से—मैं नहीं समझता वह पाउडर होगा—कामार्थ की पूर्ति हो रही थी। उस पर वह महीनी पोशाक, बिना फ्रेम की चिमटीदार ऐनक, मस्कृति के सब चिन्ह मौजूद थे।

नाथ की ओर देखकर मैंने पूछा—प्रेम तरंग (Love Wave) का ज्वार आ रहा है ?'

गंभीर मुद्रा से उसने उत्तर दिया–'चुप रहो।

व्याख्यान समाप्त होने पर जब वह रमणियों में श्रेष्ठ रमणी, ललित उपेक्षा से आधे सिर पर अंचल गिराये, बिना मोद का ब्लाउज पहिरे नाक पर चिमटीदार ऐनक को सँभालते हुए चल्ती तो नाथ सचमुच मन्त्रमुग्ध की भाँति उसकी ओर देख रहा था।

उपस्थित जनता में हम लोगों के परिचित श्रीयुत विष्णु और श्रीमती विष्णु थे। पूछने पर पता लगा, उस भव्य रमणी रत्न का नाम था-कुमारी उषा मेहता।

विष्णु से नाथ ने पूछा 'क्या इनसे परिचय नहीं हो सकता ?'

विष्णु ने परिचय की इच्छा का कारण जानना चाहा। मैंने समझाया कि नाथ पर प्रेम बाण चल गया है और वह भी प्रथम दृष्टि में।

विष्णु ने निरुत्साह की हँसी हँसकर कहा—'असम्भव! वह देखने में जैसे संगमरमर की मूर्ति है भीतर से भी वैसे ही ठंडी और उद्रेक शून्य।'

श्रीमती विष्णु ने अभिमान से ज़रा सिर ऊँचा कर कहा- 'उसने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करली है। कितनी ही जगह वह इनकार भी कर चुकी है।'

विष्णु ने विद्रूप से कहा—'वह कामिनी का आधुनिक संस्करण है। पुराने ज़माने के काम के पाँचों बाण उस पर व्यर्थ हैं।'

श्रीमती विष्णु ने नारी जाति के सम्मान की रक्षा के अभिप्राय से विरोध में कहा—'स्त्री समाज की सेवा को उसने अपने जीवन का व्रत बना लिया है। उसी में वह अपनी आयु लगा देना चाहती है। इसमें बुराई क्या है?'-और भी अधिक उत्साह से उन्होंने कहा-'आह विवाह वह कभी नहीं कर सकती। विवाह किस लिए किया जाता है, यह वह जानती ही नहीं।'

सहानुभूति से मैंने नाथ की ओर देखा, वह पवन की भाँति चपल था। उसने कहा— 'आप एक बार उन्हें अपने यहाँ निमंत्रित कीजिए, शेष देखा जायगा।'

निमन्त्रण किस बहाने दिया जाय? यही बड़ी भारी समस्या हो गई। नाथ को कभी कभी ऐसी सूझ आती है कि जिस पर किसी राष्ट्र का बनना बिगड़ना निर्भर हो सकता है। विष्णु के कंधे पर हाथ रख उसने कहा—'क्यों नहीं तुम मेरे विदेश से लौटने के उपलक्ष में एक पार्टी दे देते?'

* * * *

निमंत्रितों की संख्या परिमित थी। मिस मेहता समय से कुछ देर बाद एक मोटर पर उपस्थित हुईं। नाथ पहिले ही मालूम कर चुका था कि मिस मेहता के यहाँ अपनी कार नहीं है। इससे अंदाज़ा यह हुआ कि कार मँगनी की है। मिस मेहता के हाथ में अँग्रेज़ी का एक साप्ताहिक था जो शायद ही कोई गंभीर पाठक पढ़ता हो। इससे कुमारी जी की साहित्यिकता का भी अनुमान हो गया।

कुमारी जी ने आधी अँग्रेज़ी और पंजाबी में कहा—'So sorry मैं लेट हो गई'—और उपस्थित लोगों को झुककर अभिवादन किया। श्रीमती विष्णु ने परिचय कराया—'मिस उषा मेहता, उनविद्!' और फिर नाथ की ओर देखकर कहा- 'मि० प्रमोदनाथ दुग्गल, आप दक्षिण द्वीपों में छः मास भ्रमण करके आये हैं।'

नाथ की प्रशान्त गंभीरता और नम्रता की सीमा न थी। उसने विनय से बैठ

तक मुस्कराकर परिचय ग्रहण किया और जब तक मिस मेहता बतख की गर्दन की तरह लचक कर बैठ नहीं गईं तब तक खड़ा ही रहा।

चाय की पहिली प्याली समाप्त होवे न होवे गोष्ठी में प्रसंग चल पड़ा दक्षिण द्वीपों का। नाथ ने कहा—योरप की अपेक्षा उसकी सहानुभूति एशिया की संस्कृति से ही अधिक है, इसीलिए उसने यूरोप न जाकर प्राचीन सभ्यता के इतिहास के 'पथप्रदर्शक' इन द्वीपों की ही यात्रा की, और जो कुछ उसने इन महत्त्वपूर्ण द्वीपों में देख पाया वह संसार के किसी भी अन्य देश में अप्राप्य है। उसने-बोलते बोलते इन द्वीपों की सामाजिक समस्याओं से विशेष जानकारी प्रकट की।

मिस मेहता ने अत्यंत गंभीरता से प्रश्न किया—Indian Women (भारतीय स्त्रियों) की अपेक्षा आपने वहाँ की Women (स्त्रियों में) क्या फरक देखा ?,

उत्तर में निहायत वाकपटुता से नाथ ने योरप और अमेरिका की सभी स्त्री संस्थाओं का वर्णन शुरू किया। मजा यह कि किसी गधे ने न पूछा कि तुम योरप या अमेरिका कब गये और उसका यहाँ के प्रसंग से क्या सम्बन्ध है ?

नाथ ने मौका देख मिस मेहता को कई दफे 'मिस ऊषा' और 'ऊषा जी' कह कर सम्बोधन किया और फिकरे के फिकरे अँग्रेजी में बोल कर यह प्रकट कर दिया कि इस यात्रा के बाद से अँग्रेजी में बोलना ही उसके लिए अधिक स्वाभाविक है। वह यदि पंजाबी बोलता है तो केवल दूसरों की सुविधा के लिये।

नाथ ने कहा—'जितना धन और श्रम देश में राजनैतिक आन्दोलन और दूसरी समस्याओं पर व्यय हो रहा है यदि उसका आधा भी स्त्रियों की उन्नति पर हो तो फल चौगुने से अधिक हो सकता है।' मिस मेहता सुनकर फड़क उठीं। नाथ ने कहा—'सुविधा होवे ही वह इस विषय पर एक पुस्तक लिखने वाला है। लेकिन यह काम दरअसल स्वयम स्त्रियों के करने का है। पुरुषों का अधिकार केवल सहायता करने का है।'

नाथ की यह वक्तृता मिस ऊषा को देववाणी के समान जान पड़ी। नाथ ने कहा-इस कार्य के लिए देशव्यापी आंदोलन और संगठन की आवश्यकता है।, श्रीमती विष्णु को सम्बोधन कर मिस मेहता के अभिप्राय से उसने कहा-'स्त्रियाँ केवल पुरुषों की सेवा का ही साधन क्यों बनी रहें, उनका अपना स्वतंत्र जीवन क्यों न हो ? इस आन्दोलन की धुरी लेकर आप लोगों को बढ़ना चाहिये।'

नाथ के इस व्याख्यान से श्रीमती विष्णु भी बहुत प्रभावित हुईं। मिस मेहता ने कोमल स्वर में कहा—'मैं भी कुछ लिख रही हूँ। यदि आपको समय हो तो कुछ मेरी सहायता कीजियेगा।'

मैं नाथ के समीप ही था। खांसने का बहाना कर रूमाल मुँह के सामने कर मैंने धीरे से उसके कान में कहा—'मान गये गुरू।'

नाथ को उत्तर देने की फुर्सत नहीं थी। मिस मेहता के उत्तर में नाथ ने जो कुछ कहा उससे मालूम हुआ कि उसने अपना जीवन सामाजिक क्रांति के लिए अर्पण कर दिया है। इस प्रकार के किसी भी कार्य में सहयोग देने के लिए वह 'सयदांमायन' तत्पर है।

गोष्ठी समाप्त हुई। आमंत्रित लोग चलने को तैयार हुए। नाथ ने मिस मेहता की ओर देखकर कहा—'आपकी कार तो आई नहीं अभी तक।'

मिस मेहता ने उपेक्षा से उत्तर दिया 'ऐसी क्या जरूरत है, धूप तो चली ही गई है, मुझे समीप ही एक मेम्बर के यहां होते हुए जाना है।'

नाथ यह तो जान ही चुका था कि मिस मेहता पुरानी अनारकली में रहती हैं। उसने अपने सोने की रिस्टवाच की ओर देख कर कहा - समय तो अधिक है नहीं, मुझे भी एक जगह जाना है, चौबुर्जी भी जाना है। एक टैक्सी मंगवा लो।

यह चपरासी का काम मेरे सिर पड़ा। उस कोठी हुए समीप के मकान से फोन कर एक टैक्सी मंगा कर मैंने हाजिर कर दी। मेरी अनुपस्थिति में ही उन दोनों के गाड़ी में एक साथ जाने की बात तय हो गई।

× × × × ×

गाड़ी की आवाज आते ही मिस मेहता हाथ में [illegible] लिए बरामदे में प्रकट हुईं। नाथ ने मुस्कराकर कहा – 'मैं था [illegible] हा जाऊंगा परन्तु ठीक समय पर ले ही आया।'

अपनी पलकें कुछ ऊपर उठाते हुए मिस मेहता ने कहा – 'आप तो बिलकुल ठीक समय पर ही आये हैं।'

नाथ ने उत्तर दिया – 'विदेश में समय का इतना ख्याल रखना पड़ता है कि मुझे अब उसकी आदत हो गई है। जरा भी अव्यवस्था होने से बड़ी उलझन सी होने लगती है।'

समय के पश्चात मौसम का चर्चा चला। नाथ ने बताया लाहौर की अपेक्षा सहारनपुर का मौसम बड़ी अच्छा है।

तब काम की बात शुरू हुई। नाथ ने जापान के स्त्री-समाज से भारत के स्त्री समाज की तुलना कर कई तजवीजें सुधार की पेश कीं। हिन्दू समाज के पारिवारिक जीवन की आलोचना हुई। इस गंभीर विवेचना को मिस मेहता ने जिज्ञासु भाव से सुना। पतलीन का चौराहा आया। [illegible]।

नाथ ने चाय की प्याली की ओर देखकर कहा—'यह देखिये, छोटी-छोटी बातों से जीवन का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। यह प्याली कितनी मामूली चीज है परन्तु इसका भी हम पर कितना प्रभाव पड़ता है। कितनी देर से मैं इसे देख रहा हूँ और इसे चुननेवाले की कला सूझ और परख की सराहना कर रहा हूँ। इससे चाय पीने में एक प्रकार का विशेष संतोष होता है। एक मेरा जीवन है जिसमें सब काम मशीन की तरह होता है कला और सौंदर्य की उसमें चर्चा नहीं। कोठी है शायद आवश्यकता से कुछ बड़ी है परन्तु मेरे रहने लायक चार कमरे भी ढंग के नहीं। बहरे को मतलब है अपनी तनख्वाह से। बंगले के चारों ओर माली फूल न बोकर तरकारी बोता है, शायद इससे कुछ आमदनी उसे हो जाती हो। इस बार यह निश्चय करके आया था कि घर को घर बनाऊँगा परन्तु सोचता यह हूँ कि अपनी परख से जो कुछ चुनकर लूँगा उसे स्वयम् भी पसन्द कर सकूँगा या नहीं। मेरा हिसाब तो यह है कि दुकानदार ने जो कुछ सबसे अच्छा बता दिया सो लिया। लेकिन दुकानदार को मतलब रहता है सबसे पहिले सड़ी चीज निकाल देने से।'

'आज कुछ फर्नीचर खरीदने गया था। शौक जरूर है परख हो न हो। आपके यह ढंग और सिस्टम देखकर ईर्ष्या होती है। जरा मेरी भी जगह ऐसी ही होती। इस कालीन को ही देखिये क्या खूब टेस्ट है! और फिर जिस जगह से बिछाया गया है?

मैंने भी एक कालीन खरीदा है, जेब से बिल निकालते हुए- यह देखिये दुकानदार ने असली ईरानी बताया है आगे उसका ईमान जाने—मिस मेहता से बिल की ओर देखा उनकी आँखें चढ़ गई—फर्नीचर के बारे में भी मुझे दुकानदार की ही मान लेनी पड़ी। यह देखिये, ओफ! यह शायद गाड़ी है, हाँ यह देखिये —अच्छा आप गाड़ी कौन सी पसन्द करती हैं?

मिस मेहता की कनपटियों पर खून का वेग बढ़ गया। उनकी एक सहेली के यहाँ 'ओवर लैण्ड' गाड़ी थी और दूसरी के यहाँ 'ब्यूक'। खाँसते हुए उसने कहा— 'ओवर लैण्ड भी कुछ बुरी नहीं बैसे ब्यूक सस्ती रह सकती है।'

नाथ ने कहा-'ठीक परन्तु मेरी हालत देखिये! पिता जी ने एक फोर्ड खरीदी थी। उसी छकड़े पर सवार किये बैठा था। अब एक आस्टिन और एक ब्यूक सैलून ले चला हूँ। आस्टिन घूमने फिरने के लिए और ब्यूक सैलून मेरठ देहली आर देहरादून आने जाने के लिये। यह नहीं कि मैं निरा जड़ हूँ परन्तु केवल अपनी एक जान के लिये कुछ करते ग्लानि सी होती है।

इस सरलता से मिस मेहता की समवदना पिघल पड़ी। उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा—अकेला जीवन वास्तव में नीरस होता है।'

उन्होंने पुकारा—'माया।

लाकर हाजिर हुआ। उन्होंने कहा—'यह चाय ठंडी हो गई नये सिरे से बना लाओ।' लज्जा से नाथ ने कहा—'यही देख लीजिये, यही मेरा हाल है। सभी काम इस ढंग से होते हैं। यहाँ आपकी समवेदना ने मुझे बचा लिया। वर्ना रखे ही रहते थे। या तो ठंडी पी जाता था, फिर बिना पिये ही रह जाता।

एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता के चेहरे की त्वचा सनसना उठी और आँखें उन्मीलित प्राय हो गई।

सोचा था—साढ़े पाँच तक नाथ लौट आयेगा परन्तु जाकर वहीं लगभग दस बजे के पास आये। पूछा—'तुम इतनी देर कहाँ थे ?'

उत्तर मिला—'मिस मेहता के साथ सिनेमा चला गया था।

तीन दिन तक नाथ प्राय गायब-सा रहा। चौथे रोज सहारनपुर जाने से पहले उसने अत्यंत गंभीरता से कहा—'कम से कम जाकर मुझे कोठी का रंग रूप तो ठीक करना है। तुम कचहरी खुलने हो मेरी दरख्वास्त सिविल मैरिज के लिये दे देना।

मैंने विस्मय से पूछा—'क्या ?' उसने गंभीर भाव से कहा—'यही।'

इस समाचार से मेरे पेट का पानी उबलने लगा। दौड़ा दौड़ा श्रीमती विष्णु के यहाँ पहुँचा और खबर सुनाकर कहा—देख लिया भाभी ? उन्होंने अपनी भूल स्वीकार न कर कहा—'तो इसमें हर्ज ही क्या ? दोनों मिलकर खूब समाज सेवा करेंगे ?''

— समाज सेवा यशपाल

इस कहानी में घटना की प्रत्येक बात पात्रों से इस प्रकार का सम्बंध रखती है कि उसका अस्तित्व कल्पित ही जान पड़ता है और वास्तव में यही कहानी की कथावस्तु की सरलता एवं उत्कृष्टता का लक्षण भी है।

साथ ही कथानक का प्रवाह सुन्दर और स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ना चाहिए तथा घटनाओं में इस प्रकार का तारतम्य रहे कि वे बिखरी हुई न जान पड़ें और न बलात् ठूँसी गई प्रतीत हों। कहानीकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक घटना को क्रमशः उपस्थित करे अतएव मनोवेगों को तरंगित करने के लिए वह कहानी को कलात्मक रूप देने के हेतु उस कथानक के प्रारम्भ, मध्य या अन्त की किसी भी घटना को सर्वप्रथम चित्रित कर सकता है क्योंकि घटनाओं के क्रम विपर्यय द्वारा कथावस्तु में आतुरता और कौतूहलता की अभिवृद्धि होती है अन्यथा कहानी नीरस और आकर्षणहीन ही प्रतीत होगी। यद्यपि विद्वानों ने वस्तुविन्यास की दृष्टि से कथावस्तु के आदि मध्य और अन्त नामक तीन मुख्य अंग माने हैं लेकिन कथानक पर विचार करते समय प्रारम्भ में हमें कहानी के शीर्षक पर ही विचार करना चाहिए क्योंकि शीर्षक अन्दर ही दृष्टि से यद्यपि

नाथ ने चाय की प्याली की ओर देखकर कहा—'यह देखिये छोटी-छोटी बातों से जीवन का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। यह प्याली कितनी मामूली चीज है परन्तु इसका भी हम पर कितना प्रभाव पड़ता है। कितनी देर से मैं देख रहा हूँ और इसे चुननेवाले की कला सूक्ष्म और परख की सराहना कर रहा। इससे चाय पीने में एक प्रकार का विशेष संतोष होता है। एक मेरा जीवन है जिस सब काम मशीन की तरह होता है कला और सौंदर्य की इसमें चर्चा नहीं। और है शायद आवश्यकता से कुछ नहीं है परन्तु मेरे रहने लायक चार कमरे भी ढंग के नहीं। बहरे को मतलब है अपनी तनख्वाह से। बंगले के चारों ओर माली फूल न बोकर तरकारी बोता है, शायद इससे कुछ आमदनी उसे हो जाती हो। इस दफे यह निश्चय करके आया था कि घर को घर बनाऊँगा परन्तु सोचता यह हूँ कि अपनी परख से तो कुछ चुनकर लूँगा उसे स्वयम भी पसन्द कर सकूँगा या नहीं। मैं हिसाब तो यह है कि दुकानदार ने जो कुछ सबसे अच्छा बता दिया ले लिया लेकिन दुकानदार को मतलब रहता है सबसे पहिले नहीं चीज निकाल देने से।'

'आज कुछ फर्नीचर खरीदने गया था। शाक जरूर है परख हो न हो। आपके यह ढंग और सिस्टम देखकर ईर्ष्या होती है। काश मेरी भी जगह वैसी ही होती। इस कालीन को ही देखिये क्या खूब टेस्ट है। और फिर किस वजह से दिखाया गया है?

मैंने भी एक कालीन खरीदा है, जेब से सिग्रेट निकालते हुए- यह दी दूकानदार ने असली ईरानी बताया है आगे उसका ईमान जाने—मिस मेहता मिन की ओर देखा उनकी आँखें चढ़ गईं—फर्नीचर के बारे में भी मुझे दुकानद की ही मान लेनी पड़ी। यह देखिए, ओफ! वह शायद गाड़ी है, हाँ वह देखि —अच्छा आप गाड़ी कौन सी पसन्द करती हैं?

मिस मेहता की कनपटियों पर खून का वेग बढ़ गया। उनकी एक सहेली के यहाँ 'ओवर लैंड' गाड़ी थी और दूसरी के यहाँ 'ब्यूक'। झेंपते हुए उसने कहा— 'ओवर लैंड भी कुछ बुरी नहीं वैसे ब्यूक सस्ती रह सकती है।'

नाथ ने कहा-'ठीक परन्तु मेरी हालत देखिये। पिता जी ने एक फोर्ड खरीदी थी। उसी छकड़े पर सवार किये बैठा था। अब एक आस्टिन और एक ब्यूक सीमून ले चला हूँ। आस्टिन घूमने फिरने के लिये और ब्यूक सहून मेरठ, देहली और देहरादून आने जाने के लिये। यह नहीं कि मैं निरा जड़ हूँ परन्तु केवल अपनी एक शान के लिये युद्ध करते ग्लानि सी होती है।

इस सरलता स मिस मेहता की समवेदना पिघल पड़ी। उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा— 'ऐसा जीवन वास्तव में नीरस होता है।'

उन्होंने पुकारा—'माया।

नौकर हाजिर हुआ। उन्होंने कहा—'यह चाय ठंडी हो गई नये सिरे से बना लाओ। लज्जा से नाथ ने कहा—यही देख लीजिये, यही मेरा हाल है। सभी काम इस ढंग से होते हैं। यहाँ आपकी समवेदना ने मुझे बचा लिया। वर्ना दो ही रास्ते थे। या तो ठंडी पी जाता था, फिर बिना पिये ही रह जाता।

एक विचित्र अनुभूति से मिस मेहता के चेहरे की त्वचा झनझना उठी और आँखें उन्मीलित प्राय हो गई।

सोचा था—साढ़े पाँच तक नाथ लौट आयेगा परन्तु आकर वहीं लगभग दस बजे के आप आये। पूछा—'गुरू इतनी देर कहाँ थे?'

उत्तर मिला—'मिस मेहता के साथ सिनेमा चला गया था।

तीन दिन तक नाथ प्राय गायब-सा रहा। चौथे रोज सहारनपुर जाने से पहले उसने अत्यंत गंभीरता से कहा—'कम से कम जाकर मुझे कोठी का रंग रूप तो ठीक करना है। तुम कचहरी खुलते ही मेरी दरख्वास्त सिविल मैरिज के लिये दे देना।

मैंने विस्मय से पूछा—'क्या? उसने गंभीर भाव से कहा—'यही।'

इस समाचार से मेरे पेट का पानी उफनने लगा। दौड़ा दौड़ा श्रीमती विष्णु के यहाँ पहुँचा और खबर सुनाकर कहा—देख लिया भाभी?' उन्होंने अपनी भूल स्वीकार न कर कहा—'तो इसमें हर्ज ही क्या? दोनों मिलकर खूब समाज सेवा करेंगे?''

— समाज सेवा यशपाल

इस कहानी में घटना की प्रत्येक बात पात्रों से इस प्रकार का सम्बन्ध रखती है कि उनका अभिन्न अंग-सा ही जान पड़ता है और वास्तव में यही कहानी की कथावस्तु की सफलता एवं उत्कृष्टता का लक्षण भी है।

साथ ही कथानक का प्रवाह सुन्दर और स्वाभाविक रूप से आगे बढ़ना चाहिए तथा घटनाओं में इस प्रकार का तारतम्य रहे कि वे बिखरी हुई न जान पड़ें वरन् सम्बद्ध एवं गुँथी हुई प्रतीत हों। कहानीकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक घटना का क्रमशः उपस्थित करे अथवा मनोवेगों को चित्रित करने के लिए [illegible] कहानी को कलात्मक रूप देने के हेतु वह कथानक के [illegible] की किसी भी घटना को सर्वप्रथम अंकित कर सकता है क्योंकि [illegible] विन्यास द्वारा कथावस्तु में आत्मीयता और [illegible] की [illegible] होती है अन्यथा कहानी नीरस और आकर्षणहीन ही प्रतीत [illegible] वस्तुविन्यास की दृष्टि से कथावस्तु के [illegible] ढंग माने हैं लेकिन कथानक पर विचार करते [illegible] दृष्टिकोण पर ही विचार करना चाहिए [illegible]

कहानी की सुन्दरता का अनुमान कर लेते हैं। कहानी का शीर्षक सुन्दर, मोहक और आकर्षक होना चाहिए तथा उसमें न केवल कथावस्तु का ही कोई उद्देश्य साधन हो अपितु साथ ही विशिष्टता भी अपेक्षित है। कहा जाता है कि जिस प्रकार किसी बड़ी दूकान में वातायनों तक को सजाना पड़ता है उसी प्रकार कहानियों में भी शीर्षक का आकर्षक होना परमावश्यक है।[१] कहानी का शीर्षक कितने शब्दों का हो इसके संबंध में कोई भी निश्चित नियम नहीं है और एक शब्द से लेकर कभी-कभी दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी, गंगा गंगदत्त और गांगी, कुछ समझ न सका पन्द्रह रुपये बारह आने जैसे बड़े शीर्षक भी कहानियों के रहते हैं। किसी भी कहानी का शीर्षक कहानी के मुख्य पात्र के नाम पर या प्रधान विषय भाव या रस के आधार पर, अथवा प्रधान घटना या मुख्य वस्तु अथवा दृश्यावली के अनुसार रखा जा सकता है। कभी कभी वह किसी स्थान विशेष का भी द्योतक होता है और कभी-कभी किसी प्रचलित कहावत या लोकोक्ति को ही कहानीकार शीर्षक के रूप में चुन लेते हैं जैसे कि 'घूँघट के पट खोल री' तथा 'कौसल्या भई न राम'। स्मरण रहे केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि शीर्षक आकर्षक रोचक और कौतूहलप्रद हो अपितु उसका कथावस्तु के साथ सामंजस्य भी अपेक्षित है। साथ ही शीर्षक और कहानी का अन्योन्य सम्बन्ध आवश्यक है तथा कहानी के कथानक के अनुरूप ही शीर्षक होना चाहिए और शीर्षक के अनुसार विषय वस्तु का प्रसार भी होना चाहिए।[२]

वस्तुतः शीर्षक के पश्चात कहानी आरंभ कर दी जाती है और यों तो कहानियों को आरंभ करने की प्रणालियाँ पाँच प्रकार की मानी जाती हैं जिन पर कि हम शैली तत्त्व पर विचार करते समय विस्तार से प्रकाश डालेंगे[३] परन्तु

१ A good title is apt, specific, attractive, new and short.

—Short Story Writing By Charles Barret, pp 67

२ While a good title is essential, it is a great mistake to have a starting or sensational title followed by a quiet little character sketch Keep the title in its prop r proportion to the nature and interest of the story

—The Craft of the Short Story By D Maconochie pp. 22

३ कहानी प्रारम्भ करने की पाँच प्रणालियाँ इस प्रकार हैं—

(१) किसी दृश्य विशेष को चित्रित करते हुए।

(२) घटनाओं को अंकित करते हुए।

(३) पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा।

(४) किसी सिद्धान्त विशेष के अनुरूप।

(५) किसी पात्र विशेष के जीवन का परिचय देते हुए।

यहाँ पर स्मरण रखना चाहिए कि एडगर एलन पो (Adgar Allan Poo) ने— 'If his very initial sentence is not to the out-bringing of this effect then he has failed in his first step' नामक उक्ति के अनुसार स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि कहानी का प्रथम वाक्य ही उसके प्रभाव की ओर संकेत करने वाला नहीं है तो फिर कहानीकार को अपने प्रथम प्रयास में ही असफल समझना चाहिए' वस्तुतः कहानी का आरंभ ही उसका प्रवेश द्वार है तथा उसमें हमारी कौतूहलता को जाग्रत करने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए जिससे कि वह ऐसा वातावरण उपस्थित कर सके कि हमारा मानस उसको पढ़ने के लिए स्वाभाविक ही उत्प्रेरित हो उठे। जैसा कि कहा जाता है 'The first few lines of a story have been well described as the author's letter of introduction to the reader' अर्थात् कहानी का यह भाग पाठकों का उससे परिचय देता है अतः परिचय ऐसा होना चाहिए कि पाठकों पर कहानी का प्रभाव पड़ सके इसलिए आरंभ की कुशल अभिव्यक्ति पर ही कहानीकार का हस्त लाघव निर्भर रहता है। डा० सूर्यकान्त शास्त्री के शब्दों में "जिस प्रकार ढोल के चर्मभाग पर प्रहार होते ही उसका सारा पोल मुखरित हो उठता है इसी प्रकार कहानी की नाक पर चोट पड़ते ही उसकी समस्त हृदयस्थि फड़फड़ा उठनी चाहिये।"[1]

कहानी का यह अंग कथावस्तु का प्रस्तावना भाग भी कहलाता है अतः उसमें कथानक के सारे सम्पन्न बीज निहित रहते हैं तथा साथ ही मुख्य पात्रों का परिचय और परिस्थितियों का चित्रण भी किया जाता है। विचारपूर्वक देखने पर हमें वास्तविक समस्या का संकेत भी इसी प्रस्तावना भाग में मिल जाता है। स्मरण रहे कहानी के आरंभ के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वहीं वास्तविक आरंभ हो अपितु उत्कृष्ट कहानी की कथावस्तु के प्रारंभिक भाग में वातावरण की प्रतिष्ठा ही उसकी सार्थक आवश्यकता कही जाती है क्योंकि उसी की प्रेरणा से पाठक मंत्रमुग्ध सा होकर संपूर्ण कहानी को पढ़ने के लिए उत्सुक हो उठता है। जैसा कि हम कह चुके हैं कहानी का आरंभ चाहे किसी विशिष्ट स्थिति, घटना, वातावरण, चरित्र चित्रण या कथन द्वारा हो या फिर किसी महत्त्वपूर्ण कथोपकथन द्वारा लेकिन उसमें कुछ ऐसा आकर्षण अवश्य होना चाहिए कि हममें कहानी को पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न हो और रहस्योद्घाटन की लालसा से हम उसे अवश्य पढ़ें। इस प्रकार कहानी का यह भाग कलात्मक दृष्टि से कहानीकार की कुशलता की दृष्टि का द्योतक है। कहानियों के आरंभ करने की प्रणाली के कुछ उदाहरण देना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

1 [illegible]—डा० [illegible] शास्त्री (पृ० १८)

वर्णन के साथ आरम्भ होने वाली कहानियों में किसी भी दृश्य, व्यक्ति या वस्तु के वर्णन से कथा आरंभ की जाती है। प्रसाद जी ने अपनी कई कहानियों के प्रारम्भिक भाग में आकर्षक वातावरण प्रस्तुत कर शनैः शनैः कहानी के विषय से पाठकों को परिचित करा दिया है जिससे कि पाठक मंत्रमुग्ध सा होकर कहानी के अध्ययन के लिए प्रस्तुत हो उठता है। एक उदाहरण देखिए —

—"आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव दुन्दुभि का गंभीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में, समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोरें मारता हुआ आगे बढ़ने लगा।"

—पुरस्कार जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसाद जी की यह परम्परा नई कहानियों में भी विद्यमान है और वातावरण का आकर्षक चित्र प्रस्तुत कर कहानी प्रारंभ करने की प्रवृत्ति कई अधुनातन कहानीकारों में पाई जाती है। एक उदाहरण देखिए—

"रात हो गई। महल की मध्य छाया में अनगिनत दीपक जल उठे। उनकी लौ अंधेरे से लड़ने लगी। गुलाम लड़कियों ने उन पर शीशे के ढक्कनों को लगा दिया। उनके हाथ उठते ही धुले धुये पवन्याल झिलमिलने लगे और हाथों में बँधे सोने के गहने बजने लगे जिससे महल में घूमती हुई लोबान से सुगंधित वायु मस्त हो उठी। चारों ओर नृत्य करती कामिनियों के नूपुरों का रव मुखरित हो उठा। उनकी सुडौल मांसल जंघाएँ रेशम के झलमल लहँगों में से चमकने लगीं। यौवन के उस उन्मत्त मादक विलास में युवतियों के नयन अनेक दीपकों की भाँति जगमग करने लगे और वे कामातुर सी बादशाह के आने की प्रतीक्षा करने लगीं।

इसी समय ही अर्धनग्ना युवतियों के कंधे पर हाथ रखे बादशाह ने धीरे धीरे प्रवेश किया। भूमि उनके जल्दी जल्दी पग-विक्षेप से प्रकम्पित होकर गूँज उठी और बादशाह वे मदिरा प्यालों की तरह छायाओं से आक्रांत होकर काँपने लगीं।'

—पत्थर का किला रांगेय राघव

प्रसाद जी की भाँति प्रेमचन्द आदि कई कहानीकारों की कहानियों के प्रारंभिक भाग में प्राकृतिक चित्रण या दृश्यों का वर्णन प्राय नहीं होता लेकिन

उनमें सम्पूर्ण कहानी के सभी तत्त्व बीजरूप में विद्यमान रहते हैं और कहानी की मुख्य समस्या भी प्रायः स्पष्ट हो जाती है।[1] देखिए –

"हरिधन जेठ की दुपहरी में ऊख में पानी देकर आया और बाहर बैठा रहा। घर में से धुआँ उठता नजर आता था। छन छन की आवाज भी आ रही थी। उसके दोनों साले उसके बाद आये और घर में चले गये। दोनों सालों के लड़के भी आये और उसी तरह अंदर दाखिल हो गये पर हरिधन अंदर न जा सका। इधर एक महीने से उसके साथ यहाँ जो बर्ताव हो रहा था और विशेषकर कल उसे जैसी फटकार सुननी पड़ी थी वह उसके पाँव में बेड़ियाँ सी डाले हुए थी। कल उसकी सास ही ने तो कहा था, मेरा जी तुम से भर गया, मैं तुम्हारी ज़िंदगी भर का ठीका लिये बैठी हूँ क्या और सबसे बढ़कर अपनी स्त्री की निष्ठुरता ने उसके हृदय के टुकड़े कर दिये थे। वह बैठी यह फटकार सुनती रही, एक बार भी उसके मुँह से न निकला, अम्मा तुम क्यों इनका अपमान कर रही हो ?

—घरजमाई प्रेमचन्द

---

१ इधर नई कहानियों में तो प्राकृतिक चित्रण या दृश्य वर्णन और भी संक्षेप में किया जाता है तथा कभी-कभी तो एक दो पंक्तियों में ही वातावरण का उल्लेख कर कहानी प्रारम्भ कर दी जाती है। देखिए

"ठंडी तीर सी हवा के साथ एक बार फिर बौछार आई। झोंपड़ी के द्वार का टाट उखड़कर दूर जा पड़ा। बिहारी एकदम माँ से लिपट गया और चिल्लाया —'अरी अम्मा' साथ ही सर्दी से उसके दाँत किटकिटा उठे।

डिबिया भी सोई हुई न थी। माघ महीने की इस आँधी पानी के इस टपकता सरसराहट के ठंडे सीली पयाल में लेटे हुए [illegible] की नींद लिये आ पहुँची है जिस पर उसके साथ शीत के ज्वर से काँपता हुआ बिहारी भी था जिसे बहलाने और गरमी पहुँचाने की चिन्ता ने उसकी रही सही नींद भी उड़ा दी थी।"

—पानी के पुल [illegible]

और भी –

शाम के झुटपुटे में [illegible] के किनारे [illegible] बैठा [illegible] था। [illegible] और [illegible] के किनारे [illegible] था। [illegible] — मेरे कूचे में [illegible] की दुनिया [illegible] हूँ ...... [illegible] और [illegible] के बाजार [illegible]। [illegible] करने वाले [illegible] और [illegible] आ गया था — [illegible] ......

—[illegible]

और भी—

"संघमित्रा ने क्षण भर के लिए भी अपनी दुर्बलता को अशोक के सामने प्रकट नहीं होने दिया, तब भी नहीं जब अपने स्वभाव के अनुसार अशोक ने कलिंगकुमार को सूर्योदय से पूर्व प्राणदंड दिये जाने की आज्ञा दी। लेकिन एक बात वह स्पष्ट रूप से देख रही थी कि कई दिन से अशोक के स्वभाव में परिवर्तन होता जा रहा है। रक्त-पिपासु अब रक्त से कुछ भय खाने लगा है। अपने हाथों को रक्त से सना देखकर वह रह रह कर चौंक उठता है। विशेषकर कलिंगकुमार को मृत्युदंड देने के बाद तो उसके मस्तिष्क की अवस्था बहुत विचित्र हो गई है।

—जीवन दीप : विष्णु प्रभाकर

और भी—

"कुहरे की वजह से खिड़कियों के शीशे धुँधले पड़ गये थे। गाड़ी चालीस मील की रफ्तार से सुनसान अँधेरे को चीरती चली जा रही थी। खिड़की से सिर हटाकर भी बाहर कुछ दिखाई नहीं देता था, फिर भी मैं आँखें गड़ाकर देखने का प्रयत्न कर रहा था। कभी किसी पेड़ की हल्की गहरी रेखा ही पास से गुजर जाती तो कुछ देख लेने का संतोष होता। मन को उलझाए रखने के लिए इतना ही काफी था।'

—अपरिचित : मोहन राकेश

प्राय वार्तालाप से आरंभ होनेवाली कहानियों में साधारण वार्तालाप से ही कहानी का प्रारंभ किया जा सकता है और यदि हम विचारपूर्वक देखें तो यह प्रणाली अत्यधिक कलात्मक है तथा इसमें नाटकीयता की प्रधानता रहती है और कथानक स्वयं कथोपकथन के साथ साथ बढ़ता चला जाता है। कुछ उदाहरण देखिए —

'अभी तो पहना गई हो।'

'बहू जी बहुत अच्छी चूड़ियाँ हैं सीधे बम्बई से पारसल मँगाया है। सरकार का हुक्म है, इसलिये नई चूड़ियाँ आते ही चली आती हूँ।'

'तो जाओ सरकार को ही पहनाओ मैं नहीं पहनती।'

बहू जी जरा देख तो लीजिये।'

—चूड़ीवाली : जयशंकर 'प्रसाद'

और भी—

'बाहर शोर गुल मचा। डोड़ी ने पुकारा—'कौन है ?'

कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज आयी—'हत्यारिन तुझे खत्म कर दूँगा।'

स्त्री का स्वर आया —'करके तो देख! तेरे कुनबे को डायन बनकर न खा गयी, निपूते !'

डोड़ी चैन न रह सका। बाहर आया।

—'क्या करता है, क्या करता है निहाल ?'—टाही चढ़कर चिल्लाया—'आखिर तेरी मैया है ?'

—'मैया है ? —कहकर निहाल हट गया।

'—अरे तू हाथ उठा के तो देख।—स्त्री ने फुफकारा—'कढ़ी खाये। तेरी सौत पर बिजलियाँ पटकती हूँ। समझ रसिया! मत जान रसिया, हौं तेरी आसरत नहीं हूँ।

'—भाभी !'—टाही ने कहा—'क्या बकती है! होश में आ।

वह आगे बढ़ा! उसने मुड़कर कहा—'आओ सब! तुम सब लोग आओ।'

—गदल रांगेय राघव

और भी—

"अरे अभी तू आग ही सुलग रही है ?

सहसा यह सुनकर वह चौंक-सी उठी। ज्यों ही पीछे की ओर मुड़कर जो देखा, तो वह! उसका विस्मय उल्लास में बदल गया। लज्जित हास्य में वह बोल उठी—'क्यों आज इतनी जल्दी कैसे आना हुआ? खेतों के काम निपट गया क्या ? सोंच हुई नहीं कि पेट में चूहे दौड़ने लगे।' फिर उसने एक बार अपनी निर्निमेष भरी आँखों से उसकी ओर देख लिया।

'तुम्हें मालूम नहीं क्या ?' उसी उतावलेपन में उसने पूछा।

'क्या ?' स्त्री ने पूछा। उसकी आँखों में उत्सुकता झलक पड़ी।

'सारे गाँव में कोलाहल मचा है और तुम्हें — —

'अरे, फौजी भी तो क्या हुआ ?

आज फिर दीपक जल रहा है ?

'दीपन के उसी ग्वालने में से ?'

'हाँ, हाँ!

'सच ?'—उसकी आँखें हर्षातिरेक से चमक उठीं।

—मदान संगीत भैरवप्रसाद गुप्त

बहुत से कहानीकार अपनी कहानी का आरम्भ किसी घटना के चित्रण द्वारा कर देते हैं और इस प्रकार उसमें आरम्भ में ही पाठकों की उत्सुकता जागृत कर दी जाती है। देखिए—

"शान्ति ने ऊबकर कागज के टुकड़े टुकड़े कर दिये और उठकर अनमनी सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते लिखते उसका ध्यान बँट जाता था। कई चार पंक्तियाँ वह लिखना चाहती थी पर जो कुछ वह लिखना चाहती थी उससे लिखा न जाता था।— — —"

—निराशा उपेन्द्रनाथ अश्क

और भी—

"परेश बाबू ने दफ्तर से आकर नौकर को बुलाकर पूछा, एक बार दो बार पर उसने वही बात कही, छोटे सरकार जल्दी-जल्दी किताबें पटक कर एक भीड़ के साथ चले गये। परेश बाबू की कुछ समझ में नहीं आया कि मामला क्या है ?"

—देशभक्त का अंत मन्मथनाथ गुप्त

और भी—

"बाबू श्यामचरण के भाई, पं० लोकमणि की स्त्री का जिस दिन स्वर्गवास हुआ सो घर जैसे फाड़ खाने को दौड़ने लगा। यद्यपि इतनी बात तो वह लोग भी जानते ही थे कि जीवन और मरण यह दो बातें विधाता के हाथ में हैं, मनुष्य हाथ मलकर केवल चुप देखते रह जाने की ही सामर्थ्य रखता है और कुछ नहीं। किन्तु फिर भी खूँटी खूँटी पर स्वर्गता के कपड़े और आले आले में उसके हाथ की रक्खी हुई चीज़ों को जब लोकमणि देखते तो जैसे उनका हृदय अन्दर ही अन्दर घुट-घुट कर भस्म होने लगता।"

—धरती का पत्र हैमवती

स्मरण रहे कि कहानी के प्रारम्भिक भाग की भाँति उसका मध्य भाग भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आरम्भ तो परिचयमात्र ही होता है तथा उस परिचय की विस्तारपूर्वक व्याख्या मध्य भाग में ही संभव होती है और उसमें समस्या का चरम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोहावरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है।[1] जैसा कि डा० लक्ष्मीनारायण लाल का विचार है "इसी अंग में कहानी की वास्तविक व्यंजना प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है क्योंकि रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु विन्यास का मध्य भाग ही कहानी का विकास भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है।"[2] इस प्रकार कहानीकार के लिए विकास का सुचारु रूप से निर्वाह करना एक दुस्तर कृत्य समझा जाता है परंतु यदि वह कुछ आवश्यक बातों की ओर ध्यान दे तो उसकी बहुत सी कठिनाइयाँ सहज ही दूर हो सकती हैं। कथानीकार को कलात्मक दृष्टि से विकास का विस्तार आवश्यकता से अधिक कदापि न करना चाहिए और उसका विस्तार वहीं तक सीमित होना चाहिए जहाँ तक कि वह पात्रों एवं घटनाओं को आगे बढ़ाने में सहायक हो तथा पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न होने के पश्चात् उसको रुक जाना ही आवश्यक है अन्यथा न केवल कथावस्तु की स्वाभाविकता नष्ट हो जाएगी अपितु कहानी का स्वरूप ही विकृत हो जाएगा। साथ ही विकास का

१ The Craft of the Short Story by D Machonochie pp. 20

२ हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ११

विस्तार करते समय कहानी लेखक को कौतूहल वर्द्धक प्रसंगों के लिए अपनी पृष्ठभूमि भी तैयार कर रखनी चाहिए जिससे कि कहानी का विकास स्वाभाविक गति में हो सके। जैसा कि डा० रामकुमार वर्मा का मत है "प्रारम्भ तो एक कथन की भाँति रहता है। इसमें घटनायें—उसमें पात्र—वैसा वातावरण—इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस कंकाल को सजीव मांस से अथवा मखमल के समान चमकती त्वचा से सुसज्जित करने में विकास का ही विशेष भाग रहता है। प्रेम विकास का निर्वाह कितने सुन्दर रूप में होना चाहिये यह कहने की आवश्यकता नहीं। कई लेखक विकास का विस्तार आवश्यकता से अधिक कर देते हैं। उस कंकाल को अधिक मांसल अथवा स्थूल बना देते हैं। वे सुन्दरता (?) लाने के लिए विकास के रास्ते पर लेखनी दौड़ाते चले ही जाते हैं। फिर उन्हें यह ध्यान नहीं रह जाता कि कहानी का कलेवर बेडगा हो रहा है।"[1] इस प्रकार की स्थिति में न तो कहानीकार कुतूहलवर्द्धक घटनाओं की सृष्टि ही कर पाता है और न चरम सीमा की तथा कभी-कभी कहानी का अन्त एक निर्बंध के समान हो जाता है। कहानी के विकास का सुन्दर उदाहरण निम्नांकित कहानी में देखते ही बनता है। प्रवेश के बाद विकास कितनी सुन्दरता से सम्बद्ध है—

(प्रवेश)

'जीवन भर अभावों और बेचैनियों से लड़ते-लड़ते एक दिन रामदीन ने देखा कि उसके जीर्ण नश्वप्राय मोपड़ के सामने का तालाब भी सूख चला है।

यह तालाब रामदीन का बड़ा पुराना साथी सखा हमदर्द था। एक दुःखद धुंधलेपन के साथ उसे याद आया कि इसी तालाब के किनारे बचपन में उसने दिन भर मस्ती के साथ समय बिताया है। जेठ बैशाख की उदासी दोपहरियों में सावन-भादों की उमड़ती बदली और धुआँधार बारिश में शरद के प्रभातों की निखरी रोशनी में और हेमन्त की दाँत दबानेवाली नम्र ठिठुरन में इसी तालाब में उसने अपने फूले पचमूरित शरीर को जी-भर डुबोया है। इसी तालाब के किनारे बचपन में उसकी माँ बैठकर बरतन माँजा करती थी। इसी तालाब के किनारे नित्य बरतन माँजते माँजते उसकी आरत मरी। जवानी में एक अधमरा-सा मांसपिण्ड प्रसव करके अपने भगवान के घर चली गयी। आज भी उसकी बेवा पच्ची बहू सिदिया इसी तालाब के किनारे बैठकर मूक सम्बल-संभारहीन यंत्र सी जीवन के निर्जीव संस्मरणों को चमकाया करती है। रामदीन ने वे दिन भी देखे हैं, जब इसी तालाब के चारों ओर सिंघाड़े की बेलों का संसार छाया रहता था। कुछ नीमा कुछ सफेद पानी साफ बड़ी-बड़ी पूरों में चारों ओर टुकुर टुकुर निहारा करता था।

---

1 साहित्य-समालोचना—डा० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ६२–६४)

और भी—

"परेश बाबू ने दफ्तर से आकर नौकर को बुलाकर पूछा, एक बार दो बार पर उसने वही बात कही, छोटे सरकार जल्दी-जल्दी किवाड़े पटक कर एक मोड़ के साथ चले गये। परेश बाबू की कुछ समझ में नहीं आया कि मामला क्या है ?'

—देशभक्त का अंत मन्मथनाथ गुप्त

और भी—

"बाबू दयामचरण के भाइ, पं० लोकमणि की स्त्री का जिस दिन स्वर्गवास हुआ तो घर जैसे फाड़ खाने को दौड़ने लगा। यद्यपि इतनी बात तो वह लोग भी जानते ही थे कि जीवन और मरण यह दो बातें विधाता के हाथ में हैं, मनुष्य हाथ मलकर केवल चुप देखते रह जाने की ही सामर्थ्य रखता है और कुछ नहीं। किन्तु फिर भी खूँटी खूँटी पर स्वगता के कपड़े और आले आले में उसके हाथ की रक्खी हुई चीजों को जब लोकमणि देखते तो जैसे उनका हृदय अन्दर ही अन्दर घुट-घुट कर भस्म होने लगता।"

—करनी का फल होमवती

स्मरण रहे कि कहानी के प्रारम्भिक भाग की भाँति उसका मध्य भाग भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आरम्भ तो परिचयमात्र ही होता है तथा उस परिचय की विस्तारपूर्वक व्याख्या मध्य भाग में ही संभव होती है और उसमें समस्या का परम विस्तार तथा अन्तर्द्वन्द्व का आरोहावरोह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है।[1] जैसा कि डा० लक्ष्मीनारायण लाल का विचार है "इसी अंग में कहानी की वास्तविक आत्मा प्रस्फुटित होती है और कहानी के लक्ष्य की पूर्ण पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है क्योंकि रचना-विधान की दृष्टि से वस्तु विकास का मध्य भाग ही कहानी का विकास भाग है और विकास भाग कहानी का मूल शरीर है।"[2] इस प्रकार कहानीकार के लिए विकास का सुचारु रूप से निबाह करना एक दुष्कर कृत्य समझा जाता है परंतु यदि वह कुछ आवश्यक बातों की ओर ध्यान दे तो उसकी बहुत सी कठिनाइयाँ सहज ही दूर हो सकती हैं। कहानीकार को कलात्मक दृष्टि से विकास का विस्तार आवश्यकता से अधिक कदापि न करना चाहिए और उसका विस्तार वहीं तक सीमित होना चाहिए जहाँ तक कि वह पात्रों एवं घटनाओं को आगे बढ़ाने में सहायक हो तथा पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न होने के पश्चात् उसका रुक जाना ही आवश्यक है क्योंकि यथा न केवल वस्तु की स्वाभाविकता नष्ट हो जाएगी अपितु कहानी का स्वरूप ही विकृत हो जाएगा। साथ ही विकास का

१ The Craft of the Short Story by D. Machonochie, pp. 20

२ हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ १२६)

विस्तार करते समय कहानी लेखक को कौतूहल वर्द्धक प्रसंगों के लिए अपनी पृष्ठभूमि भी तैयार कर रखनी चाहिए जिससे कि कहानी का विकास स्वाभाविक गति से हो सके। जैसा कि डा० रामकुमार वर्मा का मत है "प्रारम्भ तो एक कंकाल की भाँति रहता है। इतनी घटनायें—इतने पात्र—ऐसा वातावरण—इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। उस कंकाल को सजीव मांस से अथवा मखमल के समान कोमल त्वचा से सुसज्जित करने में विकास का ही विशेष भाग रहता है। ऐसे विकास का निर्वाह कितने सुन्दर रूप से होना चाहिये यह कहने की आवश्यकता नहीं। कई लेखक विकास का विस्तार आवश्यकता से अधिक कर देते हैं। उस कंकाल को अधिक मांसल अथवा स्थूल बना देते हैं। वे सुन्दरता (?) लाने के लिए विकास के रास्ते पर लेखनी दौड़ाते चले ही जाते हैं। फिर उन्हें यह ध्यान नहीं रह जाता कि कहानी का कलेवर बेढंगा हो रहा है।"[1] इस प्रकार की स्थिति में न तो कहानीकार कुतूहलवर्द्धक घटनाओं की सृष्टि ही कर पाता है और न चरम सीमा की तथा कभी-कभी कहानी का अन्त एक निबंध के समान हो जाता है। कहानी के विकास का सुन्दर उदाहरण निम्नांकित कहानी में देखते ही बनता है। प्रवेश के बाद विकास कितनी सुन्दरता से सम्बद्ध है—

(प्रवेश)

"जीवन भर अभावों और बेचैनियों से लड़ते-लड़ते एक दिन रामदीन ने देखा कि उसके जीर्ण नष्टप्राय झोंपड़े के सामने का तालाब भी सूख चला है।

यह तालाब रामदीन का बड़ा पुराना साथी सच्चा हमदर्द था। एक दुखद धुंधलेपन के साथ उसे याद आया कि इसी तालाब के किनारे बचपन में उसने दिन भर मस्ती के साथ समय बिताया है। जेठ बैशाख की जलती दोपहरियों में सावन-भादों की उमड़ती बदली और घुआंधार बारिश में शरद के प्रभातों की बिखरी रोशनी में और हेमन्त की शीत बढ़ानेवाली मन्द ठिठुरन में इसी तालाब में उसने अपने पहले पंक-पूरित शरीर को जी-भर धुलोया है। इसी तालाब के किनारे बचपन में उसकी माँ बैठकर बर्तन माँजा करती थी। इसी तालाब के किनारे नित्य बर्तन माँजते माँजते उसकी आंखें भरीं। जवानी में एक अधमरा-सा मांसपिण्ड प्रसव करके अपने भगवान के घर चली गयी। आज भी उसकी बेवा अन्धी बहू बिंदिया इसी तालाब के किनारे बैठकर मूक मन्थर-संचारहीन यंत्र सी जीवन के निर्जीव संस्मरणों को चमकाया करती है। रामदीन ने वे दिन भी देखे हैं, जब इसी तालाब के चारों ओर किनारे की बेलों का संसार छाया रहता था। कुछ नीला कुछ सफेद पानी साफ बड़ी-बड़ी बूँदों में चारों ओर टुकुर टुकुर निहारा करता था।

---

१ साहित्य-समालोचना—डा० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ६–६४)

आज रामदीन ने भले ही जीवन और प्रतिक्षण घटित होनेवाले परिवर्तन पर विजय पा ली हो, भले ही वह इतिहास की दुनिया से निकलकर ऊपर उठ गया, शेष जीवन-व्यापिनी एकरसता का धुंधला धुआँ बन गया हो, पर यह सत्य तो जीवित रहने के लिए नहीं जी रहा था। भले ही रामदीन के सामने उसका हाथी-सा जवान लड़का मेंढक की तरह दम-तोड़कर उसकी छाती पर अपनी चट्टान रखकर सूखे प्यासों की इस बेहया बस्ती से दूर निकल गया हो, और रामदीन का अपने दैनिक कार्यक्रम में एक निरालम्ब कसमसाना, एक टीसभरी टंकार के अतिरिक्त अब और कुछ अवशेष न हो, पर ऐसी शीतल छाती वाले इस मुक्त जग-कल्लोल प्रवाह में कौन सी आँच पहुँच गयी।'

(विकास)

"शाम को जब रामदीन, चिड़िया और उसका तीन साल का बच्चा आकर दरवाजे पर खड़े हो गये। यहाँ वह समय होता है जब एक भिखारी भी बादशाह हो जाता है। जब सन्तोष होता है, उसमें भी कुछ शक्ति, बल और क्षमता है। वह भी तो को भिखारी बनाता है। पर आज तो रामदीन दिनभर में एक पैसे की बीड़ी उधार लेकर पी गया था, कहीं भी कुछ काम न मिला। घर में कुछ था ही नहीं। चिड़िया उसकी उस मौन पत्थर चेष्टा देखकर समझकर जान गयी—आज की रात कालरात्रि होनेवाली है। यह उसके जीवन में पहला मौका नहीं था। जीवन की कितनी ही रातें उसने इसी भाँति ऐसी ठंडी निराशा में भिगो डाली हैं और सारी रात इसी के गीलेपन में अपनी दृष्टिहीन आँखों की नमी को पत्थर करती रही है। वह भूखी रह सकती थी। रामदीन भी यदि औसत लगाया जाये तो करीब करीब आधी ही जिन्दगी भूखा रहा होगा। पर तीन साल का टीपू नन्हा और जीवन के नरक से अपरिचित।

चिड़िया काँप उठी। घर में एक पैसा नहीं है। आसपास दूर-दूर तक कोई झोंपड़ी मकान भी नहीं है। रात में उसने गेहूँ पीसे थे। मजदूरी के पैसे पहले ही मिल चुके थे। यदि आज होता तो उसमें से पाव आध सेर आटा निकाल लेती। अपने लिये नहीं, अपने उस सजीव मांसपिण्ड के लिये जिसे उसने पाँच मास अपने अधभूखे पेट में पाला था। रातभर झोंपड़ी के अन्दर एक तरफ रामदीन पड़ा खाँसता रहा, और दूसरी ओर चिड़िया अपने तीन साल के भूखे बच्चे को समेटे ज्यों की त्यों पड़ी रही। रात को चार पहर जब हाहाकार पुकार बढ़ आया। उसकी कराहों में मासूम बच्चा भी सिसक-सिसककर रो उठा।

रामदीन ने जब सुबह उठकर झोंपड़ी का पर्दा एक ओर हटाया तो बाजार की ओर देखते ही आज फिर उदास हो गया। उस रोज शहर यही मालूम होगा,

जैसे यह कोई बहुत बड़ी आग है, जो धरती के भीतर-ही-भीतर सुलग रही है। मगर इतना बड़ा और इतना पुराना तालाब उसके अगोचर, अपरिज्ञानित कोष में सूख जा सकता है तो इस बस्ती, इन मकानों, मंदिरों के खजाने में भी अब देर नहीं है। वह भयभीत भी होने लगा।

रोज की तरह वह फिर अपना टोकरा सँभाल कर काम की तलाश में निकला। एक मजदूर की जिन्दगी ही क्या! न घर में आटा था न पास में पैसा। बिंदिया घर में पीसकर कुछ पैसे पा सकती थी। आज वह अपनी ही यंत्रणा में झुलसी जा रही थी। बनिये के कई रुपये हो गये थे, जो रोज तकाजा करता था—मारने की धमकी के साथ साथ। सोचा चलूँ जाते ही जो कुछ मिलेगा, उसे घर में लाकर पहले टीपू को खिला दूँगा फिर बोझ ढोकर शाम को अपने और बिंदिया के लिये पकाऊँगा।

मगर पूरा दिन उसी तरह बीत गया। उसी सरलता और सद्भावना से। दिन भर तलाश में रहा। न जाने कितनों से याचना की भीख माँगी। मगर एक पैसा भी न मिला। एक-एक क्षण आग का तिनका हो रहा था। आत्मा और कलेजे को जलाता हुआ वेग के साथ चला आता। शाम को भूखा, निराश, थका हुआ घर लौटा। टीपू भूख से व्याकुल होकर बिंदिया से रोटी माँग रहा था और रो रहा था। उसका मुँह सूखकर आम-सा हो गया था। आँखों में भूख तृष्णा। मगर रोटी वहाँ कहाँ? वह गरीब तो स्वयं रो रही थी। अपनी पीड़ा भूख से नहीं वरन अपने कलेजे के टुकड़े को बिलखते देखकर। वह अन्धी थी। दुनियाँ को तो न देख सकती थी, पर उसके शरीर का कोई भाग-सत्ता ही अब वह स्वतन्त्र अस्तित्व बन गया था—भी तो उससे छिपा न था।

उसके रोम-रोम से धुआँ निकल रहा था। रामदीन को देखते ही टीपू उससे लिपट गया और कुर्ता उठाकर अपना धँसा हुआ सिकुड़ा पेट दिखाने लगा। रामदीन तो उस समय बेहोश था। उसे यह भी न मालूम हुआ कि कब उसके सीने से लिपटा हुआ बच्चा सो गया जिसके गालों पर आँसुओं की काली रेखायें अपनी शुष्क प्रगति छोड़ गयी थी।

प्रातः उठते ही फिर सुबह काम की खोज में निकला। टीपू को सोते से जगाने की हिम्मत नहीं पड़ी। अगर उसने रोटी माँगी, तो क्या दूँगा? मगर क्या होनेवाला था! उस दिन भी कोई काम नहीं मिला। वह पागल की तरह सड़कों पर घूमता रहा। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा। एक बाबू साहब अपने बच्चे को लिये जा रहे थे। उसके हाथ में बिस्कुट थे। वहीं पर बच्चे का एक बिस्कुट गिर पड़ा। रामदीन ने झपटकर उसे उठा लिया और तेजी से घर की ओर भागा।

टीपू भूख में तड़पकर सो गया था। चिड़िया पड़ी थी। आँखें बरसाती नाले-सी बह रही थीं। तीन दिन में महीनों की-सी बीमारी घेरे थी जैसे टूट गयी हो। मुँह से बोल नहीं निकलता था। बच्चे को जगाया। बिस्कुट खाने को दिया। दो दिन की भूखी रोगिणी और भूखा रामदीन गम खाकर लेट गये।

तीसरे दिन भूख की ज्वाला में ज्वार सुलगता हुआ जब रामदीन घर लौटा तो उसके पैर काँप रहे थे। अंगों से शोले निकल रहे थे। लड़खड़ाता हुआ वह घर में घुसा। बच्चा जमीन पर पड़ा था—आँखें गड्ढे में धँस गयी थीं। खाट पर पड़ी चिड़िया शिथिल पड़ी थी। अन्धी थी पर बच्चे की तरफ ही देख रही थी। बीच बीच में टीपू आर्तनाद करता हुआ उसकी ओर देख लेता था। चिड़िया ने रामदीन की मूक वापसी से कुछ जान लिया।

टीपू रामदीन को देखते ही झटपट उठा—'बापा, रोटी लाये? दो-अभी दो। अभी ही दो।'

निरीह झोंपड़ी की गोद। रात काली और भयानक। आकाश में तारे खिसक रहे थे। नीचे हाहाकारमयी यंत्रणा में ये प्राणी। कुहास इतनी थी कि झोंपड़ी की छत से टकराकर उनका आर्तनाद भीतर ही भीतर उमसकर रह जाता था। बाहर नहीं निकल पाता था। नहीं तो   जाने भी दो।

रामदीन का रक्त प्रवाह भी रुका-सा रहा था। झोंपड़ी की छत की साँसों से जो आसमान दिखायी देता था वह भी थरथरा रहा था। टीपू उसके पास ही बैठा था। रामदीन की पूरी जिन्दगी अपनी सारी तस्वीरें लेकर उसकी आँखों में घूम चली। बीच-बीच में जब टीपू धीरे से क्षीणप्राय कण्ठ से 'रो-टी' कह उठता उस समय रामदीन के सामने चलचित्रों का सिलसिला झट से टूट जाता। 'तीन दिन का भूखा टीपू' रामदीन आगे न सोच सका। भूख से घुटता हुआ अबोध शिशु और भूखी और अन्धी बहू की असह्य वेदना। रामदीन टीपू के शरीर पर हाथ फेरने लगा। टीपू ने कुम्हलाकर आँखें खोलीं। उन सूनी ताम्राभ-सी ही अकड़न और स्थिरता उनमें भी आ चली थी। पुतलियाँ ऊबड़-खाबड़ मिट्टी की गोठी मकड़ी दरारों की भाँति ही यथावत् हो रही थीं।

रामदीन का हाल हुआ जैसे वह शराब के नशे में हो। अचेतन, अवसादपूर्ण खुमार। अपने शरीर, हाथ, पाँव, सिर किसी पर उसका अधिकार नहीं। सब उसके हाथ से बाहर निकले जा रहे हैं। टीपू ने फिर एक बार कोशिश करके रोटी माँगी। रामदीन के दुर्बल, शक्तिहीन हाथ टीपू के गले पर रेंगे। उसकी एक निःसत्व अँगुलियों कफन का ताना बाना गूँथ चलीं।

कई मिनिट वह वैसे ही स्तब्ध और पत्थरवत् खड़ा रहा। नशा अभी उतरा नहीं था। तीन दिन का भूखा टीपू तो अपनी मंजिल की ओर चल पड़ा था।

नशा उखड़ा, सपना टूटा। और चेतना में भूचाल आया। रामदीन तीर की तरह उठ बैठा और चिड़िया के पास चला गया। आधी बेहोश और आधी सोयी हुई वह तीन दिन की भूखी बच्ची मानों सपने में टीपू को भर पेट मिठाई खिला रही थी। रामदीन ने पास आकर उसे झकझोर डाला, परन्तु फिर भी कदाचित उसका वह सपना न टूटा। लेकिन रामदीन ने जब मतवालेपन की-सी मादकता में उसका गला घोंटा तब तो वह उसी प्रकार कें कें कर उठी, जैसे सड़क पर कुत्ते ऊपर से लारी निकल जाने पर चीख उठते हैं।'

— हत्यारा रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

वस्तुतः कहानी के विकास में कौतूहलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसी विकास भाग से चरमसीमा भी पूर्णरूप से सम्बद्ध रहती है और कुशल कहानीकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने पाठकों को वहाँ तक सहजगति से पहुँचा दे। विकास का विस्तार करते समय कहानीकार को प्रत्येक शब्द और वाक्य का प्रसंगानुकूल ही प्रयोग करना चाहिए तथा शब्दों का भाव विशेष की अभिव्यंजना और सौंदर्यवृद्धि में महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है चूंकि प्रत्येक सफल कहानी में कौतूहलता अपेक्षित है तथा इसी के द्वारा कथावस्तु में चमत्कार और रोचकता का प्रादुर्भाव भी होता है अतः कौतूहल सृष्टि किस रूप और किस स्तर से हो यह भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। विचारकों की दृष्टि में कौतूहलता का प्रभाव स्वाभाविक और शांत होना चाहिये क्योंकि शीघ्रता करने से उसका समूचा सौंदर्य विनिष्ट हो सकता है अतः कौतूहलता जाग्रत करने के लिये कुशल कहानीकार किसी एक या अनेक ऐसी घटनाओं का चयन करता है जो न केवल महत्त्वपूर्ण हों अपितु जिनमें एक विशिष्ट प्रकार का आकर्षण भी हो। साथ ही पात्रों का चित्रण इसी प्रकार करना चाहिए कि वे स्वाभाविक प्रतीत हों तथा कौतूहलता नष्ट न करें और कौतूहल की सृष्टि इस रूप में हो कि पाठकों को आगे होने वाली घटनाएँ पहले ही से न ज्ञात हो जायें अन्यथा उन्हें कथा से पूर्णतः आनन्द प्राप्त न हो सकेगा। स्मरण रहे चरित्र प्रधान कथानक में तो कौतूहलता की सृष्टि सहज ही संभव हो सकती है क्योंकि उसमें पात्र विशेष के चरित्रांकन को ही महत्त्व दिया जाता है अतः उसके अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक घात प्रतिघातों के चित्रण में कौतूहलता का समावेश स्वाभाविक ही हो जाता है परन्तु घटना प्रधान कथावस्तु में भ्रम, विपत्ति और उत्तेजनाजनक परिस्थितियों को अंकित करते समय कभी कभी कौतूहलता का आवेग द्रुतगति से बढ़ने लगता है अतः कहानी लेखक द्वारा उसका संतुलन करना निस्संदेह आवश्यक है अन्यथा कथागत सौंदर्य अक्षुण्ण न रह सकेगा। वस्तुतः कौतूहलता के आगे बढ़ने पर ही कहानी में चरम सीमा—अन्त—की अवस्था आती है अतः कहानी लेखक द्वारा उपर्युक्त बातों पर ध्यान रखते हुए ही कौतूहल सृष्टि करनी चाहिए और

पाठकों की उत्सुकता को बढ़ाने में सतर्कता के साथ ध्यान देना चाहिए अन्यथा चरम सीमा की अवस्था में कथानक का एकात्मिक प्रभाव नष्ट हो सकता है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में 'अच्छी कहानियों में कुतूहलता का आविर्भाव अनेक बार होता है। पर प्रत्येक बार यह कुतूहलता पैनी होती जाती है। यदि पहला कौतूहल एक भावना को जाग्रत करता है तो दूसरा और तीसरा अनेक भावनाओं को। प्रत्येक बार भावना तीव्र भी होती जाती है। यदि ऐसा न हो तो कहानी का विकास नहीं हो सकता और उसकी चरम सीमा में तीव्रता नहीं हो सकती। पहला कौतूहल प्रारंभ में उत्सुकता की सृष्टि करता हुआ कहानीको चरम सीमा की ओर बढ़ाता है। चरम सीमा तक पहुँचने के पूर्व उसकी गति को तीव्र करने के लिये दूसरे और तीसरे कौतूहल की सृष्टि करने की आवश्यकता पड़ती है जिससे चरमसीमा में आने की स्थिति तक कहानी अनेक प्रकार की भावनाओं के संघर्ष से इतनी भारी और विस्तृत बन जाती है जैसे वर्षा की काली बादलमाला जिसमें अपरिमित जलकण छिपे रहते हैं। फिर केवल चरमसीमा की विद्युत् के चमकने और प्रचंड शब्द करने ही की देर रह जाती है। जैसे ही इस उत्सुकता से परिपूर्ण भावनाओं की संघर्ष पूर्ण स्थिति में चरम सीमा का विद्युत संचार हुआ वैसे ही सारी कहानी का सौंदर्य एक क्षण भर में एक अनुपम आनन्द के आलोक से प्रकाशित हो उठता है।"[1]

जैसा कि राय कृष्णदास ने लिखा है "सच पूछिए तो आधुनिक कहानी की सबसे बड़ी सफलता उसके अन्त में है। प्रारंभ चाहे थोड़ा शिथिल और दूसर हो तो किसी प्रकार चल भी सकता है किन्तु उसकी समाप्ति तो चुस्त होनी ही न चाहिए क्योंकि कलाकार उसे ठेठ अंत तक तो पहुँचाता नहीं, केवल एक पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) तक पहुँचाकर छोड़ देता है। बस वह पराकाष्ठा न बन पड़ी कि कहानी फेल होगई।'[2] इसी प्रकार पाश्चात्य विचारकों ने भी आधुनिक कहानी कला में कहानी के आदि और अंत भाग पर ही विशेष ध्यान देना आवश्यक समझा है[3] तथा श्री गुलाब राय जी के शब्दों में भी 'कहानी के अंत की संकृति जितनी देर तक हमारे मानस गगन में गूँजे उतना ही हम कहानी को सफल समझेंगे।'[4] वस्तुतः कौतूहलता के अन्त में चरम सीमा की अवस्था आती है और इस प्रकार चरम सीमा की स्थिति में पहुँचने पर कहानी का कार्य संपूर्ण हो जाता है अतः कहानीकार को उसका निर्वाह भी पर्याप्त सावधानी और सतर्कता के साथ करना चाहिए अन्यथा जिस प्रकार ऊँचे पहाड़ की शिखर पर पहुँच कर सावधानी से चरण न रखने पर फिसलकर नीचे आ

---

१ साहित्य समालोचना—डा० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ७१)

२ नवीन कहानियाँ—श्री राय कृष्णदास और श्री वाचस्पति पाठक (आमुख पृ० ३)

3 Mr Ellery Sedgewick held that "A story is like a horserace. It is the start and finish that count most."

४ काव्य के रूप—श्री गुलाबराय (पृष्ठ २२८-९)

गिर पड़ने का भय रहता है उसी प्रकार कहानीकार के समस्त परिश्रम पर पानी फिर सकता है। कहानी लेखक पात्रों की भावनाओं को उत्तेजना देकर उन्हें एक निश्चित स्थल पर पहुँचा देता है और कथावस्तु की सारी सुन्दरता को पूर्णरूप से स्पष्ट करते हुए चरम सीमा के हेतु कहानी से मूलतः संबंधित एक ऐसी घटना की उद्भावना करता है जो कि चरम सीमा की अवस्था का उचित रूप से निर्वाह कर सके।[1] स्मरण रहे घटनाप्रधान कथावस्तु की चरम सीमा चूँकि घटनात्मक ही होती है और उसमें संयोग या अप्रत्याशित कार्य व्यापार की अवतारणा स्वाभाविक रूप से ही होगी अतः घटनाप्रधान कहानी-लेखक को अपनी कहानियों की चरम सीमाओं पर पहुँचने में उतनी अधिक कठिनाई नहीं होती जितनी कि भावप्रधान कहानियों के प्रणेता को होती है। भावप्रधान कहानियों के लिए यह आवश्यक समझा गया है कि उनका अंत वहीं कर दिया जाए जहाँ कि चरम सीमा की अवस्था आई हो क्योंकि इस प्रकार पाठकों के मानस पर एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है तथा कहानी को पढ़ने के पश्चात भी उसके विषय में कुछ सोचने के लिए उन्हें सामग्री प्राप्त हो जाती है। भावप्रधान कहानियों के अंत को किसी भी प्रकार आगे न बढ़ाना चाहिए तथा केवल कुछ गोपनीय ढंग से आशय की ओर संकेत मात्र कर देने से उसका सौंदर्य बढ़ जाता है और यदि कहानीकार ने व्यर्थ ही उसे आगे बढ़ाकर व्याख्या करने की चेष्टा की तो उसका स्वरूप विकृत और असंगत ही प्रतीत होगा। किसी भी भावप्रधान कहानी को पढ़कर यह कहना कि उसका अंत ठीक नहीं हुआ तथा उसके आगे कुछ और होना चाहिए था उचित नहीं है क्योंकि प्रायः सर्वसाधारण तो भावप्रधान कहानी के अंत की कलात्मक सुन्दरता को समझ ही नहीं पाते। यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो इस श्रेणी की कहानियों का अंत अन्य प्रकार की कहानियों से कुछ कम सुन्दर और कलापूर्ण नहीं होता।[2] यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बहुत सी कहानियों की चरम सीमाओं के उपरान्त छोटे-छोटे

---

१ ऐसी पराकाष्ठा के लिए कभी-कभी कहानी नदी के प्रवाह की भाँति अकस्मात् घूम जाती है जिसके कारण हमारे सामने एक बिलकुल नई दुनिया आ खड़ी होती है। किंवा हमारा हृदय अंत में जिस गंभीर परिणाम की आशंका से धड़कता रहता है उसके विपरीत एक बिलकुल हलके परिणाम में कभी कभी तो एक मज़ाक में कहानी की पूर्ति होती है मानों पहाड़ खोदने पर चुहिया निकल पड़ती है और उससे हमें विशेष चमत्कार होता है।"

—इक्कीस कहानियाँ राय कृष्णदास (आमुख पृष्ठ ३)

२ इस प्रकार के कुछ सुन्दर उदाहरण देखिए—

"बिसाती अपना सामान छोड़ गया फिर लौट कर नहीं आया। मीरी ने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।

—बिसाती जयशंकर प्रसाद'

उपसंहार और उपदेशात्मक वाक्य भी जुड़े मिलते हैं परन्तु उत्कृष्ट कहानियों की चरम सीमाएँ मनोवैज्ञानिक अनुभूति के सत्य पर ही प्रतिष्ठित रहती हैं और इस प्रकार उन्हें कलात्मक ही कहा जाता है।[1] प्रेमचन्द की कुछ कहानियों की चरम सीमाओं का आधार न तो कोई घटना है और न संयोग अपितु ये

और भी—

"गोधूली की ओर बही उदास रमला झील। साजन थका हुआ बैठा था। आज उसके मन में आँखों में न जाने कहाँ का स्नेह उमड़ा पड़ता था। प्रशान्त रमला में एक चमकीला फूल खिल गया। साजन ने आँख उठाकर देखा—पहाड़ी की चोटी पर एक तारिका रमला के उदास भाल पर सौभाग्य चिह्न सी चमक उठी थी। देखते-देखते रमला का वक्ष नक्षत्रों के हार से सुशोभित हो उठा। साजन ने पुकारा—'रानी।'"

—रमला जयशंकर 'प्रसाद'

और भी—

साल में एक बार आम्र मंजरियों की आड़ से झाँककर माया मुझ स्वप्न बनी है। उससे कहता हूँ माया।

वह लज्जित हो जाती है और पत्तों के घूँघट को अधिक खींच लेती है। मैं कहता हूँ—'क्या माया इतनी लज्जा क्यों।

वह कहती है—"अब मेरा विवाह हो गया।"

—बूढ़ा आम सुमित्रानन्दन पंत

और भी—

'जब मन का सुख का रास्ता नहीं मिलता तो अपनी ही कदम तेज हो जाते हैं। उसी हालत में नाक ऊपर उठाए राह चलता से ठोकर खाता मैं चला जा रहा था यह भावना हुआ—'शोक करने के लिए गम मनाने के लिए भी सहूलियत चाहिए और दुखी होने का भी एक अधिकार होता है......।

—दुख का अधिकार यशपाल

१ देखिए

"घूँघट के भीतर जहाँ आँखें होनी चाहिए वहाँ कुछ नीलापन दिखा।

ऐसा मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकती। मेरा उस दिन का रूखापन और बदमीज़ी भूल जाओ। तुम मेरे प्राण हो मेरा काँटा निकाल दो।

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। मालूम पड़ा कि वधू ने किवाड़े का सिरा खींच लिया गले में धीरे-धीरे फँस रहा है। भाग्यवती का अचेतन शरीर निस्सार होकर रघुनाथ के कंधे पर लग गया। कथा आँसुओं से गीला हो गया।

'मेरा कसूर—मेरा भोलापन—मैं उजड्ड—मेरा अपराध—मेरा पाप—मैंने क्या क्या कहा था और क्या कहा था सिसकी बँध गयी।

उसका मुँह बन्द करने का एक उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।"

—घंटाघर का काँटा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी'

मनोवैज्ञानिक सत्य पर ही आधारित है अतएव इस प्रकार की चरम सीमाओं का विस्तार फैला सा प्रतीत होता है, अन्यथा एक पंक्ति में ही चरम सीमा प्रतिष्ठित हो जाती। वस्तुतः इस प्रकार की चरम सीमाएँ नितान्त कलात्मक ही हैं और प्रेमचंद की कफ़न नामक कहानी की चरम सीमा हमारे इस कथन का सुन्दर उदाहरण है। देखिए–

तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने आ पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ ज़रा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा—'साहु जी एक बोतल हमें भी देना।'

इसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछलियाँ आईं और दोनों बरामदे में बैठकर शांतिपूर्वक पीने लगे। कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला—'कफ़न लगाने से क्या मिलता? आख़िर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता। माधव आसमान की तरफ़ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो—'दुनिया का दस्तूर है नहीं तो लोग बाम्हनों को हज़ारों रुपये क्यों दे देते हैं? कौन देखता है परलोक में मिलता है या नहीं।

बड़े आदमियों के पास धन है, फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?
'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है?

घीसू हँसा—'अबे कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आयेगा लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

माधव भी हँसा—इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला—बड़ी अच्छी थी

और भी

प्रात काल हो चला था। सबेरा आलोक फूट रहा था। सम्मुख एक एक कर पुलिस की मूर्तियाँ दूर से आती दीख रही थीं।

अजित समझ गया कि यह अंतिम मिलन बना है। विरोध करना व्यर्थ था। उसने भरत से कहा—सो जाने दो।

नींद आप ही आप टूट गई। स्वप्न भंग हो गया। भारती ने अजित की ओर प्रणय भरी दृष्टि से देखा और उन सिपाहियों से कहा—मैं तैयार हूँ।

...... "जेल के घण्टे ने टन टन कर ग्यारह बजाए। अजित चौंक उठा। ऊपर देखा छत पर लगा पंखा झला एक क्षण झला रहा और फिर ऊपर हो गया।"

—स्वप्नभंग गायत्री वर्मा

बेचारी। मरी तो खूब खिला पिलाकर। आधी बोतल से ज्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मंगाईं। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त इस शान से बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था न बदनामी की फिक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला—'हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है, तो क्या उसे पुन्न न होगा ?'

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक की—'जरूर से जरूर होगा। भगवान, तुम अंतर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में शंका जागी। बोला—क्यों दादा हम लोग भी तो एक न एक दिन वहाँ जायेंगे ही ?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे ?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर !'

'पूछेगी तो जरूर।'

'तू कैसे जानता है कि उसे कफन न मिलेगा ? तू मुझे ऐसा गधा समझता है ! साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ ? उसको कफन मिलेगा और इससे बहुत अच्छा मिलेगा।

माधव को विश्वास न आया। बोला—'कौन देगा ? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में तो सेंदूर मैंने डाला था।

घीसू गर्म होकर बोला—मैं कहता हूँ उसे कफन मिलेगा, तू मानता क्यों नहीं ?

'कौन देगा, बताते क्यों नहीं ?

वही लोग देंगे जिन्होंने कि अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आयेंगे।

ज्यों ज्यों अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधायें यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मज़े ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं। पूरी बोतल बीच में है।

भर पेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और 'देने' के गौरव आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा—'ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे। जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं।'

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा—'वह बैकुण्ठ में जायगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।'

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला—'हाँ बेटा बैकुण्ठ में जायगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिन्दगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुण्ठ में जायगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे जो गरीबों को दोनों हाथ से लूटते हैं और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं।

श्रद्धालुता का यह रंग तुरंत ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दुःख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला—'मगर दादा, बेचारी ने जिन्दगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी।'

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा, चीखें मार-मार कर।

घीसू ने समझाया—'क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई। जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी जो इतनी जल्दी माया-मोह के बंधन तोड़ दिये।'

और दोनों खड़े होकर गाने लगे—

ठगिनी क्यों नैना झमकावे ! ठगिनी०।

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में

मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी, गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये अभिनय भी किये। और आखिर नशे से बदमस्त होकर वहीं गिर भी पड़े।'

—कफन प्रेमचन्द

स्मरण रहे कथानक का अंत करते समय यह भी आवश्यक है कि स्वप्न में भी न सोची जाने वाली बात अकस्मात् सामने रखकर कुतूहलता पैदा की जाए तथा पाठक चाहे कुछ और ही सोच रहा हो लेकिन कुशल कहानीकार वही मनोहरता से सामने एक ऐसी बात रख दे कि आश्चर्य एवं कौतूहल से पाठक का चित्त फड़क उठे। अंग्रेजी कहानीकारों में भी दूसरी की कहानियों का अंत इसी प्रकार हुआ है। कोनन डायल ने भी एक छोटी सी कहानी How it happened (यह कैसे हुआ ?) लिखी है जिसमें कि मोटर टूटने की घटना एक मीडियम द्वारा कहलाई गई है। देखिए –

Going at fifty miles on hour my right front wheel struck full on right hand pillar of my own gate I heard the crash I was conscious of flying through the air and then—and then—!

When I became aware of my own existence once more I was among some brush wood in the shadow of the oaks upon the lodge side of the drive A man was standing beside me I imagined at first that it was Perkins but when I looked again I saw that it was stanely a man whom I had known at college some years before and for whom I had a really genuine affection ......

"No pain of Course ?" said he

None said I

There never is said he

And then suddenly a wave of amazement passed over me Stanely ! Why Stanely had surely died of enteric at Bloemfontein in the Bore war! "Stanely! I cried and the words seemed to choke my throat—"Stanely you are dead

He looked at me with the same old gentle wishful smile

So are you , he answered.

स्टेनली द्वारा कहे गए अंतिम वाक्य ने कहानी में इस प्रकार के कौतूहल और आनन्द की सृष्टि की है कि पाठक मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। हिंदी कहानियों में भी इस प्रकार के कई उदाहरण उपलब्ध होते हैं जैसे—

'इसके पूर्व कई बार हाशिम अपनी आँखों से देख चुका था कि जमींदार के हबशी जमादार किस बेरहमी से बंदिश गुलामों पर कोड़े फटकारते हैं। ५-७ कोड़ों की मार से ही आदमी की पीठ का मांस चीथड़े चीथड़े होकर उड़ने लगता है। और उसके बाद ? हाशिम उसके बाद कुछ सोच न सका। केवल दो एक घंटे की समाप्ति पर ही वह स्वयं प्रत्यक्ष कर लेगा कि उसके बाद क्या होता है।

हाशिम सिर झुकाकर यही बातें सोच रहा था कि चपल गुलशान उसके द्वार के सींकचों के पास आकर खड़ा हो गया। हाशिम के चिंतित और उदास चेहरे को देखकर बालक का ध्यान स्वयं उसकी तरफ आकृष्ट हो गया। आहट सुनकर हाशिम ने जो सिर उठाया तो उसकी नजर गुलशान पर पड़ी। आज गुलशान को देखकर सबसे पहले उसके दिल में यही भाव आया—यही है वह चपल बालक, जिसकी एक चीज के कारण आज थोड़ी ही देर में बड़ी निर्दयता से मेरे प्राण ले लिये जायेंगे।

हाशिम अभागा और बूढ़ा हाशिम बच्चों की तरह से फुफकार कर रो उठा।

हाशिम को रोता हुआ देखकर शायद बालक का दिल भी मसोस उठा। उसने बड़ी सहानुभूति के स्वर में पूछा— क्यों रोता क्या हो ? क्या भूख लगी है ?

हाशिम ने कोई जवाब नहीं दिया, केवल उसके रोने का वेग और भी अधिक बढ़ गया। गुलशान के जेब में पिस्ते भरे हुए थे। एक मुट्ठी पिस्ते हाशिम के सामने डालकर बिजली के समान चंचल वह बालक वहाँ से भाग गया।

इसके थोड़ी देर के बाद यम के दूत के समान भयंकर एक हब्शी ने हाशिम की कोठरी का दरवाजा खोलकर कहा—'चलो वक्त हो गया।'

गुलशान के फेंके हुए पिस्ते कोठरी के सींकचों के पास अब भी उसी तरह बिखरे हुए पड़े थे।

उन दिनों गुलामों को इस तरह बड़ी-बड़ी सजायें देने का काम बड़े समारोहों के साथ किया जाता था—जैसे वह भी कोई त्योहार हो। समझा जाता कि इससे अन्य गुलामों के हृदयों पर बड़े उत्तम मनोवैज्ञानिक संस्कार पड़ते हैं। आज भी आफताबयस्थान के सम्पूर्ण गुलाम कोड़े लगाने की टिकटी को घेर कर कतारों में खड़े किये गये थे। टिकटी से कुछ दूरी पर गुलामों की कतारों के बीच में एक ऊँचा चबूतरा था। इस चबूतरे पर कालीन बिछाकर एक शाही ढंग की कुर्सी रक्खी गई थी। इस पर भूमिपति आफताबयस्थान बड़े रोब के साथ बैठा था।

हाशिम को नंगा करके टिकठी में बाँध दिया गया था। पास ही मिट्टी के एक बड़े बर्तन में तेल से भीगे हुए बेंत रक्खे थे। एक बूढ़ा कद्दा हब्शी इन बेंतों की जाँच पड़ताल कर रहा था। सहसा जमींदार का हुक्म हुआ—होशियार।

हब्शी जमादार ने कोड़ा सँभाल लिया और बूढ़ा हाशिम आँखों में आँसू भर कर खुदा की इबादत करने लगा।

जमींदार अगली आज्ञा देने ही वाला था कि बालक गुलरान कहीं से भागा हुआ आ पहुँचा। वह सीधा अपने पिता के पास चला आया। बालक की ओर ध्यान बट जाने के कारण आफताब खान को अगला फरमान देने में कुछ विलम्ब हो गया। कोड़ों का जमादार अभी तक अपना कोड़ा आसमान में ऊंचा किये खड़ा था।

खुदा से इबादत करते हुए भी हाशिम की दृष्टि इस चंचल बालक पर पड़ ही गई। उस बेचारे की आँखों से दो आँसू, उसके सूखे कपोलों को भिगोते हुए नीचे की ओर खिसक गये। हाशिम के हाथ पीछे की ओर बंधे थे। अतः वह इन्हें पोंछ नहीं सका। ठीक इसी समय बालक गुलरान की नजर इस बूढ़े गुलाम पर पड़ी। बालक सहसा मचल पड़ा—'इस आदमी को क्यों बाँधा है ? इसे छोड़ दो। ऊं ! ऊं।

परन्तु यह समय लाड़ प्यार का नहीं था। यह समय था सैकड़ों गुलामों के मालिक आफताबखान के रोष की परीक्षा का। जमींदार ने बालक की परवाह नहीं की। बाँयें हाथ से गुलरान को पकड़कर, दायाँ हाथ ऊँचा उठाकर वह कोड़ा की मार शुरू करने का आदेश देने ही वाला था कि बालक और भी अधिक ऊंचे स्वर में मचल उठा—ऊं ! ऊं ! छोड़ दो नहीं मानता। छोड़ दो। ऊं ! ऊं।'

पिता ने अब भी अपने लाड़ले पुत्र की तरफ ध्यान नहीं दिया। उसने अपना दाँया हाथ उठा ही दिया। अभागे हाशिम की पीठ पर पहला कोड़ा पड़ने ही वाला था कि बालक गुलरान जमीन पर लोट-लोट कर ऊँचे स्वर में रोने लगा—ऊं ! ऊं ! ऊं !

जमींदार का उठा हुआ हाथ स्वयं नीचे झुक गया। उसने कहा—बड़ा ज़िद्दी लड़का है। अगले ही क्षण आफताबखान ने गुलरान को अपनी गोदी में उठा लिया। इसके बाद हाशिम की ओर मुखातिब होकर कहा—तुम्हारे छोटे आका के हुक्म से तुम्हें इस बार माफ़ किया जाता है।

दोनों हब्शी जमादारों ने शीघ्रता से हाशिम को टिकठी से खोल दिया।

बालक गुलरान अपने पिता की गोद से उतर कर भागा हुआ हाशिम के पास पहुँचा। अबोध बालक ने अत्यधिक सरल मुस्कराहट के साथ पूछा—'बुड्ढे ! तूने पिस्ते ला दिये थे या नहीं ?'

—बचपन : चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि प्रारम्भिक कहानियों की अपेक्षा आधुनिक कहानियों के वस्तु-विन्यास में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं और आज की कहानी केवल समस्यायें ही प्रस्तुत करती है तथा उनके समाधान के विषय में वह पाठकों को सोचने के लिये बाध्य करती है। यों तो आज की कहानियों में भी कथानक घटनायें, संघर्ष उसी प्रकार हैं और विकास में औत्सुक्यता तथा तीव्र जिज्ञासा भी विद्यमान है परन्तु उनका स्तर अब पिछली भावुकता से हटकर बौद्धिक हो गया है अतः उनमें कौतूहलता के साथ-साथ स्वाभाविकता और चरम सीमा भी है परन्तु आधुनिक कहानियों की चरम सीमा रस, घटना या संयोग पर अभिव्यक्त नहीं होती कि कोई स्त्री अपने गुमे हुए अलंकार किसी हैट बाक्स से अचानक पा ले अपितु उसमें उस नारी की मनोदशा की चरम सीमा को यह स्वरूप दिया जाता है कि वह अचानक ही अपनी स्मृति में विगत आनन्द और शान्ति को प्राप्त कर लेती है।[1] इस प्रकार आधुनिक कहानियों में मानव संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों की स्वाभाविक अभिव्यंजना की जाती है जिससे कि पाठकों के हृदय में बार बार उनको पढ़ने की इच्छा जाग्रत होती है। इस प्रकार की चरम सीमाओं के कुछ उदाहरण देखिए—

"कभी कभी रात के घोर सन्नाटे में स्वप्नाविष्ट सा मैं कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ सुनने लगता हूँ। कोई खिलखिला हँस रही है। कोई धमकी देकर कह रही है—गा री पसी आर चूड़ियों झनक उठती हैं, घन घुटने लगती है और एक कोमल, अत्यन्त कोमल गायन-स्वर फूट पड़ता है—निंदिया लागी.......... ।

और उसके हाथों में जो छाले पड़ गये हैं, व वहाँ से उठकर मेरे हृदय से आकर चिपक गये हैं।

—निंदिया लागी भगवतीप्रसाद वाजपेयी

और भी—

"नींद नहीं आ रही आर मुँदी आँखों के सामने अभी कुछ दिन पहले की कल्पना दिखाई दे रही—छोटे से बंगले के सामने लान पर दो हल्की आराम कुर्सियाँ और खेलता हुआ क्षीण बालक।..............अब उसके पास है परन्तु दूसरी कुर्सी रखने का अधिकार उसे नहीं है।

और वह शिथिल शरीर, नवप्रसूता एक नवजात शिशु को छाती से लगाए

1 "The Modern story tellers have changed their nature. There is still adventure but it is now an adventure of the mind There is suspense but it is less a nervous suspense than an emotional or intellectual suspense There is a climax, but it is not the climax of a woman who discovers her last jewells in the hat box, but the climax of the woman who discovers her last happiness in a memory

—The Short Story—Seon O Faolain (Page 164)

छिपने के लिए भाग रही है। पीड़ा करनेवाले लोग चिल्ला रहे हैं……यह किसका है? उसे क्या अधिकार है? कौन जिम्मेदार है?

इस बीभत्स कल्पना का उत्तर था—'अपनी अपनी जिम्मेदारी।'

—जिम्मेदारी : यशपाल

और भी—

"एक बवंडर उठा। वे मिल गये—नहीं मिलने के लिये प्रस्तुत हुए।

दिलारा के मुख से मदिरा की तीव्र दुर्गन्ध आ रही थी। मणिधर जब उठा था। उसे प्रतीत होता था कि जैसे किसी हड्डियों के भयंकर ढाँचे ने उसे दबोच लिया है। सहस्रों भयंकर बीमारियों के जंतु उसके शरीर में प्रविष्ट होने के लिए, उसकी ओर बढ़े चले आ रहे हैं।

सहसा मणिधर उसके पाद-प्रहार से छिटक पड़ा। घृणा के उद्रेक में वह बुदबुदाया—क्या इसी को आनन्द कहते हैं?

मूर्छित होती दिलारा ने देखा—मणिधर कपड़े पहन भागा चला जा रहा है।"

—प्रणय पिपासा : अमृतलाल नागर

: ३ :

कहानी में पात्र और चरित्र-चित्रण

जैसा कि Seon O' Faolain का कथन है One of the best
definitions ever given of the technique of fiction is that
action reveals character and that character demonstrates
itself in action and action is only another word for incide-
nts वस्तुतः पात्र कथानक के सजीव संचालक ही हैं तथा उनके द्वारा न केवल
कथावस्तु का आरम्भ, विकास और अन्त होता है अपितु साथ ही हम उनमें कहानी
में आत्मीयता की झलक भी पाते हैं। स्मरण रहे कि पात्रों की अवतारणा में कल्पना
की अपेक्षा कलाकार की अनुभूति ही अधिक सजग रहती है और वे अतीत,
वर्तमान या भविष्य किसी भी युग के क्यों न हों लेकिन उनका सर्वथा सजीव और
स्वाभाविक होना आवश्यक है। चूँकि कहानी अपनी लघुसीमा में बहुसंख्यक पात्रों
के चरित्र को स्पष्ट करने में असमर्थ रहती है अतः उत्कृष्ट कहानियों में कम से कम
पात्र ही रहते हैं और कथानक के प्रारम्भ में वे रहस्य रखते हुए भी अदृश्य, प्रस्तुत
रहते हुए भी अप्रस्तुत प्रतीत होते हैं जिससे कि कहानी में कौतूहल की सृष्टि होती
है जो कि उत्तरोत्तर पाठकों को आनंद प्रदान करती हुई पात्रों की चारित्रिक
विशेषताओं को स्पष्ट कर देती है। पात्र अतीत वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश-
विदेश कहीं के भी क्यों न हों लेकिन उनकी वास्तविकता, और सप्राणता पर किसी भी
भाँति का संदेह न होना चाहिए तथा उनमें व्यक्तित्व भाव, संघर्ष और मानवीय
शाश्वत भावों की शृंखला अवश्य रहनी चाहिए जिससे कि पाठकों के मानस में उनके
लिए स्थान प्राप्त हो सके। कुशल कहानीकार यह जानता है कि एक ही परिस्थिति
और घटना समान श्रेणी के व्यक्तियों के जीवन में भिन्न भिन्न परिवर्तन उपस्थित
कर सकती है और उनकी भावनाओं में ऐसा विशिष्ट अन्तर डाल देती है जिसका
कि सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है अतः वह पात्रों का चयन कर उनके जीवन की गति
देने वाली या उनमें परिवर्तन लाने वाली घटनाओं को ही कलात्मक रूप प्रदान
करता है। कहानियों के पात्र भी लोकोत्तर और सामान्य नामक दो प्रकार के होते हैं
परन्तु चूँकि आधुनिक युग यांत्रिक युग है तथा यथार्थवाद कल्पना और निष्ठा

की अपेक्षा अब हमारी आस्था तर्क, विवेक और विश्लेषण में ही विशेष रूप से रमती है अतः आधुनिक कहानियों में उन सामान्य पात्रों को ही अंकित किया जाता है जो कि मानवीय संघर्षों और युग जीवन के प्रतीक होते हैं। सामान्य पात्र के भी दो प्रकार हैं, जिनमें से प्रथम में तो वे स्वयं ही अपना प्रतिनिधित्व करते हैं और उनका निजी व्यक्तित्व ही प्रधान होता है तथा दूसरे में उनका कोई व्यक्तिगत चरित्र नहीं रहता और वे सर्वथा वर्गों के प्रतिनिधि स्वरूप हो जाते हैं और एक समुदाय विशेष की वस्तु बनकर एक निश्चित परिधि में ही रह जाते हैं। यद्यपि डा० श्रीकृष्णलाल के कथनानुसार "कहानी में उपन्यास की भाँति किसी चरित्र का अनेक कार्यों और प्रसंगों के बीच यथाविधि विस्तृत चित्रण संभव ही नहीं है इसीलिये कहानी का के ग्रंथित् चरित्र चित्रण नहीं हो सकता"[1] तथा डा० देवराज उपाध्याय की दृष्टि में भी "वास्तव में कहानियों का काम चरित्र चित्रण है भी नहीं"[2] परन्तु विचार पूर्वक देखा जाए तो उपन्यास की भाँति कहानियों में भी चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। यह हम स्वीकार करते हैं कि अपनी संक्षिप्त सीमा के कारण कहानी में चारित्रिक विकास का चित्र करने के लिए बहुत ही कम अवसर कहानीकार को मिल पाता है क्योंकि उसमें पात्र की अवस्था रूप रंग आकृति-प्रकृति वेशभूषा और सामाजिक परिस्थिति आदि का विस्तृत विवरण अंकित करने के लिए उसे पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं होता और साथ ही चरित्र-चित्रण की सीमित सम्भावनाओं के फलस्वरूप उसमें चरित्र को स्पष्ट करना सहज सम्भाव्य भी नहीं है लेकिन पात्रों के चरित्र-चित्रण के अभाव में कहानी अधूरी ही समझी जाती है तथा रूप, रंग, स्वास्थ्य आदि गुणों से युक्त मूक व्यक्ति में जिस प्रकार हमें लुभाने की क्षमता नहीं होती उसी प्रकार कहानी में चाहे कितने ही गुणों का समावेश क्यों न हो पर जब तक पात्रों का चरित्र चित्रण नहीं होता कहानी का प्रभाव पाठकों पर स्थायी रूपसे नहीं पड़ता। वस्तुतः चरित्र चित्रण द्वारा ही कहानियों के पात्र अमरत्व प्राप्त करते हैं और आत्मीय से प्रतीत होते हैं अतः श्री मोहनलाल 'जिज्ञासु' का यह विचार कि "कहानी रूपी दर्पण में चरित्र की छवि छाया हमें अमरत्व प्रदान करती है"[3] पूर्णतः उचित है। चूँकि उपन्यासकार की भाँति कहानीकार को पात्रों के चरित्र-चित्रण की पूर्ण सुविधा और स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं रहती अतः कुशल कहानी-लेखक कुछ नियमों का पालन करते हुए ही चरित्रांकन में सफलता प्राप्त कर पाता है। सर्वप्रथम तो कहानी के पात्र विशेष का

---

1 आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्णलाल (पृष्ठ १२८)

2 कहानी में चरित्र चित्रण (निबंध)—डा० देवराज उपाध्याय कहानी मासिक वर्ष १ अंक ? अक्टूबर ५०

3 कहानी और कहानीकार— श्री मोहनलाल जिज्ञासु (पृष्ठ १०)

चरित्र घटनाओं के अनुरूप ही चित्रित होना चाहिए और उसमें जीवन की शक्तियों का विद्यमान रहना अपेक्षित है जिससे कि वह सुख-दुख, हर्ष-विषाद विरह मिलन आदि शाश्वत मनोभावों से होता हुआ एक सफल बिजली की भाँति प्रतीत हो। कहानीकार की वर्णन शैली स्पष्ट हो और उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म वस्तुओं का भी चित्रांकन करने की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि नाटककार तो पात्र का साकार रूप ही हमारे समक्ष प्रस्तुत कर देता है लेकिन कहानी-लेखक तो कल्पना का अवलम्ब लेकर ही उसका चित्र अंकित कर पाता है। अतः कहानीकार को अपने मन की विशेष दशाओं और मानसिक सूक्ष्म भावनाओं से परिचित रहना चाहिए जिससे कि वह अपनी कहानी के पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर सके अन्यथा बिना अपनी हृद्‌गत भावनाओं को जाने वह दूसरे की भावनाओं का चित्रण न कर सकेगा परन्तु साथ ही विलियम थेकरे के शब्दों में 'मेरे पात्र मेरे वश में नहीं रहते वरन् मेरी लेखनी उन पात्रों के वश में हो जाती है' अतः पात्रों के स्वाभाविक और सजीव चित्रण के लिए कहानीकार को सर्वदा ही अपना व्यक्तित्व अपने पात्रों पर आरोपित भी न करना चाहिए और इस प्रकार उसको अपने निजी व्यक्तित्व के साथ साथ अन्य व्यक्तियों के स्वभाव, आचरण और व्यवहार आदि का भी सूक्ष्म पर्यवेक्षण करना चाहिए तथा उसके लिए विश्व की अन्य सभी वस्तुओं का भी अनुशीलन आवश्यक है क्योंकि इस प्रकार के अध्ययन द्वारा वह कुछ ऐसे उपयोगी तत्वों को भी प्राप्त कर लेगा जो कि पात्र के चरित्र को चित्रित करते समय उपयोगी सिद्ध होंगे। स्मरण रहे कि कभी-कभी ऐसे पात्र भी कहानी में चित्रित होते हैं जिनकी कि दिनचर्या हम प्रतिदिन देखा करते हैं और इस प्रकार सफलता पूर्वक चरित्र-चित्रण के लिए लेखक को मनोविज्ञान का अध्ययन होना भी आवश्यक कहा जाता है। संक्षेप में कुशल कहानीकार चरित्र चित्रण में सुघरता और सजीवता लाने के लिए किसी चरित्र की कल्पना कर इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाओं का चयन करता है जो कि उस पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कर सकें और इसी प्रसंग में वह सहायक प्रतीत होने वाली पात्र की आयु, सुन्दरता, मुखाकृति, पैतृक संस्कार, परंपरागत रूढ़ियों के प्रति उसकी विचारधारा, दिनचर्या कार्य, जीवन की घटनाएं आदि बातों का विवरण भी दे देता है परन्तु उसे इस बात पर भी ध्यान देना पड़ता है कि कोई भी घटना या वर्णन पात्र-विशेष के चारित्रिक विकास में कहाँ तक सिद्ध होता है। आधुनिक हिंदी कहानियों में तो पात्र विशेष के सजीव एवं मर्मस्पर्शी चरित्र चित्रण के उदाहरण प्रचुरता के साथ उपलब्ध होते हैं।[1] यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए

१ देखिए—

"उर्मिला उसकी पत्नी का नाम था। वह अनुपम सुन्दरी थी कल्पना में बनी हुई कोमलता की प्रतिमा और मीठे भावुक स्वर की मूरत में विधि ने उसे जादू दे डाला था।

कि कहानीकार द्वारा पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए वर्णन, संकेत, कथोपकथन तथा घटनाएं नामक चार साधनों का उपयोग किया जाता है और इनके उदाहरण हिंदी कथा साहित्य में बहुत अधिक संख्या में दृष्टिगोचर होते हैं अतः यहाँ चरित्र-चित्रण की इन विभिन्न प्रणालियों के उदाहरण देना भी आवश्यक है।

वर्णन द्वारा पात्र विशेष का चरित्र चित्रण करना कहानीकार के लिए अत्यधिक सरल कार्य है क्योंकि इस प्रणाली द्वारा जो चरित्र चित्रण किया जाता है वह प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक कहलाता है और चूँकि लेखक स्वयं ही विश्लेषणात्मक ढंग से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है अतः उसे इस बात की पूर्ण सुविधा रहती है कि वह अपने पात्रों के सम्बन्ध में जो कुछ चाहे लिख दे। हिंदी कथा साहित्य में इसी प्रकार के चरित्र चित्रण की संख्या अधिक है। देखिए—

"पेंदों ग्राम में महादेव सुनार एक सुविख्यात आदमी था। अपने सायबान में प्रातः से संध्या तक अंगीठी के पास बैठा हुआ खटपट किया करता था। यह लगातार ध्वनि सुनने के लिए लोग इतने अभ्यस्त हो गए थे कि जब किसी

संगीत कला में उसने विशेष दक्षता प्राप्त कर ली थी और वह मंजुष्य सोने में सुहागा का काम कर रहा था। जब कभी वह अपनी कोमल अंगुलियों को सितार के परदों पर रखती और तान उमेठकर तारों को छोड़ती तो सोये हुए उद्गार जाग उठते और कानों के रास्ते मिठास और मस्ती का एक मधुर गुंजनवाद की नस नस में व्याप्त होकर रह जाता।

—नारी उपेन्द्रनाथ अश्क

और भी—

"मारे, चिट्ठे मजबूत काठी मंझोला कद चेहरे पर मुस्कुराहट का नूर, माथे पर केसरिया चन्दन का रुपये के बराबर गोल सा टीका मुँह में पान रचा हुआ कूँचे पर गुलाबी साफा निहायत बारीक जाली की धोती और कुरता कंधों पर सुनहरी डोरी का पटका कलाई पर बत्तीसती सुनहरी घड़ी जेब में पार्कर ५१ का सुनहरा पेन पैर में सुनहरे काम के चप्पल दाहिने हाथ की अनामिका में एक बड़ा सा नीलम जो उन्हें रास आ गया था यही पंडित मुकुटधर त्रिपाठी थे।"

गंगा मास्सी गंगा जन्म अमृतराय

और भी

बरना मेरा हलवाहा है। नाटकीन-सा कामा-कमरा भारी भरकम दोहरा बदन हाथी की आँखों का मान करने वाली विधाता की कंजूसी की गवाह तनिक-तनिक भर की आँखें खरगोश के कानों-जैसे खड़े सुर्ख हुए कान तथा मानव जाति की मानवता का मान देने वाली मला बहार अनगिनत मासों की कमजोरी-हाथ पैर के तलवों को छोड़ शरीर का कोई भाग ऐसा नहीं जहाँ दुहरे तिहरे गुच्छे के गुच्छे रोयें न उगे हों, यही है बरना चौधरी की दुनिया। जाति का जाटो है। उमर पचास के लगभग।

—बिरन की माँ मार्कण्डेय मिश्र

कारण से यह बंद हो जाती तो जान पड़ता था कोई चीज गायब हो गई है। वह नित्य प्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजड़ा लिए कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। इस धुंधले प्रकाश में उसका जर्जर शरीर पोपला मुँह, और झुकी हुई कमर देखकर किसी भी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्यों ही लोगों के कानों में आवाज आती—'सत्त गुरुदत्त शिव दत्त दाता' लोग समझ जाते कि भोर हो गया।"

—आत्माराम प्रेमचंद

और भी—

'प्रोफेसर ज्योतिरिन्द्र वसु एकाकी जीव थे। जिस प्रकार किसी विशाल पर्वत को किसी एक ओर, देखकर उसके सम्पूर्ण रूप का अंदाज लगाना कठिन है उसी प्रकार उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की जानकारी भी कठिन थी। अपने बारे में वे कभी किसी से कुछ कहते ही न थे। विवाह उन्होंने क्यों नहीं किया और विश्व विद्यालय से मिलने वाला सारा वेतन निर्धन छात्र-छात्राओं में बाँटकर वे अपनी गुजर बसर कैसे करते थे उस बारे में लाख पूँछने पर भी उन्होंने कभी कुछ नहीं बताया। पर नीरस वे बिलकुल नहीं थे और जरा सा इनके हृदय में प्रवेश पा जाने पर तो न सिर्फ ज्ञान का अपूर्व खजाना ही हाथ लग जाता था बल्कि एक ऐसे उज्ज्वल व्यक्तित्व के दर्शन भी होते थे जो आज के मानव-समाज में दुर्लभ ही समझिए। उनके व्यक्तित्व के पारस स्पर्श से न जाने कितने व्यक्ति सुवर्ण बन चुके थे।'

—कभी के आँसू मोहनसिंह सेंगर

वस्तुत वर्णनात्मक प्रणाली की अपेक्षा संकेतात्मक प्रणाली को ही चरित्र-चित्रण के लिए अधिक उपयुक्त और कलात्मक समझा जाता है क्योंकि इसमें लेखक अन्य चित्रों का अवलम्ब लेते हुए पात्रों के मनोभावों पर सफलता के साथ प्रकाश डालता है। संकेतात्मक चरित्र-चित्रण में लेखक पात्रों के चरित्र-चित्रण के विषय में अपनी ओर से कुछ न कहकर सम्पूर्ण परिणाम से अवगत होने का उत्तरदायित्व पाठकों पर ही रहने देता है तथा स्वयं तो वह पात्रों की केवल चारित्रिक वृत्तियों का ही चित्रण करता है। संकेतात्मक प्रणाली को न केवल वर्तमान युग के हिंदी कहानीकारों ने अपनाया है अपितु प्रेमचंद और प्रसाद की कहानियों में भी इसके सुन्दर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं। देखिए—

"समीप ही सफेद चट्टानों पर जलधारा के लहरीले प्रवाह में कितना संगीत था। चाँदनी में यह कितना सुन्दर हो जाता। जैसे इस पृथ्वी का छाया पथ। मेरी उस झोपड़ी से उसका सब रूप दिखाई पड़ता था न। मैं उसे देखकर संतोष का जीवन बिताने लगा। वह मेरे जीवन के सब रहस्यों की प्रतिमा थी। कभी उसे मैं आँसू की धारा समझता, जिस निराशा प्रेमी अपने अपने आराध्य की कठोरता पर

स्पर्श हुआ करता हो, कभी उसे अपने जीवन की तरह निर्मम संसार की कठोरता पर छटपटाते हुए देखता। दूसरे का दुख देखकर मनुष्य को संतोष होता ही है।"

—चित्रवाले पत्थर प्रसाद

और भी—

"बीस बाइस वर्ष की अवस्था में मनुष्य की आकांक्षाएँ स्वप्न लेती हैं उनको परिचरिया मिले तो वह पनपें नहीं तो सूखकर मुरझा जाती हैं और यौवन बीतते बीतते आदमी अपने को चुका हुआ अनुभव करता है। ये आकांक्षाएँ स्नेह माँगती हैं। स्नेह अनुकूल समय पर और यथानुपात मिले तो हरी भरी होकर कैसे कैसे फूल न खिल जाएँ कहा नहीं जा सकता नहीं तो अपने को खाती चुकती हैं। मूल जिनके दृढ़ हों ऐसी प्रकृतियाँ विरोध में से इसे भी खींचती हैं, अवश्य और वे मानो चुनौतीपूर्वक बढ़ती रहती हैं पर इस शक्ति को प्रतिभा कहा जाता है, और प्रतिभा सरल नहीं है, वह तो विरल ही है। कहना कठिन है कि राजीव में प्रतिभा की शक्ति कितनी थी किन्तु जब इसमें अतीव भूख थी कि कोई उसे पूछे तब वह अकेला अपने को पाता था।"

—राजीव और भाभी जैनेन्द्रकुमार

विचारकों ने चरित्र चित्रण के लिए कथोपकथन प्रणाली को सबसे उत्कृष्ट माना है क्योंकि इसमें लेखक सर्वथा परोक्ष रहकर वार्तालाप द्वारा किसी पात्र विशेष का चरित्र अंकित करता है। कथोपकथन प्रणाली में पात्र न केवल एक दूसरे के चरित्र को स्पष्ट करते हैं अपितु वे अपनी कथन शैली, भाव भंगी और भाषा द्वारा अपने चरित्र की व्याख्या भी कर देते हैं। इस प्रणाली में लेखक को अपनी ओर से कुछ कहने की तनिक भी आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि पात्रों द्वारा स्वयं ही एक दूसरे का वर्णन स्पष्ट हो जाता है और कथोपकथन द्वारा मानव-जीवन तथा उसके मनोभावों की अभिव्यक्ति भी सुन्दरता और सरलता के साथ की जा सकती है। साथ ही पात्रों को न केवल अपने चरित्र-विश्लेषण की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है अपितु दूसरे पात्रों के प्रति सांकेतिक शब्द कहकर उनकी व्याख्या करने का अवसर भी मिलता है। परन्तु कथोपकथनात्मक प्रणाली में इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि संवाद लम्बे व्यर्थ, निर्जीव शुष्क और बोझिल न हों। चूँकि कहानी का आकार छोटा होता है अतः वार्तालाप भी संक्षिप्त ही होने चाहिए और चरित्रों के प्रति केवल मात्र संकेत ही रहने चाहिए, तथा कहानी की घटना को बढ़ाने के लिए भी संवादों का प्रयोग अनुपयुक्त है क्योंकि इस प्रकार कहानी की रोचकता मिट सी जाती है। हिंदी में इस प्रकार की कहानियों की संख्या सीमित ही है जिनमें कि कथोपकथनात्मक प्रणाली को ग्रहण कर पात्रों का चरित्र-विश्लेषण सरलता के साथ किया गया हो। आशा है हमारी नई पीढ़ी के कहानीकार इस प्रणाली को सरलता के साथ अपनाएँगे। कथोपकथनात्मक प्रणाली के कुछ सुन्दर उदाहरण देखिए—

"मैकू ने बाहर आकर देखा कि मूरे और गोली में लड़ाई हो रही थी। मैकू के कर्कश स्वर से दोनों भयभीत हो गये। गोली ने कहा– 'मैं बैठा था, मूरे ने मुझको गालियाँ दीं। फिर भी मैं न बोला इस पर उसने मुझे पैर से ठोकर लगा दी।'

'और समझता है कि मेरी बाँसुरी के बिना बैला गा ही नहीं सकती। मुझसे कहने लगा कि आज तुम ढोलक बेताल बजा रहे थे।' मूरे का कंठ क्रोध से भर्राया हुआ विकृत था।

मैकू हँस पड़ा। वह जानता था कि गोली युवक होने पर भी सुकुमार और अपने प्रेम की माधुरी में विह्वल, लजीला और निरीह था। अपने को प्रमाणित करने की चेष्टा उसमें थी ही नहीं। वह आज जो कुछ उग्र हो गया, इसका कारण है केवल मूरे की प्रतिद्वन्द्विता।

बैला भी वहीं आ गई थी। उसने घृणा से मूरे की ओर देखकर कहा 'तो क्या तुम सचमुच बेताल नहीं बजा रहे थे।

'मैं बेताल न बजाऊँगा तो दूसरा कौन बजायेगा। अब तो तुमको नये यार न मिले हैं। बैला ! तुमको मालूम नहीं कि तेरा बाप मुझसे तेरा ब्याह ठीक करके मरा है। इसी बात पर मैंने उसे अपना नेपाली का दोगला टट्टू दे दिया था जिस पर अब भी तू चढ़कर चलती है। मूरे का मुँह क्रोध के झाग से भर गया था। वह और भी कुछ बकता किन्तु मैकू की डाँट पड़ी। सब चुप हो गये।'

—इन्द्रजाल प्रसाद

उपयुक्त अवतरण में कथोपकथन द्वारा चरित्र चित्रण का प्रयास किया गया है और इसमें कोई संदेह नहीं कि कहानीकार को पात्रों के चरित्र-चित्रण में वार्तालाप से सहायता भी मिली है परन्तु इससे भी सुन्दर उदाहरण निम्नांकित है जिसमें कि संवादों द्वारा लेखक ने अन्तद्वन्द्व एवं मानसिक उत्कर्ष का सजीव चित्रण किया है। देखिए—

"घर में आते ही शारदा ने पूछा—'किसलिए बुलाया था बड़ी देर हो गई। फतहचंद ने चारपाई पर लेटते हुए कहा—'नशे की सनक थी और क्या ? शैतान ने मुझे गालियाँ दीं, जलील किया बस यही रट लगाये हुए था कि देर क्यों की। निर्दयी ने चपरासी से मेरा कान पकड़ने को कहा।

शारदा ने गुस्से में आकर कहा—'तुमने एक जूता उतारकर दिया नहीं सुअर को ?

फतहचंद—'चपरासी बहुत शरीफ है। उसनेसाफ कह दिया –'हुजूर मुझसे यह काम न होगा। मैंने भले आदमियों की इज्जत उतारने के लिए नौकरी नहीं की थी। वह उसी वक्त सलाम करके चला गया।'

शारदा—'यह बहादुरी है। तुमने उस साहब को क्यों नहीं फटकारा ?

फतहचंद—'फटकारा क्यों नहीं—मैंने भी खूब सुनाईं। वह छड़ी लेकर दौड़ा मैंने भी जूता सँभाला। उसने मुझे कई छड़ियाँ जमाईं—मैंने भी कई जूते लगाए।'

शारदा ने खुश होकर कहा—'सच? इतना सा मुँह हो गया होगा उसका।'

फतहचंद—'चेहरे पर झाड़ू सी फिरी हुई थी।'

शारदा—'बड़ा अच्छा किया तुमने, और मारना चाहिये था। मैं होती, तो बिना जान लिए न छोड़ती।'

फतहचंद—'मार तो आया हूँ लेकिन अब खैरियत नहीं है। देखो क्या नतीजा होता है। नौकरी तो जायगी ही, शायद सजा भी काटनी पड़े।'

शारदा—'सजा क्यों काटनी पड़ेगी। क्या कोई इंसाफ करने वाला नहीं है? उसने क्यों छड़ी जमाई?'

फतहचंद—'उसके सामने मेरी कौन सुनेगा। अदालत भी उसी की तरफ हो जायगी।'

शारदा—'हो जायगी, हो जाय, मगर देख लेना अब किसी साहब की यह हिम्मत न होगी कि किसी बाबू को गालियाँ दे बैठे। तुम्हें चाहिये था, कि ज्योंही मुँह से गालियाँ निकलीं, लपककर एक जूता रसीद करते।'"

—इस्तीफा प्रेमचंद

और भी—

'किसी तरह दिन कट रहे थे।

रात्रि का समय था। थिरकती सी गई थी, सरला बैठी थी।

'देखता हूँ इस नौकरी का भी कोई ठिकाना नहीं है।'—गंभीर आकृति बना हुए विजयकृष्ण ने कहा।

'क्यों! क्या कोई नई बात है?'—सरलावती ने अपनी सुघड़ आँखें उठाकर एक बार विजय की ओर देखते हुए पूछा।

'बड़ा साहब मुझसे अप्रसन्न रहता है। मेरे प्रति उसकी आँखें सदैव तनी हैं।'

'किसलिये?'

'वो समझा है मेरी निर्धनता ही इसका कारण था।

सरला चुप थी।

'पन्द्रह रुपये मासिक पर दिन भर परिश्रम करना पड़ता है। इतने पर भी—'

'ओह बड़ा भयानक समय आ गया है।'—सरलावती ने दुःख की एक साँस खींचते हुए कहा।

'मकानवाले का दो मास का किराया बाकी है इस बार वह नहीं मानेगा। इस बार न मिलने से वह बड़ी आफत मचायेगा।'—सरला ने भयभीत होकर कहा।

क्या करूँ ? जान देकर भी इस जीवन से छुटकारा होता ...।'
'ऐसा सोचना व्यर्थ है। घबड़ाने से क्या लाभ ? कभी दिन फिरेंगे ही।"

– विधाता विनोदशंकर व्यास

कहानी का कथानक किसी भी प्रकार का क्यों न हो लेकिन उसमें कोई न कोई घटना अवश्य ही रहती है और इस प्रकार एक मुख्य घटना तथा शेष सहायक घटनाओं को लेकर ही कहानीकार अपनी कथा का निर्माण करता है। स्मरण रहे सहायक घटनाएं सामान्यतः छोटी ही होती हैं और वे मुख्य घटना के लिए पूरक रूप में कार्य करती हैं अतः उनका उस प्रमुख घटना के साथ पूर्ण सामंजस्य आवश्यक है और इन्हीं छोटी छोटी घटनाओं द्वारा ही चरित्र-चित्रण भी होता है। इस प्रकार घटनाओं द्वारा किसी पात्र विशेष का चरित्र अंकित करते समय कुशल कहानीकार इस बात पर पूर्ण ध्यान देता है कि ऐसी घटनाएँ छोटी हों तथा कहानी के मुख्य उद्देश्य से वे सम्बद्ध भी हों। घटनात्मक चरित्र-चित्रण के उदाहरण देखिए—

"धीरे धीरे दरी पर पाँव रखता हुआ चंदन बढ़ा और जाकर दरवाज़े के साथ पंजों के बल खड़ा हो गया। अन्दर छत में लाल रंग का बल्ब जल रहा था। उसके धीमे प्रकाश में वह आँखें फाड़ फाड़कर देखने लगा किन्तु दूसरे ही क्षण वापस मुड़ा। उसका शरीर गर्म होने लगा था, अंगों में तनाव आ गया था कंठ और ओंठ सूखने लगे थे और उसकी नसों में जैसे खून उबलने लगा था। उसी तरह पंजों के बल भागता वह बाहर आया। धीरे से उसने दरवाज़ा लगाया और बाहर चाँदनी में आ खड़ा हुआ। सामने यूकलिप्टस का तना खड़ा था। उसके जी में आया कि अपने मुक्के की एक चोट से वह उस तने को गिरा दे।"

—उबाल उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

और भी—

इस उल्लासित आमोद के बीचों बीच एक मुरझाया हुआ पुष्प, कुचली हुई पान की गिलौरी—वही बालिका—बहुमूल्य हीरे खचित वस्त्र पहने बादशाह के बिलकुल अंक में लगभग मूर्छित और अस्तव्यस्त पड़ी थी। रह रहकर शराब की प्याली उसके मुँह से लग रही थी और वह खाली कर रही थी। एक निर्जीव गुलाम की तरह बादशाह उसे अपने बदन से सटाये मानों अपनी तमाम इन्द्रियों को एक ही रस में सराबोर कर रहे थे। गंभीर आधी रात बीत रही थी। सहसा इसी आनन्द वर्षा में बिजली गिरी। कक्ष के उसी गुप्तद्वार को विदीर्ण करके क्षण भर में वही रूपा काले आभूषण से नख शिख तक बाहर निकल आई। दूसरे क्षण एक और मूर्ति वैसे ही आवेष्टन में गुप्तद्वार से बाहर निकली। क्षण भर के बाद दोनों ने अपने आवेष्टन उतार फेंके। वही अग्निशिखा अम्लान रूपा और उसके साथ गौरांग युवक।"

—पानवाली चतुरसेन शास्त्री

सुन्दर सुपर शब्दावली भी कभी-कभी चरित्र-चित्रण में अत्यन्त सहायक होती है और कहानीकार पात्र विशेष की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख करते समय प्रसिद्ध चरित्रों, रूपकों या उपमाओं का भी अवलम्ब ग्रहण करता है जिसके फलस्वरूप कभी-कभी एक ही वाक्य में पात्र का सम्पूर्ण चरित्र हमारे लोचनों के सामने खिच सा जाता है और उसमें काव्यात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है तथा सर्वसाधारण के लिए वह कभी कभी बुद्धि-गम्य भी नहीं रह पाता।[1] इतना ही नहीं कुछ कहानीकारों ने पात्रों के चरित्र चित्रण में स्वाभाविकता लाने के उद्देश्य से स्थान-विशेष के शब्दों का निस्संकोच प्रयोग किया है और इस प्रकार उनकी कहानियों में बहुत से अप्रचलित शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु विचारकों द्वारा पात्रों की मातृभाषा का प्रयोग उचित नहीं माना जाता क्योंकि इस प्रकार यदि किसी कहानी का कोई पात्र बंगाली, मद्रासी गुजराती या फिर विदेशी हुआ तो उसके सम्बन्धित वार्तालाप में उसकी मातृभाषा का ही प्रयोग होगा और कहानी-कला में अस्वाभाविकता ही दृष्टिगोचर होगी। आधुनिक कहानी-कला में कहानीकारों ने पात्रों में व्यक्तित्व प्रतिष्ठा के हेतु चरित्र-विश्लेषण की पद्धति भी अपनाई है जिसके फलस्वरूप न केवल पात्र का निश्चित व्यक्तित्व पाठकों को प्रतीत होता है अपितु चरित्र-चित्रण में पूर्ण सजीवता वास्तविकता और अमरता आ जाती है।

---

१ कुछ उदाहरण देखिए –

'जो हवा दिन के अन्त रहने की वजह है वह दिन को पूजा भी देती है। आशा के सस्नेह अनछुए प्राणों के पावन प्रदीप को पति की जिस निश्चल समीर ने मास भर जला रखा था, वह मास भर के उसे बुझाकर, उसकी पृथ्वी से दूर, अन्तरिक्ष की ओर तिरोहित हो गई है। मास ही भर में सुहाग का कानन उस शीत प्रवाह के ऊपर पतझार आँखों में प्रिय दर्शन के अंजन रूप नहीं रह गया। आशा आज फूल की तरह अपनी सारी रंगीनियों को खोकर शुभ्र हो रही है—श्वेत वैराग्य की रंग प्रभात के रश्मिमान मार्ग में कुसुम—उसे केवल देवार्चन के लिए चुनी हुई। पर प्राणों के बीच स्वप्न में जो रंग लगा हुआ है वह राग का नहीं—मान का है।"

— कमला : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

और भी—

[illegible] में प्रवेश किया। शीश की [illegible] हुई [illegible] पर [illegible] से रखा हुआ उष्णीष भूमि तक झूमता हुआ झीना रेशमी उत्तरीय [illegible] हुआ पीत [illegible] और [illegible] में बँधा हुआ [illegible] । आम की फाँक की भाँति [illegible], विशाल [illegible] नयन और [illegible] की [illegible] नाक।"

—[illegible] : [illegible] 'भारती'

इस पद्धति द्वारा कहानी-लेखकों को मानव-मस्तिष्क के समस्त संघर्षों, मरनों एवम् निर्बलताओं का पूर्ण चित्रण करने में सफलता प्राप्त होती है। स्मरण रहे चरित्र-चित्रण की इस पद्धति के निरपेक्ष विश्लेषण, आत्म-विश्लेषण और मानसिक ऊहापोह द्वारा विश्लेषण नामक तीन प्रकार होते हैं।

चरित्र-विश्लेषण की निरपेक्ष विश्लेषण वाली पद्धति में अन्य पुरुष का चरित्र विश्लेषण किया जाता है अर्थात् कहानी का एक पात्र दूसरे व्यक्ति की चारित्रिक विशिष्टताओं पर प्रकाश डालता है या फिर स्वयं ही कहानीकार पात्र विशेष का चरित्र-विश्लेषण परोक्ष रूप में करता है। देखिए—

"चिन्तन से उसे पीड़ा होती थी, किन्तु पीड़ा उसे चिन्तन का आधार देती थी और इसीलिए वह पागल नहीं हुआ, इसीलिए जब तूफान आकर उसे अशान्त करके चला जाता था तब वह उन्मद दानव की भाँति उस छोटी सी कोठरी में टहलने लगता था। एक सिरे से दूसरे तक, एक, दो, तीन चार, पाँच, कदम फिर वापस, एक, दो तीन, चार, पाँच फिर लौटकर एक, दो, तीन और इसी तरह वह सारी रात बिताता तब उसकी टाँगें थक जातीं, वह एकाएक भूमि पर बैठ जाता और चुपचाप मन ही मन रोने या कविता करने लगता। उसका एक शब्द भी बाहर नहीं निकलता एक छाया भी उसके मुख पर व्यक्त नहीं होती। वह मानों किसी अदृश्य समुद्र के भांटे की भाँति धीरे धीरे उतर जाती और निश्चल हो जाती उस समय तक जब तक कि दूसरा तूफान पुन उसे न उठाये।"

—कोठरी की बात अज्ञेय

और भी—

"अपने शरीर के अंग अंग पर उसे मोह होता चला गया। जैसा भी उसका शरीर था, उसको ठीक चलाने का सवाल उसी को हल करना चाहिए। शरीर के अंग अंग में प्रबल आग लगती जा रही थी। कभी वह अपने हाथ की उँगलियाँ खुद ही मसलने लगती, कभी उस नारी अंग से उत्तेजित हो वह अपने सारे शरीर को भस्म करना चाहती। शरीर की वह भूख उठती जाती थी। वह विफर पलकर सारे शरीर को भी डकती जा रही थी। वह कुछ भी सोच नहीं सकती थी। आधी रात तक उसे नींद नहीं आती।"

—रैनबसेरा पहाड़ी

आत्म-विश्लेषण वाली पद्धति में पात्र स्वयं ही अपनी मानसिक भावनाओं को अंकित करता है अतः उसमें आत्मकथात्मक प्रणाली में अपना ही विश्लेषण किया जाता है। देखिए—

"मैं उन आदमियों में से हूँ जो सब समय केवल अपने ही अंतर की भावनाओं का लिए रहते हैं ठीक उसी तरह, जिस प्रकार माता गांधारी अपने नेत्रजात

शिशु को हर घड़ी छाती से जकड़े रहती है। बाहरी परिस्थितियों का प्रभाव ऐसे ख्याली आदमी पर बहुत कम पड़ता है, बाहरी परिस्थितियों को वह अपनी सुदृढ़, सुस्थिर निश्चित भावनाओं से पूर्ण भावुकता का रंग देता है न कि उनसे कुछ लेने की चेष्टा करता है। मैं इसी प्रकृति का आदमी हूँ। अर्थात् मैं आधुनिक मनोवैज्ञानिक की भाषा में 'इंट्रोवर्ट' हूँ। पर दूसरे 'इंट्रोवर्टों' से मुझमें एक विशेषता है। वह यह कि मैं इस अंतर्मुखी मनोवृत्ति की चरमसीमा तक पहुँच जाने के कारण ऐसा घोर स्वार्थी बन गया हूँ कि चौबीसों घंटे सोते, जागते अथवा स्वप्नावस्था में जानकर या अनजान में केवल एक ही बात की चिन्ता में मग्न रहता हूँ—वह है मेरा अपनापन।"

—मैं : इलाचन्द्र जोशी

चूँकि नारी और पुरुष दोनों की मनोभावनायें एक दूसरे से काफी पृथक् होती हैं अतः उनके आत्म विश्लेषण में भी विभिन्नता भी रहती है। स्मरण रहे कि पारस्परिक विरोधी तत्त्व ही नारी और पुरुष के पारस्परिक आकर्षण की वृद्धि करते हैं तथा विभिन्न सामाजिक बंधन और मर्यादायें भी उन्हें एक दूसरे से पृथक् रखकर उन्हें एक दूसरे की ओर और भी अधिक आकर्षित कर देते हैं। पुरुषवेश में यदि कोई नारी रात्रि के सुनसान वातावरण में किसी पुरुष के साथ जो कि उसे पुरुष समझता हो लेटी हो तो उस समय उसके मानस की क्या दशा होगी इसका बड़ा ही सुन्दर कलापूर्ण चित्रण निम्नांकित अवतरण में किया गया है। देखिए—

'चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। कमरे का क्षीण प्रकाश घुटघुटा कर घुल गया। अंधकार की दीवार हम दोनों के बीच आ गई। लगा कि जैसे सब कुछ खो-गया है और अपने जीवन से भी उसमें मैं बेगाना हो गई हूँ। एक बार जी में आया कि उठ खड़ी होऊँ, लेकिन फिर तुरन्त ही इस प्रयत्न की व्यर्थता सामने आ गई और मैं पुरुष अंगों का ढाँचा ओढ़कर लेट रही।

सोची लेटी मैं कुछ सोचना चाहती थी लेकिन कुछ भी सोच न पाती थी। इधर उधर घूमघाम कर यही सत्य सामने आ खड़ा होता था कि पुरुष रूप में मैं एक ही बिस्तरे पर लेटी हूँ। इस ख्याल ने मुझे इतना घेर लिया था कि आशंकित हो उठी, हृदय उसमें मचल उठा एक बार जगाकर उसे दिखाने के लिए कि मैं पुरुष नहीं नारी हूँ। मेरा हाथ अनायास ही आगे बढ़ा भी, लेकिन कपड़ों में उलझकर रह गया ...... ।"

—पश्चिम प्रदेश : नरोत्तमप्रसाद नागर

जैसा कि एक विचारक ने लिखा है "परिस्थिति विशेष में पड़कर व्यक्ति की बड़ी विचित्र दशा हो जाती है। उसके अनुभावों का चित्रण उसके मन की स्थिति स्पष्ट कर सकता है। यहीं से द्वन्द्व की सृष्टि हो जाती है। मानव-मन के उद्घाटन

में कलात्मकता तभी आती है जब वह द्वन्द्व एवं संघर्ष में पड़ा हो। यदि ऐसा न हुआ हो तो वह फीका रह जाता है। किसी भिखारी को देखकर मन में करुण भावना जागृत हो ही उठती है। गरीब होते हुए भी यदि संभव हुआ हो तो उसे कुछ न कुछ भीख दे दी जाती है। इसके चित्रण में कोई कला नहीं। किन्तु जब मनुष्य अन्तर्द्वन्द्वों में झकझोर उठता है तब उसके चित्रण में कलात्मकता है।"[1] वस्तुतः इस प्रकार कहानियों में मानसिक ऊहापोह द्वारा चरित्र-विश्लेषण की पद्धति का विशेष कलापूर्ण समझा जाता है क्योंकि इसमें कहानीकार मानव मस्तिष्क के समस्त संघर्षों का विश्लेषण चिन्तन और मनन द्वारा करता है। कुछ समीक्षकों का यह भी कहना है कि पर्याप्त सतर्कता के अभाव में कभी-कभी कहानी में चरित्र चित्रण की अपेक्षा बौद्धिक विवेचन ही दृष्टिगोचर होता है लेकिन हमारी दृष्टि में यह मत युक्तसंगत नहीं है और अधिकांश विचारकों ने मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य निरूपण की महत्ता प्रतिपादित करते हुए यही आकांक्षा व्यक्त की है कि प्रत्येक पाठक यही चाहता है कि वह रचयिता की सृष्टि के भीतर आए हुए मानव के मनोलोक में प्रवेश कर उनके स्थूल तथा भौतिक संसार के मूल में निवास करने वाली मूल भावनाओं और विचारों का आलोडन करे।[2] इस प्रकार डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के शब्दों में आज के बौद्धिक युग का पाठक विशेष प्रकार के चारित्र्य से भरे व्यक्तित्व का स्वरूप समझना चाहता है। अंतर्जगत में भावों और विचारों के उदय, विकास और संघर्ष की कहानी सुनने में उसे विशेष आनंद का अनुभव होता है। जितना ही अधिक मनोवैज्ञानिक और द्वन्द्वप्रधान वृत्तियों का चित्रण

---

१ हिन्दी साहित्य (१९२१ १९६० ई०) – डा० भोलानाथ (पृष्ठ २१६)

२ कुछ उदाहरण देखिए –

"वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है इतना ही नहीं बल्कि अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है।"

—कुछ विचार प्रेमचन्द (पृष्ठ ५७)

और भी—

" अब हम कहानी का मूल्य उसके घटना विन्यास से नहीं लगाते हम चाहते हैं पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। घटनाओं का स्वतंत्र कोई महत्त्व नहीं रहा। उनका महत्त्व केवल पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने की दृष्टि से ही है।

—कुछ विचार प्रेमचंद (पृष्ठ ५६)

होगा उतना ही अधिक आधुनिक अध्येता का बौद्धिक अनुरंजन होगा।"[1] मानसिक ऊहापोह के कुछ उदाहरण देखिए—

"उसके मन को स्थिरता नहीं थी। वह अपने को कहाँ बाँधे। उस मन के भीतर पहाड़ भी है, प्रेम भी है लेकिन वह मन अपने को जैसे अस्वीकृत पाता है। किसने उसे ले लिया है। किसके लिए इसका वह मन रहता है, तीनों लोकों में जो उसका अधीश्वर है वह आदमी तो एकदम उसे सोने में और ऐश्वर्य में सुला देना चाहता है, वह उसे ऐसा प्यार करता है। पर उसके क्या वह योग्य है।"

—ग्रामोफोन का रिकार्ड　जैनेन्द्रकुमार

और भी—

"पत्नी को नाराज होने का कारण न था। उन्हें तो एक प्रखर का वैसा कुछ संतोष मिलता था जैसा बालक को बोलनेवाले खिलौने को पीट कर उन्हें बुलवाने में। अंतर यह था कि बालक को ज्ञात नहीं होता कि उसके दबाने और पही के बोलने में क्या सम्बन्ध है और महिला ऐसी बातें सुनने के ही लिए छेड़ रही थी। वह यह तो जानती ही थी कि अब पति के लिए साधु की मारना उतना संभव, आसान और प्रिय कार्य न होगा। जैसा पति का क्रोध पत्नी को शारीरिक प्रहार देकर तुष्ट होता था वैसे ही उसके एवज में, उसी का लगभग समकक्ष पत्नी में एक स्त्रियोचित भाव था, या यह कहिए कि ममता का क्रोध था जिसका जहर निकाला गया।"

—साधु की हठ : जैनेन्द्र कुमार

इसमें कोई संदेह नहीं कि मानसिक ऊहापोह के इन उदाहरणों में कहानी का आकर्षण बढ़ जाता है और इसमें कलात्मकता भी आजाती है। हिंदी कथा साहित्य में कई ऐसी कहानियाँ भी लिखी गई हैं जिनमें कि पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं का उद्घाटन करते समय पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का विस्तार के साथ अंकित किया जाता है। कभी कभी यह अन्तर्द्वन्द्व कहानी के अन्त तक चलता जाता है और वह पाठक को अपनी ओर इस प्रकार आकृष्ट कर लेता है कि सम्पूर्ण कहानी के समाप्त हो जाने पर भी पाठक उसके सम्बन्ध में काफी देर तक सोचता रहता है। उदाहरणार्थ—

'मोटर की खिड़कियों की राह से उड़ते आते बिजली की रोशनी में चकाचौंध मकान और दुकानें उन्हें दिखाई न पड़ रही थीं। उन्हें दिखाई दे रहा था मिसेज सक्सेना के सम्बन्ध में शर्मा का रस लेकर कुचेष्टापूर्ण बातें करना। और"" गारा की भृगाचार्य ' """मालसाहब के यहाँ से आयी है अरा उनके साथ जा रही है।"""" और उन्हें घर से बाहर देर हो जाने पर उसका दमनापूर्ण निरीक्षण चरित्र। उनके दाँत दोनों में गड़े जा रहे थे।

१ कहानी का रचना विधान—डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा (पृष्ठ १०३)

कोठी के अहाते में मोटर के पहुँच जाने पर उन्हें ख्याल आया—'क्यों वे यों ही चले आये ? चाहिये था वहीं उस हरामजादी की चुटिया पकड़ व लातों से उसकी जान निकाल देते ।' बाहर दफ्तर की कुर्सी पर बैठे, दोनों बाँहें सीने पर बाँध खुली आँखों से वे गौरी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

कानूनी पेशे की कुर्सी पर बैठते ही सूझा—'नहीं वह गलती होती ! लोगों के सामने तमाशा बन जाना और कानूनन बात ठीक न होती। ऐसी इज्जत बिगाड़ने वाली दगाबाज बदमाश औरत को कत्ल कर देने के सिवा और क्या सजा हो सकती है ? कानून की गिरफ्त को वे खूब समझते थे। औरत के कत्ल के ऐसे ही मुकदमे वे लड़ चुके थे।

उनका दिमाग कानून की लाइन पर चलने लगा......औरत की बेहयाई ने इश्तहाल में आकर की गयी हरकत...... इश्तहाई इश्तहाल पैदा करनेवाले हालात का सिलसिला वे दलील में बाँधने लगे—एक शरीफ घराने की परदानशीन औरत...... पति को एक सहेली के यहाँ जाने का विश्वास दिलाकर उसका बदचलन लोगों की सोहबत में जाना...... जहाँ औरतें बेनकाब हों, शराब पी जा रही हो ! उनकी बीबी के बारे में शर्मा जैसे मशकूक चालचलन के आदमी का मजाक......।

पति का वहाँ पहुँच जाना।

पहुँच जाना किस सिलसिले में...... ......?

एक दोस्त के साथ।

उस दोस्त की गवाही...... ...... ।

पति का खुद ऐसी जगह अक्सर जाना...... ...?

पति के अपने चाल चलन का सवाल अलहदा है, लेकिन उसे इस्तेमाल ला या सकता है।

दिमागी परेशानी के कारण वकील साहब के लिए कुर्सी पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। पीठ पीछे हाथ की उँगलियों को एक दूसरी में उलझाये व फर्श पर चक्कर काटने लगे। क्रोध और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। गौरी क्या अभी तक न लौटने की वजह ? ...... उसकी इतनी मजाल ? वे चाहते थे एकदम गौरी उनके सामने आ जाय और वे मुँह से बिना कुछ बोले दोनों हाथों से उसका गला घोंट दें।

विचार और कल्पना के लिये मिले समय ने मस्तिष्क को गहराई में उतार दिया। मस्तिष्क की उत्तेजना का ज्वार उतार कर वे पैसे से गौरी को सजा देने की बात सोचते हुए फर्श पर आगे-पीछे चल कदमी करने लगे।

उसी समय माल साहब की मोटर अहाते में आई और कोठी के पिछवाड़े के दरवाजे के सामने रुकी। गाड़ी के दरवाजे के झटके से बन्द होने का शब्द भी सुनायी दिया। भय से काँपती हुई गौरी आँगन से अपने कमरे की ओर जाती हुई भी सक्सेना साहब की कल्पना में दिखाई दे रही थी।

क्रोध और उत्तेजना से उसका गला घोंट देने के लिए वकील साहब की बाँहें फड़क उठीं ... .।

किस हालत में? गवाही क्या होगी! ... ...

कानूनी दलील और गवाही की अदृश्य जंजीरों ने उन्हें हिलने न दिया ... कल्पना में ही वे गौरी का गला घोंटने का संतोष पा रहे थे। और सोच रहे थे—फाहशा औरत का पति कहलाने से यों गम खाना ही क्या बेहतर नहीं।"

—गवाही : यशपाल

अन्तर्द्वन्द्व के इन उदाहरणों में कभी-कभी कहानीकार पात्र विशेष की मनोभावनाओं का विश्लेषण करते हुए ऐसे चित्र भी अंकित करता है जब कि वह पात्र आत्मविश्लेषण में रत हो विगत स्मृतियों की याद करने लगता है। कहानियों में इस प्रकार के चित्रों की अवतारणा कोई आसान कार्य नहीं है और कुशल कहानीकार ही इस प्रयास में सफल हो पाते हैं अन्यथा कभी-कभी दुरूहता एवं बौद्धिकता का वातावरण ही अंकित हो जाता है। प्रेमचन्द्र के परवर्ती कहानी लेखकों में से जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, अश्क और इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में इसी प्रकार के सुन्दर सरस चित्रण अधिक मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए—

बैठे बैठे वह सोचने लगी कि उसके जीवन की गाड़ी कहाँ से कहाँ जाकर टकराई और कहाँ जाकर दलदल में फँसकर रह गई। ठीक इन्हीं शब्दों में सोचने की बुद्धि उसमें नहीं थी। पर उसके धड़कते और हाँफते हुए, पीड़ित और तपे हुए अंतर से भाप की तरह निकलने वाले भावों की अस्पष्ट रूपरेखा कुछ इसी प्रकार थी। उस दिन की याद आ रही थी जब उसकी सखियाँ और गाँव की दूसरी स्त्रियाँ ललचती हुई आँखों से उसे और उसके पति की ओर देखती हुई उसके सौभाग्य के प्रति ईर्ष्यालु हो उठी थीं। न जाने कितने युग बीत गये उस घटना को हुए! कलकत्ते के ऊँचे ऊँचे पाषाण से भी कठोर ईंटों के बने मकानों और मनुष्य के अस्तित्व की तनिक भी परवाह न करनेवाली बड़ी-बड़ी मोटरों और ट्रामों के बीच में दस वर्ष रहने से उसका हृदय भी जैसे पथरा गया था और वह अपने अस्तित्व के उस स्रोत को खो चुकी थी, जिससे उसका प्रारम्भिक जीवन लहलहाया हुआ था। वह स्रोत भरी जवानी के ताप पर जाने न जाने किस भीषण रेगिस्तान के भीतर धँसकर, सूखकर, उसमें खो कर रह गया। कलकत्ता में लाखों आदमी रहते हैं पर अपने दस वर्ष के जीवन में उसने कभी किसी मनुष्य के सहृदय प्राणी का स्पर्श ना

क्या, छाया तक नहीं पाई थी। वे सब मनुष्य उसके लिये जैसे किसी निराले ही लोक के विजातीय जीव थे। वे प्रेत, पिशाच, भूत, बैताल यक्ष, दानव या इसी तरह की किसी और योनि के प्राणी भले ही हों, पर मनुष्य नहीं थे। वह उनसे चारों ओर से घिरी रहने पर भी किसी निर्मम जादूगर के विचित्र अभिशाप के कारण उनके संपर्क से एकदम परे थी। उनकी साँस भी उसकी साँस से आकर नहीं टकराती थी। और जिन लोगों से, जिस ऊँची पहाड़ी धरती से उसके प्राण कभी एक रूप में बँधे थे, उनसे कितनी दूर वह पड़ गई थी। न जाने कितने असख्य योजनों का, कितने अनन्त युगों का व्यवधान उनके और उसके बीच में पड़ गया था। उसकी निद्रालु आँखें मसती चली जा रही थीं और साथ ही उसके अन्तर्लोक से उठनेवाली भाव-छायाएँ विचित्र से विचित्रतर, अस्पष्ट से अस्पष्टतर रूप धारण करके उसके सिर के भीतर चक्कर काटती हुई एक अनोखा, उद्दाम और उच्छृंखल नृत्य सी करने लगी थीं।

सहसा उसने अनुभव किया कि उसका शरीर हल्का होता चला जा रहा है। दूसरे ही क्षण वह रुई से भी हलकी होकर आकाश में उड़ने लगी और बहुत दूर तक उड़ने के बाद जब नीचे उतरी तो उसने अपने को एकदम बदला हुआ पाया। साड़ी और जम्पर की जगह उसका शरीर लहँगा पिछौरी और अँगिया से ढका हुआ था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह चौदह-पन्द्रह वर्ष की लड़की कैसे बन गई। उसके चारों ओर ऊँचे ऊँचे पहाड़ थे। वह स्वयं एक ऊँचे टीले पर खड़ी थी। बहुत दूर नीचे एक छोटी सी नदी के किनारे एक गाँव था। लगता था जैसे चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई हो। सर्वत्र सन्नाटा छाया था। वह गला फाड़कर किसी को हाँक लगाना चाहती थी पर आवाज निकलती ही नहीं थी। न जाने कहाँ से कोई एक चिड़िया बहुत ही धीमे स्वर में कुछ क्षणों के अंतर से बोल रही थी। वह बोलना क्या था लगता था जैसे अपनी दो नन्ही सी चोंचों से सिसकारी भर रही हो। जैसे वह उस सारे सन्नाटे के हृदय का स्पन्दन हो। वह उस सारी पहाड़ी प्रकृति में"" सारे विश्व में""अपने अकेलेपन की अनुभूति से घबरा उठी। वह रोना ही चाहती थी कि सहसा उसके कान खड़े हुए। लगा कि उल्लास-भरे स्वर में गाने वाली स्त्रियों और पुरुषों की एक टोली नीचे किसी स्थान से ऊपर की ओर चली आ रही है। आनन्द राग में मस्त स्त्रियों और पुरुषों का वह दल निकट से निकटतर आता चला गया। कुछ ही समय बाद उसने देखा कि वे लोग उसके बिलकुल ही पास आ पहुँचे। सबके कपड़े होली के विविध रंगों से रंगे हुए थे। उसने अपने कपड़ों की ओर देखा उनमें भी लाल, हरे और बसंती रंगों के छींटे जाने कहाँ से पड़ गये थे। वह दौड़ती हुई नीचे उतरी और स्त्रियों की टोली में जा मिली और उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाती हुई पूरी तरह से गला खोलकर गाने लगी। उसे आश्चर्य हुआ कि उसका गला अचानक अपने आप कैसे खुल गया। वह टोली एक ऐसी जगह पहुँची

जहाँ मैदान था। यहाँ पहुँचकर स्त्रियों ने रास-मंडल की तरह एक गोल घेरा बना लिया और पुरुषों ने भी अलग एक गोल घेरा बना लिया। ये लोग ताल और लय में नाचने और गाने लगे। रुक्मा के आनन्द और उल्लास की सीमा नहीं थी। वह मुक्त कंठ से गा रही थी और स्वच्छंद गति से नाच रही थी और अपने अगल-बगल वह जिन दो लड़कियों का—संभवत अपनी सहेलियों का—हाथ पकड़कर कभी बायें और कभी दायें झुककर नाच रही थी उनमें से एक ने कहा, "अरी रुक्मा यहाँ क्यों आकर नाचने लगी? तेरी तो शादी हो गई है। तू तो 'अफसराइन' बन गई है। तेरा वह अफसर देखेगा तो क्या कहेगा?"

—रुक्मा इलाचंद्र जोशी

यदि हम विचारपूर्वक देखें तो मानसिक ऊहापोह के उदाहरण हमें द्विवेदी युग की कहानियों में भी दृष्टिगोचर होते हैं तथा प्रसाद और प्रेमचंद की कथाओं में भी हम कई ऐसे अवतरण देखते हैं जिनमें कि पात्र विशेष की आंतरिक दशा का चित्रण इसी पद्धति द्वारा किया गया है। प्रसाद जी की प्रसिद्ध कहानी पुरस्कार में एक ओर तो मधूलिका का प्रिय पात्र अरुण है और दूसरी ओर स्वदेश-रक्षा का प्रश्न है अतः स्वाभाविक ही में उसमें कर्तव्य और हृदय का द्वंद मा छिड़ जाता है। मधूलिका की आतरिक दशा का वर्णन प्रसाद जी ने इस प्रकार किया है—

"पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़ तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा। मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख कल्पना थी वह जैसे अंधकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहिला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी, वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कौशल का चिर शत्रु! ओह, उसकी विजय! कौशल नरेश ने क्या कहा था, 'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र कौशल का रक्षक वीर उसकी कन्या आज क्या करने जा रही है। नहीं नहीं। 'मधूलिका।' 'मधूलिका' जैसे उसके पिता उसे अंधकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।"

—पुरस्कार प्रसाद

इसी प्रकार का चित्रण प्रेमचंद की कहानियों में भी दृष्टिगोचर होता है। एक उदाहरण देखिए—

"सुभद्रा जितना ही चाहती थी कि इस समस्या पर शांतचित्त होकर विचार करे, पर हृदय में मानों ज्वाला सी दहक रही थी। केशव के लिए वह अपने प्राणों का कोई मूल्य नहीं समझती थी। वही केशव उसे पैरों से ठुकरा रहा है। यह आघात इतना आकस्मिक, इतना कठोर था कि उसकी चेतना की सारी कामलता मूर्छित हो गयी। उसका एक एक अणु प्रतिकार के लिये तड़पने लगा। अगर यही

समस्या इसके विपरीत होती, तो क्या सुभद्रा की गरदन पर छुरी न फिर गयी होती ? केशव उसके खून का प्यासा न हो जाता ? क्या पुरुष हो जाने से ही सभी बातें क्षम्य और स्त्री हो जाने से सभी बातें अक्षम्य हो जाती हैं ? नहीं, इस निर्णय को सुभद्रा की विद्रोही आत्मा इस समय स्वीकार नहीं कर सकती। उसे नारियों के ऊँचे आदर्शों की परवाह नहीं है। उन स्त्रियों में आत्माभिमान न होगा। वे पुरुष के पैरों की जूतियाँ बनकर रहने में ही अपना सौभाग्य समझती होंगी। सुभद्रा इतनी आत्माभिमान-शून्य नहीं है। वह अपने जीते जी यह नहीं देख सकती कि उसका पति उसके जीवन का सर्वनाश करके चैन की बंशी बजाय। दुनिया उसे हत्यारिनी, पिशाचिनी कहेगी, कहे उसका परवा नहीं। रह रहकर उसके मन में भयंकर प्रेरणा होती थी कि इसी समय उसके पास चली जाय और इसके पहिले कि वह उस युवती के प्रेम का आनन्द उठायें उसके जीवन का अंत कर दे। वह केशव की निष्ठुरता की याद करके अपने मन को उत्तेजित करती थी। अपने मन को धिक्कार धिक्कार कर नारी-सुलभ शंकाओं को दूर करती थी। क्या वह इतनी दुर्बल है ? क्या उसमें इतना साहस भी नहीं है। इस वक्त यदि कोई दुष्ट उसके कमरे में घुस आये और उसके सतीत्व का अपहरण करना चाहे, तो क्या वह उसका प्रतिकार न करेगी ? आखिर आत्मरक्षा ही के लिए तो उसने यह पिस्तौल ले रखी है। केशव ने उसके सत्य का अपहरण ही तो किया है। उसका प्रेम प्रदर्शन केवल प्रवंचना थी। वह केवल अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिए सुभद्रा के साथ प्रेम स्वाँग भरता था। फिर उसका वध करना क्या सुभद्रा का कर्त्तव्य नहीं ?"

—सोहाग का शव प्रेमचन्द

चूँकि हिन्दी कहानियों के शिल्पविधान में दिन प्रतिदिन नए नए परिवर्तन होते जा रहे हैं अतः कहानीकार भी अपनी कहानियों में साधारण चरित्रों के स्थान में विशिष्ट चरित्रों की ही अवतारणा करते हैं और इस प्रकार वे चरित्र अपने में स्वयं व्यक्ति नहीं होते अपितु व्यक्ति के टाइप प्रतिनिधि होते हैं। साथ ही ये चरित्र प्रायः अंतर्मुखी ही अधिक होते हैं तथा ये किसी न किसी अंतर्द्वन्द्व या घात प्रतिघात से अनुप्राणित रहते हैं और ये किसी ऐसी रहस्यात्मक शक्ति से प्रेरित होते हैं कि उन्हें पूर्ण रूप से समझ पाना दुस्तर काम ही है लेकिन इतना होते हुए भी यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि ये असाधारण न होकर पूर्ण मानव होते हैं। अभी अभी हमने चरित्र विश्लेषण की जिन पद्धतियों का उल्लेख किया या उनके उदाहरणों में भी हमें यही दृष्टिगोचर होता है कि वर्तमान कहानीकारों ने मनोविज्ञान का आधार लेकर ही अपनी कहानियों में चरित्र अवतारणा की है अतः उनका चरित्र चित्रण का आकर्षण भी अपूर्व है। स्मरण रहे कि निरपेक्ष विश्लेषण, आत्म विश्लेषण और मानसिक ऊहापोह के अतिरिक्त चरित्रों की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा तथा

व्यक्तित्व विश्लेषण के लिए कुछ कहानी लेखकों ने अवचेतन विज्ञप्ति को भी साधन माना है और जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशी तथा अश्क की कहानियों में इसके कई सुन्दर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं।[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चूँकि आधुनिक कहानी का मूलाधार मनोविज्ञान है इस मनोविज्ञान का मूल केन्द्र चरित्र है। अतः स्वाभाविक ही आधुनिक हिन्दी कहानियों में पात्र और चरित्र-चित्रण को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया जाता है। साथ ही चरित्र-चित्रण में भी कहानीकारों का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण ही परिलक्षित होता है और उनमें बाह्य संघर्षों की अपेक्षा अन्तः संघर्षों की ओर बढ़ने तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति ही पाई जाती है। जैनेन्द्र ने स्वयं ही अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है— 'यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी होगी कि शरीर से प्राणों की ओर बढ़ना बनावट से स्वाभाविकता की ओर बढ़ना होगा, सजावट से रुचिरता की ओर और आडम्बर से प्रसाद की ओर बढ़ना होगा। स्थूल वासना के नीचे धरातल पर इस प्रगतिशील जगत में टिकना नहीं हो सकेगा, सूक्ष्म की ओर अग्रसर ही होना होगा। इसी का नाम विकास है।'[2]

---

१ अवचेतन विज्ञप्ति का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

"अन्त में टहलता टहलता वह मेज पर आ बैठा और पेन से ब्लाटिंग पेड पर लिखा —लिखा कहूँ कि खींचा—

Swaraj   Independence

Love   Marriage

× × ×   × × × God made Love. Did God make marriage also ? No the man did the making of it and I say a love is not chouse. It is never that. Never never! Ah! how slavish of me thus unwillingly to use English must write Hindi! हिन्दी हिन्दी, हिन्दी हमारा देश हिन्दुस्तान है हिन्दी हमारी भाषा हिन्दी हमारा बाना भाइयों हरीपुर २१ मील सवेरे की गाड़ी में नहीं जा सकता ! *Oh ! Damn it all ! why make a misery of it—Dear Jairaj !*"

—एक रात जैनेन्द्रकुमार

२ एक रात— जैनेन्द्रकुमार (भूमिका पृष्ठ ३)

कहानी में कथोपकथन

:४:

एक विचारक ने उचित ही लिखा है कि "कथोपकथन तत्त्व कहानी-कला का सर्वोत्तम अंश है"[1] और इसमें कोई संदेह नहीं कि कहानी में कथोपकथन अनिवार्य है क्योंकि वार्तालाप न केवल पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायक होता है अपितु वह कथानक का ही एक गुण समझा जाता है तथा कथावस्तु की स्वाभाविकता के लिए भी उसका समावेश आवश्यक है। कथोपकथन को स्वाभाविक रूप में उपस्थित करने से बड़ी सरलता के साथ हम सम्पूर्ण परिस्थिति से विज्ञ होकर पात्रों के दृष्टिकोण आदर्श तथा उद्देश्य को भी जान सकते हैं। वार्तालाप द्वारा रसोद्भव होता है अतः पाठकों के मन में स्वाभाविक ही कौतूहलता की सृष्टि होती है जिससे कि उनके मानस में सम्पूर्ण कहानी को पढ़ने की उत्सुकता रहती है अतः कथोपकथन कथा का आकर्षण द्विगुणित कर देते हैं। केवल वर्णन द्वारा प्रस्तुत की गई कहानी में चाहे लेखक का व्यक्तित्व अवश्य उभर आता हो परन्तु उसकी प्रभविष्णुता और संवेदनशीलता तो नष्ट ही हो जाती है अतः घटनाओं को गतिशील बनाने में कथोपकथन का उपयोग आवश्यक है परन्तु यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि केवल मात्र संवादों के माध्यम से निर्मित कहानी कहानी न रहकर एकांकी नाटक बन जाती है अतः कुशल कहानीकार अपनी सम्यक् प्रतिभा के बल पर कथोपकथन और वर्णन विवेचन में इस प्रकार का सुन्दर समन्वय और अनुपात रखता है कि कहानी का स्वरूप कलात्मक ही उठता है। कहानी में कथोपकथन की उत्कृष्टता के लिए कहानीकार को इस बात पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए कि संवाद पात्रानुकूल और स्वाभाविक हों तथा उनमें वैयक्तिकता भी हो, साथ ही भाषा भी प्रसंगानुकूल सरल, शिष्ट, लाक्षणिक और प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। कथोपकथन का प्रधान कार्य परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से कथानक के प्रवाह में सहायता पहुँचाना ही है और यदि किसी वार्तालाप को पढ़कर कथानक का प्रवाह रुकता हुआ दृष्टिगोचर हो तो फिर समझ लेना चाहिए कि कहानीकार ने उसका उचित निर्वाह नहीं किया

---

१ हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ११८)

चूँकि आधुनिक कथा-साहित्य में उपदेश देना सर्वथा अवांछनीय समझा जाता है अतः कथोपकथन में उपदेश या वर्णन की ओर विशेष ध्यान कहानी की कलात्मकता को नष्ट करना ही है। सामान्य संवादों से नीरसता और अस्पष्टता ही उत्पन्न होती है अतः वार्तालाप में नवीनता और स्वाभाविकता होनी चाहिए जिससे कि उनमें पाठकों के मानस में जिज्ञासा उत्पन्न करने की क्षमता विद्यमान रहे। साथ ही यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कथोपकथन एक नाटकीय तत्त्व भी है अतः अभिनयात्मकता उसका अनिवार्य गुण है परन्तु नाटकीय संवादों और कहानी के वार्तालाप में अत्यधिक विभिन्नता है क्योंकि नाटक में प्रयुक्त कथोपकथन अभिनय की दृष्टि से लिखे जाते हैं तथा नाटकीय सौंदर्य तो अभिनय में ही रहता है और साथ ही कहानी अभिनेय नहीं है अतः कथोपकथन इतने अधिक पूर्ण होने चाहिए कि वे किसी भी प्रकार के अभिनय एवम् संकेत का अभाव न सूचित करें। इतना ही नहीं उपन्यास के कथोपकथन की अपेक्षा कहानी के वार्तालाप में विशेष संयम और नियंत्रण की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि कथोपकथन से कहानी का सौंदर्य बढ़ जाता है तथा उसमें सुघरता सुरुचिरता और मनोहरता आदि गुणों की अभिवृद्धि होती है अतएव कहानीकार किसी भी शैली में कहानी क्यों न लिखे लेकिन वह वार्तालाप का उपयोग करने का लोभ संवरण नहीं कर पाता है चाहे फिर वह पात्रों के कथन को अप्रत्यक्ष रूप में ही क्यों न उपस्थित करे। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि संवाद-तत्त्व पर विचार करते समय कतिपय समीक्षकों ने कुछ सामान्य सिद्धान्त भी निर्धारित किए हैं।[1]

---

१ देखिए—

(क) संवाद लघु और अभिनयात्मक हों क्योंकि यथार्थ जीवन में जब दो चार व्यक्तियों में बातचीत होने लगती है तो एक ही व्यक्ति बहुत देर तक नहीं बोलता रहता।

(ख) बीच बीच में, संवाद को सजीव बनाने के अभिप्राय से या तो बोलने वाला बोलता बोलता कुछ क्षण के लिए रुक जाएगा, अथवा परिस्थिति के अनुरूप पहले की बात को काटकर दूसरा स्वयं बोल उठेगा। इस प्रकार के व्यवधान स्वाभाविकता का अच्छा उदाहरण उपस्थित करेंगे।

(ग) कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि एक पात्र के उत्तर में जब तक दूसरा पात्र कुछ बोले उसके पहले ही पहला पात्र दूसरा प्रश्न अथवा प्रसंग उपस्थित कर दे अथवा बात की धारा ही बदल दे।

(घ) ऐसा भी हो सकता है कि पहले पात्र की कुछ कही हुई बात को सुनकर और उसके मन की बात का अनुमान करके दूसरा पात्र बीच में ही बोल उठे और पहला जो कुछ आगे कहने वाला हो उसका भी अनुमान करके वह आगे का भी उत्तर जोड़ दे।"

कहानी का रचना-विधान — डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा (पृष्ठ १२५-१२६)

वस्तुत कहानियों में कथोपकथन द्वारा इन तीन कार्यों—चरित्र-चित्रण, घटनाओं को गतिशील बनाने और भाषा शैली का निर्माण करने—में विशेष सहायता मिलती है अत स्वाभाविक ही कथोपकथन की विविध प्रणालियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं।

पात्र और चरित्र-चित्रण पर विचार करते समय हम स्पष्ट कर चुके हैं कि कथोपकथन किस प्रकार पात्र विशेष के चरित्र चित्रण में सहायक होते हैं। इतना ही नहीं उनके द्वारा घटनाओं को गतिशील बनाने में भी सहायता मिलती है और बहुत से कहानीकार संवादों द्वारा अपनी कहानियों की घटनाओं को गति प्रदान करते हैं।[1] कुछ ऐसी कहानियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जिनके संवादों में स्वाभाविकता की अपेक्षा कवित्व ही विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है और पर्याप्त सावधानी रखने पर वह कथा-प्रवाह में अनुपयुक्त भी नहीं प्रतीत होता लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि

---

१ एक उदाहरण देखिए—

'उसने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और टोकरी को उठाकर बोली तुमसे किसने पीसने को कहा है? किसका अनाज पीस रही है?

सिलिया ने निस्संक होकर कहा—'तुम जाकर आराम से सोती क्यों नहीं। मैं पीसती हूँ तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है। चक्की की घुमुर घुमुर भी नहीं सही जाती? लाओ टोकरी दो। बैठे बैठे कब तक खाऊँगी दो महीने तो हो गए।

मैंने तो तुमसे कुछ नहीं कहा।

'तुम चाहे न कहो अपना धरम भी तो कुछ है।

'तू अभी यहाँ के आदमियों को नहीं जानती। आटा पिसाते तो सबको अच्छा लगता है पैसे देते रोते हैं। किसका गेहूँ है? मैं सबेरे उसके सिर पर पटक आऊँगी।

सिलिया ने रुक्मिन के हाथ से टोकरी छीन ली और बोली—'पैसे क्यों न देंगे। कुछ बेगार करती हूँ।

तू न मानेगी।

'तुम्हारी लौंडी बनकर न रहूँगी।

इस तकरार में पयाग भी आ पहुँचा और रुक्मिन से बोला—काम करती है तो करने क्यों नहीं देती। अब क्या जन्म भर बहुरिया ही बनी रहेगी। हो तो गये दो महीने।

'तुम क्या जानो? नाक तो मेरी कटेगी।

सिलिया बोल उठी—तो क्या कोई बैठ खिलाता है? चौका बरतन झाड़ू बहारू रोटी पानी पीसना कूटना यह कौन करता है। पानी खींचते खींचते मेरे हाथों में घट्टे पड़ गये मुझसे अब यह सारा काम न होगा।

—अग्नि समाधि प्रेमचन्द

अधिक भावुकतापूर्ण एवं कवित्वमय कथोपकथन से कहानी की स्वाभाविकता और प्रवाह में बाधा ही पड़ती है।[1]

---

१ इस प्रकार के कथोपकथन का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

धीवर बाला आकर खड़ी हो गई। बोली—'मुझे किसने पुकारा।

'मैंने।

'क्या कह कर पुकारा?

'सुन्दरी।

'क्यों मुझमें क्या सौन्दर्य है? और है भी कुछ तो क्या तुमसे विशेष?

'हाँ आज तक किसी को सुन्दरी कहकर नहीं पुकार सका था, क्योंकि यह सौन्दर्य विवेचना मुझमें अब तक नहीं थी।

'आज अकस्मात् यह सौन्दर्य विवेक तुम्हारे हृदय में कहाँ से आया?

'तुम्हें देखकर मेरी सोई हुई सौन्दर्य-तृष्णा जाग गई।

'परन्तु भाषा में जिसे सौन्दर्य कहते हैं वह तो तुम में पूर्ण है

'मैं यह नहीं मानता, क्योंकि फिर सब मुझी को चाहते, सब मेरे पीछे पागल बने घूमते। यह तो नहीं हुआ। मैं राजकुमार हूँ मेरे वैभव का प्रभाव चाहे सौन्दर्य का सृजन कर देता हो। पर मैं उसका स्वागत नहीं करता। उस प्रेम-निमन्त्रण में वास्तविकता कुछ नहीं।

'हाँ तो तुम राजकुमार हो! इसी से तुम्हारा सौन्दर्य सापेक्ष है।

'तुम कौन हो?

'धीवर बालिका।

'क्या करती हो?

'मछली फँसाती हूँ। कहकर उसने जाल को लहरा दिया।

'जब इस अनन्त एकान्त में लहरियों के मिस प्रकृति अपनी हँसी का चित्र दर्शित होकर बना रही है तब तुम उसी के अंचल में ऐसे निष्ठुर काम करती हो?

'निष्ठुर है तो, पर मैं विवश हूँ। हमारे द्वीप के राजकुमार का परिणय होने वाला है। उसी उत्सव के लिए सुनहली मछलियाँ फँसाती हूँ। ऐसी ही आज्ञा है।

'परन्तु वह ब्याह तो होगा नहीं।

'तुम कौन हो?

'मैं भी राजकुमार हूँ। राजकुमारों को अपने चक्र की बात विदित रहती है, इसलिए कहता हूँ।

धीवर बाला ने एक बार सुदर्शन के मुख की ओर देखा फिर कहा—'तब तो मैं इन निरीह जीवों को छोड़ देती हूँ।

सुदर्शन ने कुतूहल से उसे देखा बालिका ने अपने अंचल से सुनहली मछलियों की भरी हुई मूठ समुद्र के जल में बिखेर दी"……।

—समुद्र संतरण : जयशंकर प्रसाद

स्मरण रहे कि आधुनिक कहानियों में कथोपकथन के विविध रूप प्रचलित और कुछ कहानीकार ऐसे हैं जिनकी कहानियों में वार्तालाप का नाटकीय रूप देख पड़ता है अर्थात् उनमें कार्य, घटना, स्थिति आदि के संकेत नहीं होते या केवलमात्र कथोपकथन ही रहते हैं

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

'भगवन्ती।'

'रहती कहाँ हो ?'

'मामा के पास जिसने कुएँ पर पानी पिलाया था।

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ चुप हो गया फिर कुछ देर ठहरकर बोला 'तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो ?'

'तुम्हें आदमी बनाने को जो तुम्हें बुरा लगा हो तो मैंने भी अपने किये का हठ बढ़ाकर फल पा लिया, एक सलाह दे जाती हूँ।

'क्या ?'

'कल से नदी में नहाने मत जाना।'

'क्यों ?'

'गोते खाओगे तो कोई बचानेवाला नहीं मिलेगा।'

रघुनाथ झेंपा पर सँभालकर बोला—'अब कोई मेरी जान बचायेगा तो मैं पीछा नहीं करूँगा और गाली भी सुन लूँगा।'

'इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहाँ चली जाऊँगी।

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'वहाँ अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।

—बुद्धू का काँटा : चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

और भी—

'है तो मुसलमान।'

'मेहतर होगा।

नहीं मेहतर अपने दामन से सफाई नहीं करता। कोई पागल मालूम होता है।

'उधर का भेदिया न हो।'

'नहीं चेहरे से बड़ा गरीब मालूम होता है।

'हसन निजामी का कोई मुरीद होगा।'

'अजी गोबर के लालच से सफाई कर रहा है। कोई भठियारा होगा। (साजिद से) गोबर न ले जाना बे, समझा ? कहाँ रहता है ?'

'परदेशी मुसाफिर हूँ साहब; मुझे गोबर लेकर क्या करना है। ठाकुर जी का मंदिर देखा तो आकर बैठ गया। कूड़ा पड़ा हुआ था। मैंने सोचा– धर्मात्मा लोग आते होंगे, सफाई करने लगा।'

'तुम तो मुसलमान हो न ?'

'ठाकुर जी तो सबके ठाकुर जी हैं—क्या हिन्दू क्या मुसलमान।'

'तुम ठाकुर जी को मानते हो ?'

'ठाकुर जी को कौन न मानेगा साहब ? जिसने पैदा किया, उसे न मानूँगा तो किसे मानूँगा ?''

—हिंसा परमो धर्म   प्रेमचन्द

हिंदी कथा-साहित्य में कई ऐसे प्रसंग भी मिलते हैं जब कि कहानीकारों ने कथोपकथन के माध्यम से ही दर्शन आदि शास्त्रों की गुत्थियाँ सुलझाने का प्रयास किया है। इस प्रकार के संवादों में कभी कभी बौद्धिक विवेचन ही दृष्टिगोचर होता है और कहानियों में दुर्बोधता भी आ जाती है लेकिन कुशल कहानीकार संयत और प्रवाह पूर्ण भाषा के साथ सफलता पूर्वक इस प्रकार का विवेचन करता है। उदाहरणार्थ—

वि०— कर्त्तव्य शक्ति का प्रश्न तर्क है गौतमी, विश्वास नहीं। तर्क प्रवृत्ति ज्ञान का बाधक है, विश्वास साधक।

गौ०—'क्या श्रद्धा का प्रतिफल विश्वास है ?'

वि०—'हाँ विश्वास का प्रतिफल आत्मीयता है और आत्मीयता अभेद प्रतीति की साधिका है। विश्वास के मूल में ही सच्ची शान्ति है। गौतमी तुम्हें योगदर्शन का प्रथम सूत्र कण्ठस्थ है ?'

गौ०—'हाँ भगवन ! 'योगश्चित्त वृत्ति निरोध' यह सूत्र मुझे कंठस्थ है।

वि०—'चित्त की किन प्रवृत्तियों के निरोध का आदेश शास्त्रकार ने दिया है ?'

गौ०—'वैषयिकी सांगिकी और कं.पाविनी।'

वि० 'विषयात्मिका प्रवृत्ति क्या अनर्थकारी है ?'

गौ०—'अवश्य। विषयों के ध्यान से आसक्ति का अभ्युदय होता है, और आसक्ति कामोद्दीपिका मानी गई है।'

वि० –'काम भावना प्राणियों की मूल प्रवृत्ति है। उसका विरोध करना, प्रकृति के विरुद्ध आचरण करना है। क्या यह ठीक है ?'

—गौतमी   विश्वम्भर मानव

कभी कभी कहानियों में कहानीकार कथोपकथन के साथ साथ प्रसंगानुकूल पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों का भी चित्रण करता है तथा इस प्रकार उनकी

मुद्राओं के संकेतों के साथ-साथ उनका वार्तालाप भी आगे बढ़ता है जिससे कि संवादों में सरसता सी आ जाती है। देखिए

"ऊषा प्रणाम करके लौटने ही लगी थी कि बहुत धीरे से वसराज ने पुकारा—'ऊषा !'

ऊषा घूम कर खड़ी हो गई। मुँह से उसने कुछ भी नहीं कहा, परंतु उसकी आँखों में एक बड़ा सा प्रश्नवाचक चिन्ह साफ तौर से पढ़ा जा सकता था।

वसराज ने बड़ी शिथिल आवाज में कहा—'आपको देखकर न जाने मुझे क्या हो जाता है।

ऊषा यह सुनने के लिये तैयार न थी फिर भी वह चुपचाप खड़ी रही।

क्षण भर रुककर वसराज ने कहा—'आप सोचती होंगी, यह अजब बेहूदा आदमी है। न हँसना जानता है, न बोलना जानता है मगर सच मानिए "।

बीच में ही बाधा देकर ऊषा ने कहा—'मैं आपके बारे में कभी कुछ नहीं सोचती; मगर आपको यह होता क्या जा रहा है ?'

वसराज के चहरे पर हवाइयाँ सी उड़ने लगी। उस ऊषा के स्वर में कुछ कठोरता सी प्रतीत हुई। तो भी बड़े साहस के साथ उसने कहा—'मैं अपने आतरिक भाव व्यक्त नहीं कर सकता।'

ऊषा ने चाहा कि वह इस गंभीरतम बात को हँसकर उड़ा दे मगर कोशिश करने पर भी हँस न सकी। वह कुछ भयभीत सी हो गई। उसने कहा—' मैं जाती हूँ। और वह घूम कर चल दी।"

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

इस प्रकार के संवादों में कभी कभी वातावरण की स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों का मूर्तिमान रूप अंकित किया जाता है तथा यद्यपि इस चित्रण में विस्तार आ जाने पर भी वह वास्तविक और सजीव ही प्रतीत होता है। साथ ही इस प्रकार के अवतरण कथोपकथन और बयान विशेषण के सुन्दर एवम् कलात्मक उदाहरण माने जा सकते हैं, जैसे—

"अनन्त एकाएक चुप हो गया। फिर बोला, 'एक कैसी कहानी है यह " ज्योति ने धीरे धीरे अपना हाथ खींच लिया। दोनों फिर चुप हो गए।

मिनट भर बाद ज्योति ने फिर पूछा—'अब क्या सोच रहे हो ?'

वह अनन्त की ओर देखती रही थी, देख वह अपलक दृष्टि से ताज की ओर रही थी, फिर भी जाने कैसे अनन्त का नाड़ी स्पन्दन निरन्तर उसमें प्रतिध्वनित होता जा रहा था।

कुछ चुप रहकर अनन्त बोला—'बताओ क्या दिन के प्रकाश में प्यार भी उतना ही कठोर लगता है जितना कि पत्थर।'

ज्योति ने कुछ विस्मय से कहा—'क्यों क्या मतलब ? मैं नहीं समझी।'

'आज दोपहर को देखा था ताज कितना बेहूदा लग रहा था' "क्यों ? इस लिये कि पत्थर भी कठोर है दुपहर की धूप भी कठोर है और दोनों एक साथ तो——सभी दोपहर को लग रहा था जैसे किसी ने निर्दय हाथों से ताज की सुन्दरता का अवगुण्ठन उघार लिया हो उसे नंगा कर दिया हो। लेकिन अब चाँदनी में—ऐसा लगता है कि ओस की तरह चाँदनी ही जमकर इकट्ठी हो गई हो।"

नहीं तुम और कुछ सोच रहे थे—बताओ न ? कहकर ज्योति ने फिर अनन्त के हाथ पर अपना हाथ रख दिया।"

—ताज की छाया में अज्ञेय

बहुत सी कहानियों में पात्रों की मुद्राओं और स्थितियों का संकेत करते हुए उन कार्य व्यापारों और घटनाओं का भी उल्लेख किया जाता है जो कि पात्रों के वार्तालाप और तत्कालीन स्थिति में चरितार्थ होती हैं, उदाहरणार्थ—

"एक दिन वह पैसा ही होटल आया और उसने उस व्यक्ति को पूर्वत अपने स्थान पर देखा। प्राण ने पीछे जाकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया। वह व्यक्ति एकदम चौंक उठा, बोला- 'क्यों क्या है ?'

प्राण ने शांत भाव से कहा — यही तो मैं आपसे पूछने आया हूँ ?'

अपरल से वह व्यक्ति जिस तरह चौंका उसी तरह एकदम हँस होकर बोला--तो आप समझ गये। क्षमा करिये मैं स्वयं आपसे बात करने वाला था।'

'अब तक क्यों नहीं कर सके ?'

उसने उसी तरह कहा 'क्योंकि मैं पूर्ण विश्वस्त नहीं था और आप जानते हैं कि आज के युग में ऐसी वैसी बातें करना मौत को बुलाना है।"

प्राण उसकी वाणी से आश्वस्त सा हुआ, पर उसका हृदय धक धक कर उठा। उसने कहा—'आप ठीक कहते हैं पर अब आप निस्संकोच होकर जो चाह कह सकते हैं।

वह बोला बात ऐसी ही है। आप बुरा न मानिए।'

'आप कहिये।

वह तनिक झिझका, फिर शीघ्रता के साथ बोला 'आपके साथ जो साथी आती है वह आपकी कौन है।'

'आपका मतलब ।

'जी''''''।'

प्राण सँभला बोला—'वह मेरी सब कुछ है और कुछ भी नहीं है।

'जी मैं पूँछता था, क्या वे आपकी पत्नी हैं।'

मेरी पत्नी''''?

'जी ।'

'नहीं !'

'नहीं ?'

'जी हाँ।

'आप सच कह रहे हैं ?' उसकी वाणी में अचरज ही नहीं हर्ष भी था।

जी हाँ। मैं सच कहता हूँ। अग्नि को साक्षी करके मैंने उससे कभी विवाह नहीं किया।'

'फिर।

'लाहौर से जब मैं भागा था तब मार्ग में एक शिशु के साथ उसे मैंने संज्ञाहीन अवस्था में एक खेत में पाया था।

'तब आप उसे अपने साथ ले आये ।

'जी हाँ।'

'फिर क्या हुआ ?'

'होगा क्या। तब से वह मेरे साथ है।'

'लोग उसे आपकी पत्नी समझते हैं।'

'यह तो स्वाभाविक है। पुरुष के साथ इस तरह जो नारी रहती है वह पत्नी ही होगी; इससे आगे आज का आदमी क्या सोच सकता है, पर आप ये सब बातें क्यों पूँछते हैं ? क्या आप उसे जानते हैं ?'

'जी यह काँपा, बोला 'वह''''''''वह मेरी पत्नी है।'

'आपकी पत्नी'—प्राण सिहर उठा।

'जी।

'और आप उसे चोरों की भाँति ताका करते हैं।

अब उसका मुँह पीला पड़ गया और नेत्र झुक गये। पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या हुआ। उसने एक झटके के साथ गरदन ऊँची की, बोला—'उसका एक कारण है। मैं उसे छिपाऊँगा नहीं। उन मुसीबत के क्षणों में मैं उसकी रक्षा नहीं कर सका था।

प्राण न जाने क्यों हँस पड़ा "छोड़कर भाग गये थे। अक्सर ऐसा हुआ है।"

—मैं जिन्दा रहूँगा विष्णु प्रभाकर

और भी–

किशोर ने धीरे से कहा—'सुनती हो, यह पक्षी क्या पुकार रहा है ? यह कहता है, प्र-मीला, प्र-मीला ।'

प्रमीला निःशब्द हँस दी ।

'सच तुम सुनकर देखो—वह देखा—प्र-मीला प्र-मीला–'

प्रमीला ने मानो कान देकर सुना । अबकी वह जरा जोर से हँस दी"""हाँ ठीक तो अगर मानकर अनुकूलता से सुने तो सचमुच तीतर उसी का नाम पुकार रहे हैं, 'प्रमीला, प्रमीला ।

उसने धीरे से किशोर का हाथ अपने हाथ में लेकर दबा दिया ।

और अभी जब चाँद निकलेगा, तब तुम देखना, वह जो धुँधली सी महराब दीखती है न टूटी हुई, उसका आकार भी ठीक 'प्र' जैसा बन जायगा, मानों चाँदनी तुम्हारा नाम लिख रही हो, प्रमीला की आँखें चमक उठीं । उसने कहा—हाँ और जब मोर पुकारेगा तो मैं सुनूँगी वह कह रहा है 'किशोर, किशोर ।' और जब चांद निकलेगा बादलों में रुपहली झालर लग जाएगी—

'हँसी करती हो ?'

'नहीं"""हँसी क्यों करती भला ? मैं सच कह रही हूँ—ये जो दूर दूर तक पलास के झुरमुट हैं, इनकी काँपती पत्तियाँ न जाने किन-किन नामों पर ताल देकर नाचती हैं और वह कुञ्ज के पानी में चक्कर काटती टटीहरी चौंक कर न जाने किसे पुकारती है– हम सारा इतिहास थोड़े ही जानते हैं ? केवल अपने नाम सुन सकें, यह भी इसलिए कि—इसलिए कि– कहा न ?

इसलिए कि मैं—नहीं कहती—कहना नहीं चाहिए ।'

'कहो भी न ?'

'इसलिए कि मैं—कि तुम—तुम मुझे— और प्रमीला ने पास आकर अपनी आवाज को किशोर के कंधे की ओट में करते हुए कहा, 'तुम मुझे प्यार करते हो ।'

—पठार का धीरज अज्ञेय

पात्र और चरित्र-चित्रण पर विचार करते समय हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि किस प्रकार कथोपकथन भी पात्रों का चरित्र स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होते हैं । वस्तुतः कथोपकथन द्वारा न केवल आत्मविश्लेषण को ही पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है अपितु अन्य दूसरे पात्रों के चरित्र की व्याख्या करने का सुअवसर भी मिलता है । चरित्र प्रधान कहानियों में तो प्रायः व्यक्ति विशेष की व्यक्तित्व-विषयक-प्रवृत्तियों एवम् अभिरुचियों का स्वाभाविक परिचय कथोपकथन की सहायता से ही दिया जाता है । स्मरण रहे कि प्रत्येक पात्र की वाणी और संवाद भंगिमा में कुछ न कुछ निजापन अवश्य होता है और इस प्रकार हम उसके चरित्र का परिचय भी सरलता

से पा सकते हैं। कुशल कहानीकार कथोपकथन के द्वारा ही अपने पात्रों के आन्तरिक भावों और तदनुकूल परिस्थितियों का चित्रण सफलता के साथ करता है तथा इस प्रकार पात्रों की विभिन्न स्थितियों और मानसिक दशा के सम्पूर्ण उतार चढ़ाव का परिचय भी कहानी कला के इस तत्त्व ही द्वारा स्पष्ट होता है। चरित्र-प्रकाशक कथोपकथन का निम्नांकित उदाहरण देखिए—

"भद्रे ? तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो ?'

'उत्सव ! हाँ उत्सव ही तो था।'

'कल उस सम्मान' ....'

'क्यों, आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र ! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे ?'

'मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि !'

'मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह ! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित !

'क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।'

'सरलता की देवि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुंठन में रहना नहीं जानती। उसे'.... '

'राजकुमार ! मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नंदन विहारी और पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ, मेरा उपहास न करो।

'मैं कौशल नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।

'नहीं वह कौशल का राष्ट्रीय नियम है, मैं उसे बदलना नहीं चाहती—चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।

'तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?'

"यह रहस्य मानव हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंचकर एक कृषक बालिका का अपमान करने न आता।'

"मधूलिका उठ खड़ी हुई।"

—पुरस्कार जयशंकर 'प्रसाद'

इसी प्रसंग में यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि अपनी कहानियों में सजीवता और यथार्थता लाने के उद्देश्य से प्रायः अधिकांश कहानीकार कथोपकथनों में स्थानीय वातावरण की झलक प्रस्तुत करने की भी चेष्टा करते हैं और इस प्रकार वार्तालाप के माध्यम द्वारा ही देश के किस अंचल और भाग की कथावस्तु अंकित की गई है — इस बात का पूर्णतः आभास ही सकता है। प्रसाद, प्रेमचन्द, चंडीप्रसाद

हृदयेश और वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियों में इस प्रकार के संवाद प्रायः दृ
गोचर होते हैं परन्तु आधुनिक कहानीकारों में 'अज्ञेय' को इस दिशा में सर्वाधि
सफलता प्राप्त हुई है और किसी स्थान विशेष या किसी विशिष्ट जाति से सम्बंधि
कहानी लिखते समय वहाँ के देशीय प्रकृति चित्रण के साथ-साथ पात्रों के वार्तालाप
उनकी बोली के पुट से स्थानीय शब्द ऐसी सुन्दरता से प्रयुक्त हुए हैं कि समग्र
वातावरण सजीव हो उठा है। अश्क, यशपाल, रांगेय राघव, चन्द्रगुप्त विद्यालंका
राहुल सांकृत्यायन और मन्मनाथ गुप्त की कहानियों में भी यह विशेषता विद्यमा
है। परन्तु इस दिशा में औचित्य की सीमा का विचार भी कड़ाई से होना चाहि
अन्यथा मात्राधिक्य होते ही यही गुणकारी वस्तु भी कहानी की सुन्दरता को न
कर देगी और पाठकों को व्यावहारिक आपत्तियाँ भी होंगी। इस प्रकार के वार्ता
का एक सुन्दर उदाहरण देखिए—

"तनिक और आगे बढ़कर चाकर, ने कहा—'सच कहता हूँ, चौधरी, इस जैसी सुन्दर सांडनी सारी मंडी में दिखाई नहीं दी।

हर्ष से नंदू का सीना दुगना हो गया बोला—'आह एक ही के, इह तो सगरी सुन्दरी है। हूँ तो इन्हें चारा चनू सी नारियां करूँ।'[1]

धीरे से चाकर ने पूछा—'बेचोगे इसे?'

नंदू ने कहा—'बेचने लाई तो मंडी मां आई हूँ।'[2]

'तो फिर बताओ कितने की होगी?' चाकर ने पूछा।

नंदू ने नख से शिख तक चाकर पर एक दृष्टि डाली और हँसते हुए बोल
—'थन्ने चाही जे का [illegible] धनी थेई मोल लेसी।'[3]

'मुझे चाहिए'—चाकर ने दृढ़ता से कहा।

'नंदू ने उपेक्षा से सिर हिलाया। इस मजदूर की यह बिसात कि ऐसी सुन्दर सांडनी मोल ले—'तू कि लेसी?'

चाकर की जेब में पड़े हुए डेढ़ सौ के नोट जैसे बाहर उछल पड़ने को व्या
हो उठे, तनिक जोश के साथ उसने कहा—'तुम्हें इससे क्या, कोई ले, तुम्हें अपनी
कीमत से गरज है, तुम मोल बताओ।

---

१ यह एक हो क्या यह तो सब ही सुन्दर है। मैं इन्हें चारा और चमूनो (चना
और मोठ) देता हूँ।

२ बेचने के लिए ही तो बाजार में आया हूँ।

३ तुझे चाहिए या तू अपने मालिक के लिए मोल ले रहा है?

नंदू ने उसके जीर्ण-शीर्ण कपड़ों, घुटनों से उठे हुए तहमद और जैसे नूह के वक्त से भी पुराने जूते को देखते हुए टालने की गरज से कहा 'आ जा तू इमी पिरो से आई इंगो मोल तो आठ बीसी सूं घाट के नाहीं।'"[1]

—काफी उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

इस विवेचन के उपरान्त हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'संवाद-सौन्दर्य का निर्वाह आज की कहानी की प्रमुख विशेषता है।'"[2]

१ जा तू कोई ऐसी वैसी साइकी नहीं ले इसका मूल्य तो १६०) से कम नहीं।
२ कहानी का रचना-विधान—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा (पृष्ठ ११६)

कहानी में देश-काल तथा वातावरण

: ५ :

यों तो देश-काल तथा वातावरण का चित्रण उपन्यास में अवश्य किया जाता है लेकिन इसकी आवश्यकता कहानी में भी प्रतीत होती है यद्यपि उपन्यास की अपेक्षा कहानियों में इसके लिए स्थान कम ही रहता है और इसलिए कहानीकार अत्यंत संक्षेप में ही घटना तथा पात्रों से संबंधित स्थान काल तथा वातावरण का चित्रण अवश्य करता है जिससे कि कथानक में *यथार्थ चित्रण तथा विविध चरित्रों* के कार्यों एवं विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति हो पाती है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में 'वास्तविक जीवन देश काल और जीवन की विभिन्न सत् असत् परिस्थितियों से निर्मित होता है अतएव इन तत्त्वों का एक स्थान पर संचयन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथावस्तु और उसके संचालक पात्रों का संबंध उक्त स्थितियों से होता है अर्थात् इनका उद्गम सूत्र और सम्बन्ध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा।'[1]

स्मरण रहे रंगमंच पर्दों, वेशभूषा आदि के द्वारा नाटक की स्थिति और वातावरण से परिचित होना सहज कार्य है परंतु कहानी अभिनेय नहीं है अतः स्वाभाविक ही उसमें स्थिति और वातावरण के लिए प्रसंगानुसार देश काल परिस्थिति के चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं जिससे कि पाठक कहानी की मूल संवेदना और भावचक्र से अपना तादात्म्य स्थापित कर पाता है। वस्तुतः कथा-साहित्य के इस तत्त्व से कहानी का आकर्षण द्विगुणित हो उठता है क्योंकि इससे कहानी के पठन पाठन में पाठक का मनन आकर्षण और प्रेरणा प्राप्त होता है तथा उसके मस्तिष्क में भी कहानी में वर्णित देश-काल तथा स्थिति के अनुरूप वातावरण की सृष्टि हो जाती है और कहानी पढ़ते समय ही नहीं अपितु कहानी समाप्त करने के पश्चात् भी उस पर्याप्त समय तक उसमें वर्णित वातावरण की स्मृति रहती है अतः न केवल प्रारंभिक

१ हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डा० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ११७)

हिंदी कहानी लेखकों ने अपितु आधुनिक कहानीकारों ने भी इस सहज प्रभविष्णुता और शक्ति उत्पन्न करने वाले तत्त्व को अपनाया है तथा पाश्चात्य विचारकों ने भी उसे एक प्रभावशाली तत्त्व माना है।[१] यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कहानी में वातावरण का चित्रण करना या वातावरण प्रधान कहानी लिखना सहज साध्य नहीं है और यदि पर्याप्त सतर्कता बरती न जाए तो भ्रांतिवश त्रुटियों की भी अधिकता हो सकती है।[२]

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐतिहासिक कहानियों में तो देश-काल तथा वातावरण का यथातथ्य चित्रण आवश्यक समझा जाता है क्योंकि इससे कहानी के युगानुरूप वर्णन से परिचित होने का पाठकों को अवसर मिलता है और हम देखते हैं कि हमारे ऐतिहासिक कथाकारों की रचनाओं में इस प्रकार के कई सुन्दर तथा स्वाभाविक उदाहरण उपलब्ध भी होते हैं[३] परन्तु साथ ही सामाजिक कहानियों में

---

१ "Local colout, as the term implies makes its appeal largely to the eye of the reader Atmosphere on the other hand makes its appeal almost entirely to the emotion One is objective and other is subjective One must be true to the fact the other true to a given mood either of the author or of his creature, the leading character

Local colour attempts to harmonize the details of setting and charactep with the actual conditions of a given time and place atmosphere attempts to harmonize setting and character with the feeling of a charac ter in certain time and place. Thus it will be seen that the one is usua lly perceived by the intellect the other by the emotions

—A Manual of Short Story Art by A M Glenn Clark PP 72

२ "Many students get the notion that environment is atmosphere and so they fall into the technical blunder of trying to produce atmosphere by elaborate descriptions of scenery Their belief is false and their practice only occasionally sound. The atmosphere is be it repeated, the impression which environment makes upon the beholder and which the beholder in writing seeks to convey to his readers

—The Art and Business of Story Writing by W B Pitkin (PP 193-194)

३ "विदिशा (भिलसा) नगरी का आज मनोहर सिंगार हुआ था। राजपथ सींचे गए थे। गलियों तक में वासित जल की सुगंध उठ रही थी। नागरिकों ने अपने द्वारों को केलों के खंभों, पुष्प-पल्लव-अंकित वंदनवारों और छोटी-छोटी मालाओं से सुसज्जित करने में एक दूसरे से होड़ लगा रखी थी। तरुणों की तो बात ही क्या, नागरिक और नागरिकाओं तक ने आज नए वस्त्र और तरह तरह के आभूषण पहन रखे थे। हाट बाजार

कहानी में देश-काल तथा वातावरण

५

यों तो देश-काल तथा वातावरण का चित्रण उपन्यास में अवश्य किया जाता है लेकिन उसकी आवश्यकता कहानी में भी प्रतीत होती है यद्यपि उपन्यास की अपेक्षा कहानियों में उसके लिए स्थान कम ही रहता है और इसलिए कहानीकार अत्यंत संक्षेप में ही घटना तथा पात्रों से संबंधित स्थान काल तथा वातावरण का चित्रण अवश्य करता है जिससे कि कथानक में यथार्थ चित्रण तथा विविध पात्रों के भावों एवं विचारों की पूर्ण अभिव्यक्ति हो पाती है। डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में 'वास्तविक जीवन देश काल और जीवन की विभिन्न स्थूल सूक्ष्म परिस्थितियों से निर्मित होता है अतएव इन तत्त्वों का एक स्थान पर संघटन और चित्रण करना कहानी में वातावरण उपस्थित करना है। कहानी की कथावस्तु और उसके संचालक पात्रों का संबंध उन्हीं स्थितियों से होता है अर्थात् इनका उद्गम मूल और सम्बन्ध किसी देश में होगा या किसी विशिष्ट स्थान अथवा प्रदेश से होगा।'[1]

स्मरण रहे रंगमंच पर्दों, वेशभूषा आदि के द्वारा नाटक की स्थिति और वातावरण से परिचित होना सहज भले है परंतु कहानी अभिनेय नहीं है अतः स्वाभाविक ही उसमें स्थिति और वातावरण के लिए प्रसंगानुसार देश काल-परिस्थिति के चित्र प्रस्तुत करने पड़ते हैं जिससे कि पाठक कहानी की मूल संवेदना और भावक्षेत्र से अपना तादात्म्य स्थापित कर पाता है। वस्तुतः कथा-साहित्य के इस तत्त्व से कहानी का आकर्षण द्विगुणित हो उठता है क्योंकि इससे कहानी के पठन पाठन में पाठक को सरस आकर्षण और प्रेरणा प्राप्त होता है तथा उसके मस्तिष्क में भी कहानी में अंकित देश-काल तथा स्थिति के अनुरूप वातावरण की सृष्टि हो जाती है और कहानी पढ़ते समय ही नहीं अपितु कहानी समाप्त करने के पश्चात् भी उस पर कुछ समय तक उसमें अंकित वातावरण की स्मृति रहती है अतः न केवल प्रारंभिक

1. हिंदी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ ११२)

हिंदी कहानी लेखकों ने अपितु आधुनिक कहानीकारों ने भी इस सहज प्रभविष्णुता और शक्ति उत्पन्न करने वाले तत्त्व को अपनाया है तथा पाश्चात्य विचारकों ने भी इसे एक प्रभावशाली तत्त्व माना है।[1] यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि कहानी में वातावरण का चित्रण करना या वातावरण प्रधान कहानी लिखना सहज साध्य नहीं है और यदि पर्याप्त सतर्कता बरती न जाए तो प्रायः त्रुटियों की भी अधिकता हो सकती है।[2]

इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐतिहासिक कहानियों में तो देश काल तथा वातावरण का यथातथ्य चित्रण आवश्यक समझा जाता है क्योंकि इससे कहानी के युगानुरूप वर्णन से परिचित होने का पाठकों को अवसर मिलता है और हम देखते हैं कि हमारे ऐतिहासिक कथाकारों की रचनाओं में इस प्रकार के कई सुन्दर तथा स्वाभाविक उदाहरण उपलब्ध भी होते हैं[3] परन्तु साथ ही सामाजिक कहानियों में

---

१ "Local colour, as the term implies makes its appeal largely to the eye of the reader Atmosphere on the other hand makes its appeal almost entirely to the emotion One is objective and other is subjective One must be true to the fact, the other true to a given mood either of the author or of his creature, the leading character

Local colour attempts to harmonize the details of setting and charactep with the actual conditions of a given time and place atmosphere attempts to harmonize setting and character with the feeling of a character in certain time and place Thus it will b seen that the one is usually perceived by the intellect, the other by the emotions "

—A Manual of Short Story Art by A M Glenn Clark PP 72

२ "Many students get the notion that environment is atmosphere and so they fall into the technical blunder of trying to produce atmosphere by elaborate descriptions of scenery Their belief is false and their practice only occasionally sound. The atmosphere is be it repeated the impression which environment makes upon the beholder and which the beholder in writing seeks to convey to his readers.

—The Art and Business of Story Writing by W B Pitkin (PP 193-194)

३ "विदिशा (भिलसा) नगरी का आज कोना-कोना सिंगार हुआ था। राजपथ सींच गए थे। गलियों तक में वासित जल की सुगंध उठ रही थी। नागरिकों ने अपने द्वारों को बंदनवारों, पुष्प-पल्लव-खचित मंगल कलशों और नन्ही-नन्ही मालाओं से सुसज्जित करने में एक दूसरे से होड़ लगा रखी थी। तरुणों का तो कहना ही क्या, नागरिक और नागरिकाओं तक ने आज नए वस्त्र और तरह तरह के आभूषण पहन रखे थे। हाट बाजार

भी देश-काल तथा परिस्थितियों का चित्रण अपेक्षित है क्योंकि इससे कहानी में इतनी अधिक व्यापकता आ जाती है कि उसमें न केवल देश-काल का चित्रण ही अत्यंत व्यंजनात्मक रूप में होता है अपितु कहानी में उसकी सम्पूर्ण संवेदना, पात्रों की गति के साथ पाठकों के चक्षुपटल के सामने अंकित हो जाती है।[1] गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' के प्रारंभिक अंश में देश-काल की अभिव्यक्ति बड़ी कुशलता के साथ की गई है और इस प्रकार के अवतरण पाठकों में न केवल आक-र्षण उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं अपितु इनके द्वारा सम्पूर्ण कहानी में कलात्मकता आ जाती है।[2] स्मरण रहे गुलेरी जी की भाँति आधुनातन कहानीकारों

की दुकानें नाना पक्षों से सजी हुई थी। आसपास के ही नहीं दूर दूर के गाँव के लोगों ने सड़कों और गलियों को सवेरे से ही भर दिया था। दुकानदारों की बन आई थी। मिठाई वाले पकवान रहे थे कि और लड्डू-पेड़े क्या नहीं बनाए? सुनारों ने जेवरों का बाजार [illegible] रखने में अधिक संकोच से काम नहीं लिया था और उनकी [illegible] थी ही। मालियों का [illegible] फूल-मालाएँ तड़के ही खत्म हो चुकी थीं। सिर्फ महिलाओं के ही [illegible] के लिए उनकी जरूरत नहीं थी बल्कि रास्ते के तोरणों और घरों को भी उनसे सजाया था। फूलों के लिए वसन्त का अपार भंडार खुला हुआ था पर वह भी इस [illegible] सका। यदि यह कहा जाय कि [illegible] फूलों पर मरती है, तो अतिशयोक्ति न होगी। आज की यहाँ की तरुणियाँ फूलों पर यहाँ मरती। [illegible] भी उनसे पीछे नहीं है। माघ के सिरमौर देश मगध की संतानों के लिए उनके नगर पाटलिपुत्र में फूलों की इतनी भरमार रहती है कि उसे पुष्पों का पुर कहा जा सकता है।"

—वही [illegible] राहुल सांकृत्यायन

१ 'अपने श्वसुर का [illegible] मामा [illegible] अपनी मातृभूमि की स्मृति हो आई। [illegible] के वे नये पहाड़ उन पहाड़ों पर [illegible] हुई भेड़ें और उन भेड़ों के साथ साथ [illegible] हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर युवतियाँ। उन्हीं भूमि की [illegible] पर [illegible] पड़ा होता है। और वहीं [illegible] और उसी भूमि की मटियाली [illegible] पर [illegible] [illegible] और सबसे [illegible] बादाम की बहार आती है। वहाँ बादाम है, वहाँ [illegible] है [illegible]

—[illegible] [illegible] विद्यालंकार

[illegible] पुष्पगन्ध।

२ '[illegible] के [illegible] बाबा की [illegible] से [illegible] दिन गई है और [illegible] हमारी प्रार्थना है कि [illegible] बातों की बानी का मरहम लगाएँ। [illegible] पीड़ा [illegible] के [illegible] हुए [illegible] पानी में [illegible] जाते हैं, कभी [illegible] अपने [illegible] की [illegible] होने पर [illegible] जाते हैं [illegible] और [illegible] भर की [illegible] [illegible] घोड़ों को [illegible] ही का [illegible]

ने भी विस्तार के साथ देशकाल की परिस्थितियों का चित्रण किया है और अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नई पीढ़ी के कहानीकारों में भी स्वाभाविक ही इस ओर रुचि होनी चाहिए। 'उसने कहा था' की भाँति होमवती की एक कहानी 'घास का धनी' में भी विस्तार के साथ देश काल का चित्रण किया गया है[1] और विचारपूर्वक देखा जाय तो हिंदी कथा साहित्य की नयी प्रतिभाओं की कहानियों में भी इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर संख्या में दृष्टिगोचर होंगे।[2] साथ ही यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि

और खोमचे के बम्बूकार्ट वाले, भाक की सीख चखते जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में हर लड़की वाले के लिए ठहर कर सब का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी। हटो भाई जी। ठहरना भाई! आने दो लालाजी! हटो बाछा! —कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों और गन्ने खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमा वालिए, हट जा पुत्तां प्यारिये, बच जा लम्बी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? —बच जा।"

—उसने कहा था : चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

१ देखिए—

"उस बड़े बाजार के ठीक बीचो बीच घनश्याम की दुकान थी, जिसका नाम शहर में ही विख्यात न था, बल्कि आस-पास के गाँव और नगरों में भी उसके जोड़ का दूसरा हलवाई नहीं था। मिठाई नमकीन के अलावा हलुवा तथा मुलायम पूरी और गरम-गरम कचौरियाँ खाने के लिये दूर दूर के लोग उसकी दुकान पर पहुँच जाते और सुबह से लेकर रात के बारह बजे तक कारीगरों के अलावा घनश्याम तक को दम मारने की फुरसत नहीं मिलती थी। फिर एक घंटे तक मान मनाने का चक्कर चलता और बीच बीच में ताजा मुलायम पान, दूध तथा मलिकों के दिनों में ठंडाई का दौर चलता रहता। किसी के लिए मनाही नहीं थी। जो भी आ बैठा, बिना कुछ खाए पिए जा नहीं सकता था। यही कारण था कि सारे नगर की नाक बन गया था वह छोटा सा हलवाई। बड़े बड़े रईस उसका आदर मान करते थे। जिस विवाह में घनश्याम ने काम नहीं किया वह रद्दी समझा जाता था। उसकी बनाई मिठाई तथा खस्ता कचौरी दूर दूर तक विख्यात थी।"

—घास का धनी : होमवती

२ एक उदाहरण देखिए—

"पूरी इमारत खूब रंगा चुना है। उसके फाटक पर इंद्रधनुषी आकार के बोर्ड लगे हुए हैं। मैचरमली पेन्टर ने बड़े सधे हाथ से उन बोर्डों को बनाया है। केवल देखने बाहर

कहानी में वातावरण भौतिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का होता है तथा भौतिक वातावरण की सृष्टि करते समय कभी-कभी वातावरण का चित्रण पात्र-विशेष को उद्दीप्त करनेवाला भी होता है अर्थात् प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण इस प्रकार किया जाता है कि वे पात्रों की मानसिक स्थिति की व्याख्या करने में सहायक हों अथवा पात्रों या पात्र-विशेष की मानसिक दशा से सम्बंधित से प्रतीत होते हों।[1] रसशास्त्र

में बहुत सी ऐसी दुकानें हो गयी हैं जिन पर साइन बोर्ड लटक गए हैं। साइन बोर्ड लगवाना मानो फैशन का बढ़ना। बहुत दिन पहले जब दीनानाथ हलवाई की दुकान पर पहला साइनबोर्ड लगा था तो वहाँ दूध पीने वालों की संख्या एकाएक बढ़ गयी थी। फिर बाढ़ आ गयी और नये नये तरीके और बेल-बूटे तैयार किये गये। 'ॐ' या 'जयहिन्द' से शुरू करके 'एक बार अवश्य परीक्षा कीजिए' या 'मिलावट साबित करने वाले को सौ रुपया नकद इनाम' की मनुहारों या ललकारों पर सिलसिला समाप्त होने लगी।"

—पत्तियों के दिन   कमलेश्वर

और भी—

पलंग की दाईं ओर दीवार पर अमर श्याम का एक चित्र टँगा हुआ था जिसके फ्रेम में लगे शीशे पर दरार आ गयी थी। उस चित्र को दीवार पर लगे कितने साल बीत चुके थे! महीनों की धूल चित्र के फ्रेम और शीशे पर बिछी हुई थी। चित्र ही क्या, कमरे में जो चीज एक बार जिस स्थान पर रख दी जाती थी फिर उसे वहाँ से हटाने की कभी नौबत नहीं आती थी। तीन चार मास बाद जब कभी मकान मालिक पर मैं सफेदी करवाता तो सब सामान जबरदस्ती उठाया जाता था और उसके बाद पड़ोसन अपनी मर्जी से वहीं सामान रख देती फिर उस कमरे वाला कोई व्यक्ति घर में नहीं था। कोने में पड़ा टूटा मिस टेबल जिसके शीशे और पीछे की दीवार के खाली स्थान में मकड़ियों ने जन पिनन जाले बुन लिये थे। खिड़की और रोशनदान के बीच में किसी हिरन के बाले वाले दो सींग दरवाजे के पास एक कील पर टँगा बरसों पुराना एक कैलेंडर, कोने में रखी शहतूत की लकड़ी की बनी तीन पैरों वाली कुर्सी जिसके दोनों ओर शेरों के मुँह बने थे—सब मानो अपने अपने स्थानों पर बस एक दूसरे की ओर सूनी आँखों से ताका करते थे।

—हुस्ना बीबी   रामकुमार

१ '[illegible] भोजन के पश्चात् कवि ने बरामदे में आकर बाहर पहाड़ों के ऊपर चंद्रमा के मधुर प्रकाश को देखा। सामने बहती चंचल पानी में बिखरी की लहर की तरह फैली हुई मनीर को पास की ओर उसकी नजर गई। नदी के प्रवाह की गंभीर घरघराहट को सुनकर वह सिहर उठा। कितने ही क्षण मुँह उठाये वह मुग्ध भाव से खड़ा रहा। पर्वतीय नदी के उद्दाम प्रवाह को उस उजली चाँदनी में देखने की इच्छा से कवि की आत्मा व्याकुल हो उठी। आनन्द और उमंग का वह पूर्णमा सौन्दर्य के रूप आह्वान की उपेक्षा न कर सका।

—[illegible]

की दृष्टि से इस प्रकार के वर्णन चाहे उद्दीपन विभाव के अंतर्गत अवश्य आयें (यद्यपि इस प्रकार के सभी चित्र उद्दीपन विभाव के अंतर्गत नहीं आते लेकिन उनमें अस्वाभाविकता नहीं रहती।[1]

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि कथावस्तु में स्वाभाविकता लाने के लिए कहानीकार प्रसंगानुसार उन स्थलों का भी चित्रण करता है जो कि उसकी वास्तविकता बनाए रखने के लिए स्वाभाविक हैं। कहानी चाहे चरित्र-प्रधान हो या घटना प्रधान लेकिन उसमें ऐसे अवसर अवश्य आते हैं जब कि वातावरण का चित्रण कर पाठकों को कथा-सौंदर्य का आनन्द प्रदान किया जाए। कहानीकार जान-बूझकर या बलात् इस प्रकार के प्रसंगों की सृष्टि नहीं करता अपितु स्वाभाविक ही इस तरह के चित्र उसकी कहानियों में संश्लिष्ट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ 'पानवाला' कहानी में पंत जी ने पीताम्बर का चित्रण करते समय उसकी दूकान और कमरे का यथातथ्य वर्णन भी किया है, देखिए—

"पान, सुपारी, सिगरेट, बीड़ी—सब भी उसी प्रकार, उन्हीं जगहों पर दूकान में रक्खे हैं। चूने-कत्थे के बर्तन भी वही पुराने पहचाने हुए हैं। चूने की लकड़ी पिसकर पतली पड़ गई है, कत्थे की पपड़ी जम जाने से और मोटी हो गई है। दूकान के बीचो बीच वही पुराना लैम्प टँगा है जो उसके किसी मित्र की इनायत है, चिमनी के ऊपर का भाग टीन की पत्ती का बना हुआ है। सामने एक मझोले आकार का शीशा लगा है, जिसके पारे में धब्बे और चकत्तियाँ पड़ जाने के कारण

और भी—

"वह रात कितनी भीगी थी कितनी गहरी थी! गर्जते हुए बादलों का निनाद सुनकर भी बिजली चमकती चली जा रही थी। एक महीन-सी रेखा जिस गति से कजरारे बादलों को उन्मत्त किए जा रही थी और पति की गोद में पड़ी कल तक की अबस और दुबल नारी आज रोकर भी हँसती जा रही थी।

—चार दिन कृष्णा सोबती

१ निम्नांकित उद्धरण में प्रकृति चित्रण युद्ध की भयानकता को और भी अधिक स्पष्ट करता है—

"एक महत्त्वपूर्ण अभियान के विध्वंस करने की तयारी थी। प्रकृति काँप उठी। घोड़ों और हाथियों की चीत्कार से आकाश थर्रा उठा। तूफानी हवा के थपेड़ों से वन के वृक्ष एकाकार बनते हुए झूम रहे थे। पशु-पक्षी मस्त होकर आपस में लड़ने लगे। बड़ा विकट समय था।

उस भयानक संग्राम में राजपूत सेना मारवाड़ी बन रही थी। इन्हीं घाटी की घाटियों पर भीम कोप धनुष लिए उन्मत्त समान गढ़ थे।

—विदाई विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

कौंच के पीछे से बीच में द्रौपदी का तिरछा रंगीन चित्र चिपका दिया गया है। अंदर के कमरे में मूँज की चारपाई और बिस्तरा, खूँटी पर टँगा कोट, सिगरेट दिया सलाई के खाली डिब्बे, एक लोहे की अँगीठी और कुछ चाय का सामान रखा है बाहर वही पुराना काठ का बेंच पड़ा है जिस पर सुबह, शाम, दोपहर हर वक्त दो चार दोस्त लोग बैठे गपशप करते, एक दूसरे की खिल्ली उड़ाते और शहर की बुराइयों एवं खराबियों की चर्चा करते हैं।"

—पानवाला सुमित्रानंदन पंत

बहुत सी ऐसी कहानियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें कि वातावरण का समष्टि प्रभाव भी देखा पड़ता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार की कहानियों का अध्ययन करने पर पाठकों के चित्त पर न केवल पात्र विशेष के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है अपितु साथ ही वह उसके परिपार्श्व चित्रण से भी प्रभावित होता है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी रोज में (जिसका कि शीर्षक उन्होंने अब 'गैंग्रीन' कर दिया है) इस प्रकार के वातावरण का वास्तविक चित्रण दृष्टिगत पड़ता है। कहानी का प्रारंभ ही उन्होंने इस प्रकार किया है मानों वे पाठक को किसी अभिशप्त वातावरण में ले जा रहे हैं[1] और कहानी के अंत में तो वातावरण सम्बंधी प्रभाव अन्वित होकर चमत्कार हो उठते हैं।[2] साथ ही बहुत सी कहानियों में कभी-कभी

---

१ देखिए–

"दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानों उस पर किसी शाप की छाया मंडरा रही हो। उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना सा फैल रहा था ......"

मेरी आहट सुनते ही मालती बाहर निकली। मुझे देखकर पहचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी सी और फिर पूर्ववत हो गई। उसने कहा आ जाओ। और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली मैं भी उसके पीछे हो लिया।

—गैंग्रीन (रोज) अज्ञेय

२ देखिए–

"तभी ग्यारह का घंटा बजा। मैंने [illegible] नहीं [illegible] अकस्मात् किसी अशरण प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की [illegible] की भाँति उठी और धीरे धीरे [illegible] और घंटा ध्वनि के कम्पन के साथ ही दूर हो जाने वाली आवाज में उसने कहा—ग्यारह बज [illegible] ......।"

—गैंग्रीन (रोज) अज्ञेय

कुछ ऐसे अवतरण भी दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें कि कहानीकार अपनी सुकोमल भावतूलिका से प्रकृति के ऐसे ही रंग कल्पना के रंग से अनुरंजित करते हैं जो कि मानव मात्र को आकर्षित करने की सामग्री अपने पास रखते हैं[1] और यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो इस प्रकार के चित्र कभी-कभी कवित्वमय भी प्रतीत होंगे।[2]

स्मरण रहे कि परिपार्श्व चित्रण भी कई प्रकार से किया जाता है और कभी-कभी तो उसका सीधा सादा एवं स्पष्ट वर्णन ही कर दिया जाता है[3] तथा

---

१ देखिए—

वह दिन बड़ा ही सुहावना था। मेघ-मालाएँ घिरी हुई थीं और तरुण यौवन को उत्फुल्ल करने वाला मारुत सोम नील-लहरी में लीन था। मयूरी निकटवर्ती उद्यान में कभी क्रीड़ा और नृत्य के विविध दृश्यों की झाँकी दिखाती हुई रंग मंच में अपनी आलोक-माला प्रस्फुटित करती थी कभी अपनी स्वर माधुरी से साहित्य रसिकों का मन हरण कर उनके हृदयों में आनंद मंदाकिनी प्रवाहित करती थी।

—उत्सव भाव भगवतीप्रसाद वाजपेयी

और भी—

'तब तूफानी हवा थम चुकी थी। आकाश में कहीं कोई मलीनता नहीं थी। मेघ थके पथिक की भाँति हिम शिखरों पर आराम कर रहे थे। दिशाएँ निखरी नीलिमा से मुखरित हो रही थीं और अरुण किरणों का मुकुट पहन कर कैलाश की गरिमा नववधू की तरह मुस्करा उठी थी।

—सुनीती : विष्णु प्रभाकर

२ देखिए—

'ऊपर आकाश के नीले फर्श पर एक छोटा श्वेत बादल इठला रहा था। नीचे पहाड़ों की पथरीली गोद में नदी भागी जा रही थी। दूर स्थित वनों से लकड़ी के भारी लट्ठे अपनी उफनती हुई छातियों पर सँभाले वह किसी तीव्र गति गाड़ी के समान दौड़ी जा रही थी जैसे इस भार को हल्का करने की चिन्ता इस तीव्रगति का कारण हो। उसके यौवन में कितना प्रचण्ड और उसके सौन्दर्य में कितना माधुर्य था। परन्तु उसकी उग्रता कितनी प्रचण्ड और उसकी करता कितनी भयंकर थी। उसका मदमस्त यौवन हृदय को उल्लसित और उसका उग्र रूप मन को भयभीत करता।

—देवता सत्यप्रकाश संगर

३ देखिए—

"एक छोटी सी झोंपड़ी है। रात के आठ बज गए हैं। उसमें दीपक नहीं जला है। आकाश में जो चाँद उगा है उसी का धूमिल प्रकाश झोंपड़ी में दो प्राणियों के मलिन चित्र दीवारों पर अंकित कर रहा है। एक तो बुढ़िया जिसकी उमर ५० से कम नहीं है। दूसरा जो सोया हुआ है वह पाँच छः वर्ष का बच्चा है। वह बुढ़िया के जवान बेटे का बच्चा

काँच के पीछे से बीच में द्रौपदी का तिरछा रंगीन चित्र चिपका दिया गया है। अंदर के कमरे में मूँज की चारपाई और बिस्तरा, खूँटी पर टँगा कोट सिगरेट दिया सलाई के खाली डिब्बे, एक लोहे की अँगीठी और कुछ चाय का सामान रहता है। बाहर वही पुराना काठ का बेंच पड़ा है जिस पर सुबह, शाम, दोपहर हर वक्त दो चार दोस्त लोग बैठे गपशप करते, एक दूसरे की खिल्ली उड़ाते और शहर की बुराइयों एवं खराबियों की चर्चा करते हैं।"

—पानवाला सुमित्रानंदन पंत

बहुत सी ऐसी कहानियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें कि वातावरण का समष्टि प्रभाव भी देख पड़ता है और इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार की कहानियों का अध्ययन करने पर पाठकों के चित्त पर न केवल पात्र विशेष के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है अपितु साथ ही वह उसके परिपार्श्व चित्रण से भी प्रभावित होता है। अज्ञेय की प्रसिद्ध कहानी रोज में (जिसका कि शीर्षक उन्होंने अब 'गैंग्रीन' कर दिया है) इस प्रकार के वातावरण का वास्तविक चित्रण दीख पड़ता है। कहानी का प्रारंभ ही उन्होंने इस प्रकार किया है मानों वे पाठक को किसी अभिशप्त वातावरण में ले जा रहे हैं[1] और कहानी के अंत में तो वातावरण सम्बन्धी प्रभाव अन्वित होकर एकाकार हो उठते हैं।[2] साथ ही बहुत सी कहानियों में कभी-कभी

---

१ देखिए—

"दोपहर में उस सूने आँगन में पैर रखते ही मुझे ऐसा जान पड़ा मानों उस पर किसी शाप की छाया मँडरा रही हो। उसके वातावरण में कुछ ऐसा अकथ्य अस्पृश्य किन्तु फिर भी बोझल और प्रकम्पमय और घना सा फैल रहा था ……

मेरी आहट सुनते ही बाहर मालती निकली। मुझे देखकर पहचान कर उसकी मुरझाई हुई मुख मुद्रा तनिक से मीठे विस्मय से जागी सी और फिर पूर्ववत हो गई। उसने कहा आ जाओ। और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये भीतर की ओर चली मैं भी उसके पीछे हो लिया।"

—गैंग्रीन (रोज) अज्ञेय

२ देखिए—

"अभी ग्यारह का घंटा बजा। मैंने अपनी भारी हो रही पलकें उठाकर अकस्मात् किसी अस्पष्ट प्रतीक्षा से मालती की ओर देखा। ग्यारह के पहले घंटे की खड़कन के साथ ही मालती की छाती एकाएक फफोले की भाँति उठी और धीरे धीरे बैठने लगी और घंटा ध्वनि के कम्पन के साथ ही मूक हो जाने वाली आवाज से उसने कहा—ग्यारह बज गए ……।"

—गैंग्रीन (रोज, अज्ञेय

ऐसे अवतरण भी दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें कि कहानीकार अपनी सुकोमल भावतूलिका से प्रकृति के वे ही रंग कल्पना के रंग से अनुरंजित करते हैं जो कि मानव मात्र को आकर्षित करने की सामग्री अपने पास रखते हैं[1] और यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो इस प्रकार के चित्र कभी कभी कवित्वमय भी प्रतीत होंगे।[2]

स्मरण रहे कि परिपार्श्व चित्रण भी कई प्रकार से किया जाता है और कभी-कभी तो उसका सीधा सादा एवं स्पष्ट वर्णन ही कर दिया जाता है[3] तथा

---

१ देखिए—

वह दिन बड़ा ही सुहावना था। मेघ-मालाएं घिरी हुई थीं और तरुण जीवन को उत्फुल्ल करने वाला मारुत कोमल लोल-लहरी में लीन था। मयूरी निकटवर्ती उद्यान में कभी क्रीड़ा और नृत्य के विविध दृश्यों की झाँकी दिखाती हुई रंग मंच में अपनी आलोक-माला प्रस्फुटित करती थी कभी अपनी कूक माधुरी से साहित्य रसिकों का मन हरण कर उनके हृदयों में आनंद मंदाकिनी प्रवाहित करती थी।

—नवतम्य घात : भगवतीप्रसाद वाजपेयी

और भी—

'तब तूफानी हवा थम चुकी थी। आकाश में कहीं कोई मलीनता नहीं थी। मेघ थके पथिक की भांति हिम शिखरों पर आराम कर रहे थे। दिशाएं निखरी नीलिमा से मुखरित हो रही थीं और अरुण किरणों का मुकुट पहन कर कैलाश की गरिमा नववधू की तरह मुस्करा उठी थी।

—धूमैली : विष्णु प्रभाकर

२ देखिए—

'ऊपर आकाश के नीले पथ पर एक छोटा श्याम बादल उड़ता रहा था। नीचे पहाड़ों की पथरीली गोद में नर्वदा भागी जा रही थी। दूर निविड़ वनों में लकड़ी के भारी लट्ठे अपनी उछलती हुई छातियों पर संभाले वह किसी तीव्र गति धाड़ी के समान दौड़ी जा रही थी जैसे इस भार को हल्का करने की चिन्ता इस गीतगति का कारण हो। उसके यौवन में कितना प्रचण्ड और उसके सौन्दर्य में कितना माधुर्य था। परन्तु उसकी उमंग कितनी प्रचण्ड और उसकी क्रूरता कितनी भयंकर थी। उसका मादक यौवन हृदय को उन्मत्त और उसका रुप मन को भयभीत करता।"

—देवता : गन्धटदान मुंशर

३ देखिए—

एक छोटी सी कोठरी है। रात के आठ बज गए हैं। उसमें दीपक जल रहा है। आकाश में जो चांद उगा है उसी का धूमिल प्रकाश [illegible] चित्र दीवारों पर अंकित कर रहा है। एक ता बुढ़िया [illegible] है। दूसरा जो सोया हुआ है वह पांच छः वर्ष का बच्चा है। [illegible]

कभी-कभी इनमें चित्रात्मकता भी दीख पड़ती है" और कभी-कभी ये ही चित्रण है। यही टीन इस झोपड़ी के मलिन चित्र की तरह उस बुढ़िया का आधार है। इस झोपड़ी में बस यही दो चित्र और व मामूली दीप और सब जो होना चाहिए, कुछ भी नहीं दीखता है। सब जैसे अंधकार में मग्न है पर सच तो यह है कि उसके पास कुछ है ही नहीं काम ने टीन उन्हें वैसे ही विचित्र कर दिया है।

— कागज की टोपी वाचस्पति पाठक

और भी—

सन्ध्या का समय है और गर्मी का मौसम। दिन भर की तपिश से तंग आकर लोग ऊपर छतों पर आ रहे हैं। कहीं छतों पर छिड़काव हो रहा है कहीं फूलों के गमले सींचे जा रहे हैं कहीं बिस्तर ठीक किए जा रहे हैं। पुरुष या तो अभी दूकानों से आये नहीं या सैर को निकल गए हैं। स्त्रियाँ घर के कामकाज से छुट्टी पाकर खाने का सामान ऊपर ले जाने में व्यस्त हैं। नीचे भोजन का क्या आनन्द। ऊपर छत पर खायेंगे बच्चे झूलेंगे और हवा चली तो ठंडे सींकों का भी आनन्द लेंगे। दिन भर खूब गरमी पड़ी है। ईंट पत्थर तक भुन गए हैं। शायद रात को ठंडी हो वायु चले, पर आशा तो नहीं है।

—दूरी उपेन्द्रनाथ अश्क

देखिए—

कार्तिक के दिन थे। वर्षा बीत चुकी थी। शरद् के समय आधी रात को भी हलचल छा रही थी परन्तु उसमें रात की भयंकरता और डर न था।

पहाड़ों के ढलवानों पर खेतों की जुताई हो रही थी। कुनकुनी धूप में पास से सभी पहाड़ियाँ पहाड़ों के पार्श्वों पर चीड़ों के जंगल धुले अमरपुत खेत मकानों की धूम और स्नेह की छतें सब चकाचौंध हो रही थीं। तलहटी में जहाँ पानी कलकल बह रहा था वह गली हुई चाँदी सा झिलमिल कर रहा था। जहाँ वह स्थिर था वहाँ गगन के आकाश की प्रतिछाया से ऐसा भान पड़ता था मानों गगन की नीली साड़ी धोने के लिये भीग के बैठ हों।"

—[illegible]

और भी—

'सांझ का समय था। गायें लौट रही थीं। उनके पैरों से उठी हुई धूल झाड़ियों पर छा रही थी और संध्या के सौन्दर्य से रास्ता बिलकुल धूमिल हो गया था। उनके पीछे यह दूसरा सूरज था और झोपड़ियों में से सन्ध्या की रोटी पकाने का धुआँ गगन में मिल कर एक रहस्यमय वातावरण तैयार कर रहा था। डार पर उजाला था लेकिन हरा-हरा घास रहा था। [illegible] उसे काले पानी की लहर पर फिसल जाने का डर था।"

—अभिमान रांगेय राघव

आलंकारिक भी बन जाते हैं[1] परन्तु प्रकृति का यह सचेतन और संवेदनशील रूप कहानी की वास्तविकता को कभी कभी नष्ट कर देता है तथा उसमें केवल काव्यत्व ही शेष पड़ता है[2] और कभी-कभी तो इस प्रकार का पूर्ण चित्रण अनावश्यक सा प्रतीत होता है[3] अतः इस प्रकार के चित्रण से कुशल कहानीकार को अवश्य बचाना चाहिए अन्यथा उसकी कृति अस्वाभाविक प्रतीत होगी। इस प्रकार के चित्रण में व्यक्ति भी आता है और कहानीकार वातावरण का चित्र प्रस्तुत करते समय व्यक्ति चित्र के भी सरस उदाहरण प्रस्तुत करता है तथा ऐसे प्रसंगों में कहानीकार विस्तार के साथ

---

१ देखिए—

"चाँदनी रात थी। नदी का किनारा था। आकाश के तारे स्थिर थे और नदी में उनका प्रतिबिम्ब लहरों के साथ चंचल। एक स्वर्गीय संगीत की मनोहर और जीवनदायिनी प्राणपोषिणी ध्वनियाँ इस निस्तब्ध और तमोमय दृश्य पर इस प्रकार छा रही थीं—जैसे हृदय पर आशाएँ छायी रहती हैं, या मुख मंडल पर शोक।"

—आत्मसंगीत प्रेमचंद

और भी —

"धीरे-धीरे रात का रंग बदल चला। हवा में एकाएक शीतलता भी बढ़ गई और नमी भी। उस गीले स्पर्श से मानो एकाएक रात ने जान लिया कि वह नंगी और लज्जित हो कर, कुछ सिहर कर, धुन्ध के आवरण में छिप गई।

—नम्बर दस अज्ञेय

२ देखिए—

"क्षितिज में नील जलधि और व्योम का चुम्बन हो रहा है। शांत प्रदेश में शोभा की लहरियाँ उठ रही हैं। गोधूली का करुण प्रतिबिम्ब, बेला की बालुकामयी भूमि पर दिगन्त की प्रतीक्षा का आवाहन कर रहा है।

—समुद्र संतरण जयशंकर 'प्रसाद'

और भी —

"भगवान् भास्कर की भुवनमोहिनी कनक किरणावली अस्ताचल में अपना अस्तित्व छिपा रही थी। वाटिका का सौम्य समीरण मंद गति से डोल डोल कर नवागत पथिकों का स्वागत कर रहा था। इधर मधुरालापा कोकिला रसाल की डाल पर बैठकर बनश्री के साथ अठखेलियाँ कर रही थी, तो उधर मदमाते मधुलिह इतस्ततः अपनी गुंजनापुरी बिखेर रहे थे।

—मन की भगवती प्रसाद वाजपेयी

३ देखिए—

"आठ हजार फुट की ऊँचाई पर जून का महीना भी दिसम्बर से कम ठंडा नहीं होता। धूप वहाँ छिप चली। शांत वातावरण को वायु के तीव्र झोंके विक्षुब्ध कर रहे। उनके पीछे काले और श्वेत बादलों के दल बढ़ आने लगा सुन्दर दृश्य [illegible]

मानव रूप का भव्य चित्र अंकित करता है' परन्तु आधे या पूरे वाक्य में ही सम्पूर्ण

और पश्चिम से सफ़ेद बादल उमड़ें चले आते और परस्पर टकरा जाते। परन्तु उनकी टक्कर द्वेष के कारण नहीं थी। यह प्रेम का मिलाप था। दोनों सेनाएँ गले मिलती और आगे बढ़ती। उन दोनों में कितनी समझ थी कितना समझौता था। स्वयं जिया और दूसरों को जीने दो। सफ़ेद बादल जाकर काली घटाओं के कान में फूँकते कि मैदान खाली है और सुन्दर अवसर है। काली घटाएँ आकाश की नीलिमा को एकदम छिपा देतीं और पर्वतों की चोटियों पर पूर्ण शक्ति से बरसने लगतीं जैसे कई युगों का बदला ले रही हों। परन्तु वे ऊँची चोटियाँ उस हमले को धैर्यपूर्वक सहन करतीं।

उन चोटियों ने न जाने कब ऐसे कितने आक्रमण सहन किये थे। वे हजारों वर्ष से यही कुहराम देखती आई थीं। एक थके पुरुष की तरह वे उनसे घबराती नहीं थीं। वे उन्हें उसी प्रकार सहतीं जैसे धूप के ताप और हिम की ठण्डक को। बरसात में वर्षा न थमती सर्दियों में बर्फ़ न रुकती परन्तु वे अपनी जगह पर अटल खड़ी देखतीं और मुस्कराकर सब सहतीं। शायद वे जीवन के रहस्य को समझ गई थीं। जहाँ सर्दी और गर्मी आँधी और तूफ़ान बसन्त और पतझड़ आते और चले जाते हैं। जहाँ कुछ भी नित्य नहीं। दुःख और सुख अमीरी और गरीबी हार और जीत इन सबको यथार्थता धूप और छाँह से अधिक कुछ नहीं। फिर कोई भी वस्तु नश्वर है।

—अपना पराया सत्यप्रकाश सगर

१ देखिए —

"वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती थीं। वर्षा की झड़ी में पूस की रात की छाया में कड़कती हुई जेठ की धूप में नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछ बिच्छू के डंक की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थी। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा, दूर से भी ध्यान आकर्षित करता था। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफ़े का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कंधे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँड़ासा यह भी उसकी धज। पंजों के बल जब वह चलता तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।"

—गुण्डा जयशंकर 'प्रसाद'

और भी—

"उसका मुख किसी काली मिट्टी से गढ़ा जान पड़ता था परन्तु प्रत्येक रेखा में सोच की वैसी ही सुडौलता थी जैसी प्रायः ईजिप्ट प्लास्टर या मूर्तियों में देखी जाती है। आँखों की गठन सुन्दर न होकर गाल फूले होने के कारण उनमें छोटे बच्चे जैसा भ्रमर चकित दृष्टि थी। हाथ पर के मोटे घाट पर चमकदार चिमटे के बल उसे बैठी या [illegible]

चित्र प्रस्तुत कर देना कला की उत्कृष्टता का प्रमाण है तथा हम देखते हैं कि इस प्रकार के उदाहरणों की हिंदी कहानियों में कमी नहीं है।[1]

इधर अर्वाचीन कहानी कला व्यक्ति चारित्र्य के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता की ओर विकसित होती जाती रही है अतः कहानीकार देश-काल और वातावरण की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं तथा उनका उद्देश्य मुख्यतः मानसिक परिस्थिति-चित्रण ही रहता है और वे अपनी कहानियों में परिस्थिति-चित्रण द्वारा मनोवैज्ञानिकता लाना चाहते हैं।[2] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल मात्र परिस्थिति चित्रण से ही कहानी म कलात्मकता आ जाती है अपितु हमारी दृष्टि में तो स्थिति और वातावरण का चित्रण आधुनिक कहानियों में एकांतिक प्रभाव लाने की क्षमता पैदा करता है तथा वे पाठकों को आकर्षक भी प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित कहानी में देव

में डाल देते थे। कुछ कम चौड़े ललाट पर कुछ भौंहों के ऊपर लगी पीली रोली की बिन्दी में जो निखार था वह सरकण्डे के फूल से पूरे के शृंगार का स्मरण दिलाता था। कभी लाल पर अब पुराने पड़े के रंग वाली धोती में लिपटी सुखिया ऐसी लगती मानों किसी चपट शिल्पी की सयत्न गढ़ी मिट्टी की मूर्ति हो जिसके सब कच्चे रंग धुल गए हैं और जहाँ तहाँ वे केवल धुंधली रेखाओं में बची मिट्टी झाँकने लगी है।

—अतीत के चल चित्र महादेवी वर्मा

१ एक उदाहरण देखिए—

'भीगे कपड़ों के कारण जाड़े से ठिठुरती सिमटती जैसे चादर या परों पर पड़ा हो असुविधा से चलता है वैसे ही कोमलआमी जाग रही।

—ओस्वामी कोयलस्वामी : यशपाल

२ देखिए—

"इस उदासी के भारी वातावरण के साथ वृक्षों की डोलती छायाएँ ऐसी जान पड़ती कि रात की कहानियों के अभाव काले देव दौड़ रहे हों—ऐसे वातावरण में पड़ोसी किसी हालत में इन सबसे अधिक दूर नहीं रह सकता है। गाँव के अनबूझ लड़के दिन के प्रकाश में तो जंगलों म घूमने जाने पीछे से नहीं डरते पर अँधेरे की काली छायाओं की कल्पना मात्र से भयभीत हो उठते हैं। इसके अतिरिक्त पीछे रहने म उनका एक और भाव है। कभी कभी एक दो जानवर किनारे रह जाते हैं। कभी कोई चौकन्ना बिदक जाते हैं, कभी कोई पेटू जानवर किसी स्थान पर मुँह मारने को अटक जाता है। इन सब इधर उधर भटके हुए जानवरों को पड़ोसी हाँक लाता है और इस प्रकार जब उसके साथी गाँव के सिवान के घने घने बरगद के पेड़ के नीचे ढोरों को अंतिम बार सँभालते हैं तब उनको ठीक सँभाल करने म दिक्कत नहीं होती।"

—पानी का रंग रघुवंश

मानव रूप का भव्य चित्र अंकित करता है' परन्तु आधे या पूरे वाक्य में ही सम्पूर्ण

और पश्चिम से सफेद बादल उमड़ चले आते और परस्पर टकरा जाते। परन्तु उनकी टक्कर द्वेष के कारण नहीं थी। यह प्रेम का मिलाप था। दोनों सेनाएँ गले मिलतीं और आगे बढ़तीं। उन दोनों में कितनी समझ थी कितना समझौता था। स्वयं जियो और दूसरों को जीने दो। सफेद बादल आकर काली घटाओं के कान में फूँकते कि मैदान खाली है और सुन्दर अवसर है। काली घटाएँ आकाश की नीलिमा को एकदम छिपा लेतीं और पर्वतों की चोटियों पर पूर्ण शक्ति से बरसने लगतीं जैसे कई युगों का बदला ले रही हों परन्तु वे ऊँची चोटियाँ उस हमले को व्यंग्यपूर्वक सहन करतीं।

इन चोटियों ने न जाने कब से ऐसे कितने आक्रमण सहन किये थे। वे हजारों वर्ष से यही दृश्य देखती आई थीं। एक आधे पुरुष की तरह वे उनसे घबराती नहीं थीं। वे उन्हें इसी प्रकार सहतीं जैसे धूप के ताप और हिम की ठण्डक को। बरसात में वर्षा न थमती सर्दियों में बरफ न रुकती परन्तु वे अपनी जगह पर अटल सब सहतीं और मुस्कराकर सब सहतीं। शायद वे जीवन के रहस्य को समझ गई थीं। यहाँ सरदी और गरमी आँधी और तूफान बसन्त और पतझड़ आते और चले जाते हैं। यहाँ कुछ भी नित्य नहीं। दुःख और सुख अमीरी और गरीबी हार और जीत इन सबकी यथार्थता धूप और छाँह से अधिक कुछ नहीं। फिर कोई भी वस्तु अनश्वर है।

—अपना पराया : सत्यप्रकाश संगर

१ देखिए—

"वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा, दूर से भी ध्यान आकर्षित करता था। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कंधे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँड़ासा, यह भी उसकी धज। पंजों के बल जब वह चलता तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।

—गुण्डा : जयशंकर 'प्रसाद'

और भी—

"उसका मुख बिल्कुल काली मिट्टी से गढ़ा जान पड़ता था परन्तु प्रत्येक रेखा में नाक की वैसी ही सुडौलता थी जैसी प्रायः ग्रीक प्लास्टर की मूर्तियों में देखी जाती है। आँखों की गहन श्यामता न होकर गोल नाम होने के कारण उनमें स्नायु बल्कि उसी समय चरित्र दृष्टि थी। माथे पर से माट माट पर बहुवशील [illegible] के नीचे की स्थिति

चित्र प्रस्तुत कर देना कला की उत्कृष्टता का प्रमाण है तथा हम देखते हैं कि इस प्रकार के उदाहरणों की हिंदी कहानियों में कमी नहीं है।[1]

इधर अद्यावधीन कहानी कला व्यक्ति चारित्र्य के धरातल से निर्मित होकर अपने वास्तविक स्वरूप में पूर्ण मनोवैज्ञानिकता की ओर विकसित होती जाती रही है अतः कहानीकार देश-काल और वातावरण की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं तथा उनका उद्देश्य मुख्यतः वास्तविक परिस्थिति चित्रण ही रहता है और वे अपनी कहानियों में परिस्थिति-चित्रण द्वारा मनोवैज्ञानिकता लाना चाहते हैं।[2] परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल मात्र परिस्थिति चित्रण से ही कहानी में कलात्मकता आ जाती है अपितु हमारी दृष्टि में तो स्थिति और वातावरण का चित्रण आधुनिक कहानियों में अलौकिक प्रभाव लाने की क्षमता पैदा करता है तथा वे पाठकों को आकर्षक भी प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित कहानी में देव

म डाल देते थे। कुछ कम चौड़े ललाट पर रूखी भौंहों के ऊपर लगी पीली काँच की टिकुली में जो श्रृंगार था वह सटकटैया के फूल से पूरे ढ श्रृंगार का स्मरण दिलाता था। कभी लाल पर अब पुराने बड़ के रंग वाली धोती में लिपटी छबिया ऐसी लगी मानों किसी अपटु शिल्पी की सजल गढ़ी मिट्टी की मूर्ति हो जिसके सब कच्चे रंग धुल गए हैं और जहाँ तहाँ से केवल सुडौल रेखाओं में बँधी मिट्टी झाँकने लगी है।

—अतीत के चल चित्र महादेवी वर्मा

१ एक उदाहरण देखिए—

"तीन कपड़ों के कारण पांव से छिदरती सिमटती जैसे बंदर दो परों पर खड़ा हो असुविधा से चलता है वैसे ही कोयलेवाली चल रही।"

—मोरवाली कोयलेवाली : यशपाल

२ देखिए—

"इस उदासी के भारी वातावरण के साथ वृक्षों की दौड़ती छायाएँ ऐसी जान पड़तीं कि रात की कहानियों के अज्ञात काले देव दौड़ रहे हों—ऐसे वातावरण में पछोंगी किसी हालत में इन सबसे अधिक दूर नहीं रह सकता है। गाँव के अनजान लड़के दिन के प्रकाश में जो जंगलों में घूमने वाले चीते से नहीं डरते पर अँधेरे की काली छायाओं की कल्पना मात्र से भयभीत हो उठते हैं। इसके अतिरिक्त पीछे रहने में उसका एक और भाव है। कभी कभी एक दो जानवर किनारे रुक जाते हैं। कभी चौंककर पिछड़ जाते हैं, कभी कोई पशु जानवर किसी स्थान पर मुँह मारने को भटक जाता है। इन सब इधर उधर भटके हुए जानवरों को पछोंगी हाँक लाता है और इस प्रकार जब उसके साथी गाँव के सिवान के पास पैसे बरगद के पेड़ के बीच डारों को अंतिम बार सँभालते हैं तब उनकी ठीक सँभाल करने में दिक्कत नहीं होती।"

—पाटी का दरद रघुवंश

का यथार्थ, सुन्दर और स्वाभाविक वर्णन देखिए—

"रमजान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा है। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है। कोई पड़ोस के घर में सुई तागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिए वह तेली के घर भागा जाता है। जल्दी जल्दी बैलों को दाना पानी दे दें। ईदगाह से लौटते लौटते दोपहर हो जायगी। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं।'

—ईदगाह प्रेमचन्द

इसी प्रकार निम्नांकित अवतरण में देहाती अस्पताल का वास्तविक चित्रण किया गया है —

"देहाती अस्पताल उतने नहीं यह सच है न वह पूर्ण शहराती ही था। छोटी-सी मंडी जैसी बस्ती के लिये यही एक राहत की जगह थी। मौत भी यहाँ अपना इलाज करवाने आने में हिचकिचाती। पुरानी किलेनुमा इमारत के एक टूटे हिस्से में अगर आप यह टूटे हुए पत्थरों की चढ़ाई पार कर जायें—जिसमें के निशान यह साफ जाहिर करते कि यह जानवरों के आने जाने का रास्ता रहा होगा, मुमकिन है कभी यह एक अस्तबल भी रहा हो—तो आप एक छोटा सा आँगन, जिसमें नीम का पेड़ और उसकी एक डाल में टँगा हुआ आधा मटका (शायद किसी दानी बनिये ने चिड़ियों के लिये यह प्याऊ बनवा दी हो) और दूसरी ओर टीले पर शीतला माता नामक आठ-दस पुराने शिलाखंड सिंदूर-पुते आपको मिलेंगे आगे बढ़ जाइए, एक झाड़ का फाटक पार करके दो-तीन छोटी कोठरियों के आगन में एक टेबुल और कुर्सी पड़ी है। इसी जगह का नाम अस्पताल है।'

—गैरा प्रभाकर माचवे

कहानी की भाषा-शैली और उसकी विविध प्रणालियाँ

६

वस्तुतः साहित्य में भावों की दीप्ति और उनका प्रभाव भाषा की शक्ति पर ही निर्भर है अतः प्रत्येक कुशल कथाकार इस दिशा में विशेष सतर्क रहता है और इस प्रकार कहानी-कला में भी सुन्दरता तथा सरसता पर ध्यान देना आवश्यक समझा जाता है। चूँकि भाषा मनोभावों की अभिव्यक्ति का साधन है तथा शैली उस साधन का उपयोग करने की रीति अतः भाषा की शक्ति पर ही शैली की उत्कृष्टता अवलम्बित है और इस प्रकार कहानी की भाषा ऐसे सार्थक शब्द समूहों से गठित होनी चाहिए जिनमें कि एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर लेखक या पात्र के मन की बात पाठकों के मन तक पहुँचा कर उसके द्वारा उन्हें प्रभावित करने की क्षमता हो। चूँकि भावाभिव्यक्ति का आधार भाषा है अतः भावों को सुन्दर रूप में प्रकट करने के हेतु उसी के अनुरूप भाषा-सौन्दर्य भी अपेक्षित है तथा सरल, सुबोध और सरस शब्दावली से कहानी की प्रभावोत्पादकता बढ़ जाती है। यद्यपि प्रत्येक लेखक की शैली में निजी वैशिष्ट्य और नवीनता अपेक्षित मानी जाती है तथा भाषा के सुन्दर और सरस होने में ही शैली-वैशिष्ट्य भी दृष्टिगोचर होता है परन्तु उत्तम भाषा और शैली वही कही जा सकती है जिसमें कि एक भी निरर्थक और व्यर्थ शब्द न हो तथा श्रेष्ठतम कहानियों में किसी शब्द का हटाना तो दूर रहा यदि हम एक शब्द के स्थान पर उसका कोई अन्य पर्यायवाची शब्द रख देते हैं तो उसकी स्वाभाविकता और मनोहरता नष्ट हो जाती है। पोकॉक (Pocock) नामक एक पाश्चात्य विचारक के अनुसार कहानी का प्रत्येक भाग प्रसंगानुकूल और उचित होना चाहिए। न तो उसमें भावों की दुरूहता ही हो और न शब्दाडम्बर ही हो। प्रत्येक शब्द, शब्द समूह और वाक्य का कथा के वस्तु, पात्र या वातावरण से संबंधित होना आवश्यक है, जिससे कि कहानी पढ़ने के पश्चात् हमें ऐसा प्रतीत हो

कि यदि हम कहीं एक भी पंक्ति छोड़ जाते तो कहानी ही अधूरी रह जाती।'[1] इस प्रकार कहानियों में भाषा की मार्मिकता की ओर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। स्मरण रहे प्रत्येक कहानीकार की अपनी निजी भाषा-शैली रहती है और इस प्रकार उसकी भाषा में शब्द सौष्ठव, भाषा-सौन्दर्य तथा रागात्मकता में अन्तर भी पाया जाता है लेकिन यदि हम हिंदी कथासाहित्य का विचारपूर्वक अनुशीलन करें तो स्पष्ट हो जायगा कि उसमें बोलचाल की भाषा गंभीर एवं परिष्कृत भाषा तथा अलंकृत तत्सम भाषा नामक भाषा शैली के तीन रूप देख पड़ते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक कहानीकार या कहानी की भाषा-शैली सर्वथा ही विभिन्न हो क्योंकि कभी कभी कुछ ऐसी कथायें भी देख पड़ती हैं जिनमें कि पहले और दूसरे रूप का समन्वय सा कर दिया गया हो। साथ ही कभी-कभी भाषा-शैली में विभिन्नता कथावस्तु के प्रकार भेद के अनुसार भी होती है और इस प्रकार घटना प्रधान कहानी तथा भावप्रधान कहानी की भाषा में स्वाभाविक ही अंतर दृष्टिगोचर होगा।[2]

वस्तुतः साधारण बोलचाल की भाषा शैली में भाषा की अपूर्व अभिव्यंजना शक्ति दृष्टिगोचर होती है और प्रेमचंद ने तो सुन्दर सरल शब्दावली में ही मानव जीवन के भावपूर्ण अंगों तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का चित्रण किया है। प्रेमचंद अत्युक्ति से दूर ही रहते हैं तथा सभी वस्तुओं का यथातथ्य चित्रण करते हुए अपनी

---

1 Every single part of the story must be relevant and to the point. There must be no padding out no word spinning. Every epithet every phrase, every sentence should bear in some way upon the plot character or atmosphere so that when we come to the end we feel sure that we could not have skipped a line without missing something essential.

2 जहाँ कि घटनाप्रधान कहानियों की भाषा शैली इस प्रकार होगी—

"अब देवी ने एक दम से आकाश की ओर देखा [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]।"

—[illegible]

वहाँ भावप्रधान भाषा शैली का यह रूप होगा—

"आज न जाने क्यों इस संगीत ने उसकी सोई हुई मनोवृत्ति को जगा दिया। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]।"

—[illegible] प्रसाद

सुन्दर भाव शैली में चित्र चित्रण और लय-संगीत का सुन्दर सम्मिश्रण प्रस्तुत करते हैं। स्मरण रहे प्रेमचंद में ही नहीं अन्य कई आधुनिक कहानीकारों में भी इसी प्रकार की भाषा-शैली दृष्टिगोचर होती है, देखिए–

"माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लह लहाते खेत देखकर जो आनन्द आता है वही आनन्द बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवद्भजन से जो समय बचता, वह घोड़े की अर्पण हो जाता।"

—हार की जीत सुदर्शन

और भी—

"मंत्रिमंडल के सभी सदस्य एक से नहीं थे। यही तो मुसीबत थी, नहीं तो खिलौने के व्यापारियों का काम मिनिटों में बन जाता। देश के स्वतंत्र होने का यही तो अर्थ था कि देशी उद्योग धंधे पनपें। पर यहाँ तो लोग समझते ही नहीं थे।

—खिलौना कारपोरेशन मन्मथनाथ गुप्त

और भी —

"इसलिए उसने और मौलाना ने ग्लास टकराए और अपने मुँह से लगा लिए। एक घूँट गले के नीचे उतारते हुए बोले—'मैं अफसाने कभी इकट्ठे नहीं करता। मेरे अफसाने कबूतर के बच्चे हैं जिन्हें मैं लिखता और कहता हूँ–जा कबूतर के बच्चों! उड़ जाओ और वे उड़ जाते हैं।'

इस उपमा की मैंने बहुत प्रशंसा की। सच पूछो तो उस समय मेरे मन में आयन्स्टीन के सापेक्षवाद का सिद्धान्त स्पष्ट हो गया था। हर वस्तु का कुछ न कुछ संबंध अवश्य है अफसाने का कबूतर के बच्चे से, दुश्चरित्र नारी की मुस्कान का गन्दी नाली में फूटते हुए कुकुरमुत्ते से, भोर की पहली किरण का अँगड़ाई लेती दीवार से, नपुंसक इमन का पारसे से······'

—नये देवता देवेन्द्र सत्यार्थी

यद्यपि गंभीर और परिष्कृत भाषा-शैली पर कुछ विचारक कृत्रिमता का आरोप लगाते हैं परंतु कथा-वस्तु में आकर्षण और पात्रों के चरित्र-चित्रण में वास्तविकता लाने के लिए गंभीर और परिष्कृत भाषा-शैली अत्यंत उपयुक्त होती है क्योंकि उसमें से एक ऐसी सुमधुर स्वर लहरी निःसृत होती है जो कि पाठकों को को अपनी ओर शीघ्र ही आकर्षित कर लेती है। देखिए—

"महेन्द्र सोचने लगा कि उसने जीवन में कितनी ही स्त्रियों को विभिन्न रूपों तथा विविध परिस्थितियों में देखा, पर आज का यह बिलकुल साधारण सा अनुभव उसे क्यों ऐसा अपूर्व तथा अनुपम लग रहा है? वह सोच ही रहा था कि फिर उस विरचचित्रधिनी ने अपनी सुन्दर विस्मित आँखों को रहस्यमयी उन्मुक्ता से भी

स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह मन ही मन उसे संबोधित करते हुए कहने लगा—"चिर अज्ञाता, चिर अपरिचिता देवी! तुम मुझसे क्या चाहती हो? तुम्हारी इस मर्म-भेदनी दृष्टि का क्या अर्थ है।"

—रेल की रात इलाचन्द्र जोशी

और भी —

'आनन्द ने आँखें मूँद लीं, और जैसे किसी विभीषिका की कल्पना से काँप गया। उफ, सभ्य मानव ने क्या बना दिया है उस चिर रहस्यमयी विभूति को जिसे हम जीवन कहते आए हैं। नगरों की सुरक्षितता और अधिक व्यवस्था में कैद होकर उसने ईश्वर सदृश आशिम और अव्यवस्था से बचना चाहा है, जो कि वास्तव में जीवन की परिवर्तनशील और निरन्तर आगे ही आगे बढ़ती रहने वाली प्रवहमान विविधता है, सभ्यतायें आई हैं ईश्वर के नाम पर इन्होंने नगर बसायें हैं मनुष्यों के भारी भारी संगठन जुगाये हैं और अंत में इतनी भीड़ कर दी है कि वह बिचारा ईश्वर ही बहिष्कृत हो गया है ... .'

—पंखों का मुरा, सुधा के घेरे अज्ञेय

अलंकृत सरस भाषा शैली के उदाहरण हिंदी कहानियों में अधिक नहीं मिलते क्योंकि सरस भाषा में कभी कभी कृत्रिमता भी आ जाती है लेकिन प्रसाद जी की ऐतिहासिक कहानियों में अवश्य उसका सफलता के साथ प्रयोग हो सका है।[1] साथ ही इस प्रकार की भाषा शैली द्वारा कतिपय कुशल कहानी लेखकों ने कभी

---

१ देखिए—

'दो तीन रेखाएँ भाल पर, काली पुतलियों के समीप मोटी और काली बरौनियों का घेरा, घनी आरक्त में, मिली हुई पतली भवें और नासा-पुट के नीचे हल्की हल्की हरियाली उस तापसी के गोरे मुँह पर सहज अभिव्यक्ति की प्रेरणा प्रगट करती थी।

यौवन काषाय से कहीं छिप सकता है? संसार को दुःख पूर्ण समझकर ही तो वह संघ की शरण में आई थी। उसके आशापूर्ण हृदय पर बिजली की दौरें लगी थी। तब भी यौवन ने साथ न छोड़ा। भिक्षुकी बनकर भी वह शान्ति न पा सकी थी। वह आज अत्यन्त अधीर थी।

चैत्र की अमावस्या का प्रभात था। अश्वत्थ वृक्ष की मिट्टी सी गहरी डालों और तने पर ताम्र अरुण वर्ण पत्तियाँ निकल आई थीं। उन पर प्रभात की किरणें पड़कर लोट पोट हो जाती थीं। इतनी स्निग्ध शय्या उन्हें कहाँ मिली थी।

सुजाता सोच रही थी। आज अमावस्या है। अमावस्या तो उसके हृदय में सवेरे से ही अंधकार भर रही थी। दिन का आलोक उसके लिए नहीं के बराबर था। वह अपने विशृंखल विचारों को छोड़कर कहीं भाग जाय। शिकारियों का डर और अंधेरी रजनी! उसकी आँखें भर थीं।

—[illegible] जयशंकर 'प्रसाद'

कभी सुंदर भाव चित्र अंकित करते हुए कई मनोवैज्ञानिक तथ्य भी प्रस्तुत किए हैं।[1] वस्तुतः पात्रों उनके कार्यों अथवा घटनाओं का चित्रण करते समय साधारण शब्दावली के स्थान पर अलंकारों, उपमाओं, उदाहरणों, मुहावरों, लोकोक्तियों और अनुप्रासों के प्रयोग से वास्तविकता भी आ जाती है तथा चित्रण भी बुद्धिगम्य प्रतीत होता है।[2] इतना ही नहीं व्यक्ति चित्र में कलात्मकता लाने के हेतु भी प्रायः इस प्रकार की शब्द योजना की जाती है कि न केवल चित्रण में अलंकारिकता ही

---

1 पंत जी ने निम्नांकित उद्धरण में उपमा द्वारा ही मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत किए हैं—

"अतीत के सुख की डोरी कटी हुई पतंग की तरह, हृदय की ओर से अलग हो होठों पर चढ़कर आती हुई जैसे वहीं की वहीं निःस्पन्द हो गई।"

—अवगुंठन : सुमित्रानंदन पंत

इसी प्रकार निम्नांकित अवतरण में भी उपमाओं की छटा दर्शनीय है—

"वर्षों की मौन वेदनाओं को संसार ने नींबू की तरह चूस कर टेढ़ा-मेढ़ा विकृत कर दिया है। दुःख से काटे हुए रात दिन के सेप चिह्नों की तरह असमय स्याह चुकन्दर-सी झाड़ी-मूछों ने जिन्हें हफ्ते में एक बार बनाने की भी नौबत नहीं आती उस पासंग सा[illegible] के चूल्हे को मुंडा कर दांतों की झाड़ी से भर लिया है। दुर्भाग्य से स्वप्न तीव्र पुष्ट भाग्यों की तरह सिकुड़े हुए माथे पर गहरी चिन्ता की रेखाएं पड़ गई हैं। नीचे मुरझाये हुए होठों के दोनों ओर नाक से मिली हुई दो लकीरों ने मन चाहा खाना न मिलने के कारण अनावश्यक मुख को दोनों ओर से दो कोष्ठकों में बन्द कर दिया है। मुख का रंग धूप से जलकर काला पड़ गया है और उसका प्रत्येक चर्म अवयव सूखी के दाने की तरह लोकताप में पककर सूख गया है। रोड़े की तरह गले में अटकी हुई इकहरी सांस के घूंट जाने से बाहर निकल आई है।"

—पानवाला : सुमित्रानंदन पंत

2 व्यंग्यात्मक और व्यवस्थात्मक भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिए—

"जैसा कि मैं आतिथ्य की कल्पना करता हूँ तो उषा की प्रसन्न लालिमा की कल्पना कीजिए जब नीलगगन स्वर्ण प्रकाश से रंजित हो जाता है। बहार की कल्पना कीजिए जब बाग में रंग रंग के फूल खिलते हैं और बुलबुल गाती है। [illegible] के स्वर आतिथ्य की कल्पना करती हो या [illegible] की कल्पना कीजिए या पिता की निस्तब्धता में [illegible] की गर्दनों में बजती हुई सुनाई देती है।"

—सैला : प्रेमचन्द

इसी प्रकार मुहावरों और लोकोक्तियों से युक्त भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिए—

"मैं तहसीलदार नहीं हूँ। हां लड़कपन में कई बार चढ़ू घोड़ी पर सवार हुआ हूँ। यहाँ देखा तो सभी नाम धारी हमारे नित संसार भरे थे। मेरी तो जान ही निकल गई।"

दृष्टिगोचर हो अपितु साथ ही वह स्वाभाविक भी प्रतीत हो।[1] जहाँ कि चित्रण में मर्मस्पर्शिता लाने के हेतु सुन्दर सुघर शब्दावली का प्रयोग किया जाता है[2] वहाँ साथ ही भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए भी कुशल कहानीकार शब्द

सवार तो हुआ पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर निकलने न पड़ने दिया। घोड़े को दिखरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि दिखरी ने घोड़े को तेज न किया वरना शायद हाथ पाँव तुड़वाकर लौटता। सम्भव है दिखरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।"

—[illegible] प्रेमचन्द

१ देखिए—

"कैसी साँवरी थी। जैसे श्रावण की मेघमाला में छिपे हुए आलोक पिंड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो वैसे ही उसका यौवन सुगन्धित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। [illegible] के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।"

—[illegible] जयशंकर प्रसाद

और भी—

'आज पहला ही अवसर था जब उसने बैठकर कस्तूरी और अम्बर से बसा हुआ यौवनपूर्ण उद्वेलित आलिंगन पाया। उधर किरणें भी पवन के झोंके के साथ हिमकणों को हिलाकर चुनकर पड़ीं। भूमि गम्भीर की [illegible] थी। मिसरी के [illegible] में इनके कोमल चरणों की मुग्धता प्रसिद्ध थी। उस कलिका का आमोद मकरन्द अपनी सीमा में भरा रहा था।

—आँधी जयशंकर 'प्रसाद'

२ देखिए—

"मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी लगी हुई खिड़की के पास बैठी हुई मनोरमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। गूँथे हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर बिखर रहे थे। रेशम के काम की सजा और जालियों से गूँथी हुई फिरोजी रंग की ओढ़नी पर लगी हुई कामदार की चुन्नी और पन्नों की कमरपेटी पर [illegible] के बराबर बड़े मोतियों की [illegible] रही थी। मनीषा का रंग भी चाँदी के समान था। उसकी देह की गन्ध निराली थी। मरमर के समान [illegible] के [illegible] थे जिन पर दो हीरे [illegible] चमक रहे थे।

—दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी   चतुरसेन शास्त्री

योजना में पूर्ण सतर्कता बरतते हैं।[1] अपनी एक कहानी में श्री गोविंदवल्लभ पंत ने पात्र विशेष से यह न कहला कर कि उसकी प्रेमिका ने उससे कभी भी संभाषण नहीं किया शब्दों का एक सुन्दर चित्र ही उपस्थित कर दिया है[2] और उसी प्रकार उन्होंने एक दूसरी कहानी में प्रतीक्षारत नायिका द्वारा एक वर्ष न कहलाकर विविध ऋतुओं के व्यापारों का सौंदर्यमय भाषा में वर्णन कर हृद्गत भावनाओं का सरस चित्रण किया है।[3] इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार के वर्णन कहानी की

---

१ देखिए—

'अभिमान ? स्त्री का क्या अभिमान ? और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बड़ी थी केवल उत्तरदायिनी। होली के हाउ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गये। युद्ध की समाप्ति के इन तीन चार वर्षों में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे अनोखे रूप उल्लसित उच्छ्वसित लोलुप गर्वित याचक पाप सङ्कुचित एवं स्फीत-मुद्राएँ और वह जानती थी कि इन चेहरों और मुद्राओं के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियों के सुख-दुख तृप्ति और अशांति वासना और करुणा आशा और संताप उलझ गए। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण में एक पराया और दूषित तनाव आ गया था।

—होली बोल की बतखें अज्ञेय

२ 'मैं वाणी को सुनने के लिए बड़ा ही उत्सुक था किन्तु वह पाषाण—नहीं नहीं सुवर्ण की प्रतिमा-कभी बोली ही नहीं।

मैंने बड़े बड़े उपाय किए, उसके अधरों से मुसकान निकली शब्द नहीं निकले दिन देखा सपीत नहीं सुना भाव मिला अर्थ नहीं आया मेरे नेत्र तृप्त हुए, कान अतृप्त ही रहे। कभी-कभी मेरे मनश्चय मुझसे कानाफूसी कर कहने लगे—तू बहरा तो नहीं है ?"

—जूठा आम गोविंदवल्लभ पंत

३ 'शरद् गया शिशिर गया हेमंत गया किन्तु उपयुक्त नहीं आया। वासवदत्ता ने कई बार श्रमपूर्ण प्रतीक्षा की किन्तु वह नहीं आया। उसने अनेक बार शृंगार किया सब व्यर्थ हुआ।

सुमन, सुगन्धि और मंजीवली को लेकर वसंत ऋतु आई फिर भी वह न आया। देखते-देखते अवधि बीतने को आई पर उपयुक्त नहीं आया। वासवदत्ता अतृप्त अशांत नेत्रों से उस कभी न आनेवाले की राह देखती रही। सब आए, जो नहीं आया वह एक उपगुप्त था।

अवधि के बीतने में दो महीने रहे""एक महीना रहा। मयार के पादप-निवास में ठहरा हुआ पथिक वर्षा जाने की तैयारी करने लगा। उसने शिशिर का कवच कभी का उतार लिया था, हेमंत का बिस्तर बाँध लिया था वसंत के पुष्प-गन्ध संभाल लिए थे ग्रीष्म का

दृष्टिगोचर हो अपितु साथ ही वह स्वाभाविक भी प्रतीत हो।[1] जहाँ कि चित्रण में मर्मस्पर्शिता लाने के हेतु सुन्दर सुघर शब्दावली का प्रयोग किया जाता है[2] वहां साथ ही भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए भी कुशल कहानीकार शब्द

सवार तो हुआ पर बोटियाँ काँप रही थीं। मैंने चेहरे पर शिकन न पड़ने दिया। घोड़े को ईश्वरी के पीछे डाल दिया। खैरियत यह हुई कि ईश्वरी ने घोड़े को तेज न किया वरना शायद हाथ पाँव तुड़वाकर लौटता। संभव है ईश्वरी ने समझ लिया हो कि यह कितने पानी में है।"

—नशा प्रेमचन्द

१ देखिए—

"बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक पिंड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गानी के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई। एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।

—इन्द्रजाल जयशंकर 'प्रसाद'

और भी—

'आज पहला ही अवसर था जब उसने केसर कस्तूरी और अम्बर से बसा हुआ यौवनपूर्ण उद्वेलित आलिंगन पाया। ऊपर किरणें भी पवन के झोंके के साथ किसलयों को हिलाकर घुसकर पड़ीं। नूरी काश्मीर की कली थी। सिकरी के महलों में इसके कोमल चरणों की नृत्यकला प्रसिद्ध थी। उस कलिका का आमोद मकरन्द अपनी सीमा में मचल रहा था।"

—नूरी जयशंकर 'प्रसाद'

२ देखिए—

'मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी लगी हुई खिड़की के पास बैठी हुई सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी। खुले हुए बाल उसकी फिरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे। चिकन के काम की सफेद और मोतियों से गुँथी हुई फिरोजी रंग की ओढ़नी पर लगी हुई कामदार की कुर्ती और पन्नों की कमरपेटी पर अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला झूम रही थी। सलीमा का रंग भी मोती के समान था। उसकी देह की गठन निराली थी। संगमरमर के समान पैरों में जरी के काम के जूते पड़े थे जिन पर दो हीरे धक धक चमक रहे थे।

—दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी चतुरसेन शास्त्री

भावना में पूर्ण सतर्कता बरतते हैं।[1] अपनी एक कहानी में श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने पात्र विशेष से यह न कहला कर कि उसकी प्रेमिका ने उससे कभी भी संभाषण नहीं किया शब्दों का एक सुन्दर चित्र ही उपस्थित कर दिया है[2] और उसी प्रकार उन्होंने एक दूसरी कहानी में प्रतीक्षारत नायिका द्वारा एक वर्ष न कहलाकर विविध ऋतुओं के व्यापारों का सौंदर्यमय भाषा में वर्णन कर हृद्गत भावनाओं का सरस चित्रण किया है।[3] इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार के वर्णन कहानी की

---

१ देखिए—

'अभिमान ? स्त्री का क्या अभिमान ? और अगर करे ही तो कनिष्ठा करे जो उत्तराधिकारिणी होती है। वह तो सबसे बड़ी थी केवल उत्तरदायिनी। होली के होठ एक विद्रूप की हँसी से कुटिल हो गए। युद्ध की समाप्ति के इन तीन चार वर्षों में कितने ही अपरिचित चेहरे देखे थे अनोखे रूप उल्लसित उद्भासित लोलुप गर्वित याचक पाप संकुचित एवं स्फीत-मुद्राएं और वह जानती थी कि इन चेहरों और मुद्राओं के साथ उसके गाँव की कई स्त्रियों के गुप्त-गुप्त तृप्ति और अतृप्ति वासना और वंचना का नाता। और संसार उलट गया। यहाँ तक कि वहाँ के वातावरण में एक पराया और दूषित तनाव आ गया था।"

—होली बोन की बत्तखें अज्ञेय

२ "मैं वाणी को सुनने के लिए बड़ा ही उत्सुक था किन्तु वह पाषाण—नहीं नहीं सुवर्ण की प्रतिमा कभी बोली ही नहीं।

मैंने बड़े बड़े उपाय किए, उसके अधरों में मुस्कान निकली परन्तु नहीं निकला चित्र देखा संगीत नहीं सुना भाव मिला रूप नहीं आया मेरे नेत्र पूर्ण तृप्त हुए, कान अतृप्त ही रहे। कभी-कभी मेरे मित्रगण मुझसे कानाफूसी कर कहने लगे—तू बहरा तो नहीं है ?"

—जूठा आम गोविन्दवल्लभ पंत

३ 'शरद् गया शिशिर गया हेमंत गया किन्तु उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ता ने कई बार अगरु प्रतीक्षा की किन्तु वह नहीं आया। उसने अनेक बार शृंगार किया सब व्यर्थ हुआ।

कुसुम, सुगन्धि और मंजरियों को लेकर वसन्त ऋतु आई फिर भी वह न आया। देखते-देखते ग्रीष्म बीतने को आई पर उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ता अतृप्त अर्थात आँखों से उस कभी न आनेवाले की राह देखती रही। सब आए, जो नहीं आया वह एक उपगुप्त था।

यद्यपि वर्ष बीतने में दो महीने थे""एक महीना रहा। संसार के पान्थ-निवास में व्यग्र हुआ पथिक वर्ष जाने की तैयारी करने लगा। उसने शिशिर का कवच तन पर डाल लिया था, हेमंत का बिस्तर बाँध लिया था वसंत के पुष्प-वस्त्र संभाल लिए थे ग्रीष्म का

सुन्दरता में वृद्धि करते हैं और उससे उसका कला पक्ष भी निखरा हुआ प्रतीत होता है परन्तु आवश्यकता से अधिक उपमाओं अलंकारों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा भाराक्रान्त भी हो सकती है तथा उसकी स्वाभाविकता भी नष्ट हो जाती है।[1] लेकिन कुशल कहानीकार इनके प्रयोग में सर्वदा सतर्क रहता है और कभी कभी तो हास्य रस की कथाओं में भी इनका प्रयोग होता है। 'बेढब बनारसी' की कहानियाँ इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। 'बनारसी एक्का' शीर्षक उनकी एक कहानी में उपमाओं का संयोजन बड़े ही सुन्दर ढंग से हुआ है।[2] यद्यपि विचारकों ने कहानी की भाषा को पात्रानुकूल और प्रसंगानुरूप होना आवश्यक समझा है परन्तु वे अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अन्य प्रादेशिक शब्दों का प्रयोग कम से कम किया जाय।

भाषा-शैली पर विचार करते समय हमें कहानी निर्माण की विभिन्न प्रणालियों पर भी विचार करना होगा क्योंकि कहानी-लेखन की विविध शैलियाँ प्रचलित हैं जिनमें से लेखक अपनी रुचि या विषय के अनुकूल किसी भी प्रणाली

खाता हाथ में कूता बाँध में लिया था वर्षा का रिक्त लोटा और डोर से लिया था उसने ज्यों ही अपनी अंतिम वस्तु शरद की चाँदनी को समेटने के लिए हाथ बढ़ाया त्यों ही व्याकुलता से विकल होकर कहा क्या अब मेरा प्रियतम इस मास नहीं आयेगा ?

—मिलन मुहूर्त गोविन्दवल्लभ पन्त

१ देखिए—

हृदय की उत्तप्त भूमि में अभिलाषा और आशा की धधकती हुई चिता के आलोक में गत जीवन की पूर्व स्मृति प्रेम पुंज की भाँति अट्टहास कर रही है। मैं देख रहा हूँ महत्तम दुश्चिन्त्य श्मशान के मध्य में तीव्र मद के भयंकर उन्माद में रौरव नरक की धधकती हुई ज्वाला से स्थित होकर मैं दुर्भाग्य के किसी अज्ञेय एवं अचिन्त्य विधान से जीवित रहकर इस पैशाचिक मृत्यु को देख रहा हूँ।

नरक निकेत चंडीप्रसाद 'हृदयेश'

२ देखिए—

साधारण एक्के के घोड़े भारतीय दरिद्रता के आदर्श हैं या यों कहिए कि आज कल के स्कूलों और कालिजों के अधिकांश विद्यार्थियों की चलती-फिरती बोलती तसवीरें हैं ....यह मजनूँ की तसवीर है। पसली की हड्डियाँ ऐसी दृष्टिगोचर होती हैं जैसे एक्स-रे का चित्र। हाँफने की गति हिन्दी के कहानी लेखकों की [illegible] की संख्या से कम न होगी। मोटाई इन वीर तुरंगों की ऐसी होती है कि आश्चर्य होता है कि इनकी कमर से कवि और शायर अपनी नायिकाओं की कमर की उपमा न देकर इधर उधर क्या भटकते रहे ? इनका सारा शरीर ऐसा लगता है जैसे अपनी [illegible] जिधर चाहे उधर झाड़ लो।

—बनारसी एक्का बेढब बनारसी

को ग्रहण कर सकता है। स्मरण रहे कि कहानी के लिए न तो कोई ऐसा नियम ही प्रचलित है कि वह अमुक शैली में ही लिखी जाय और न यही आवश्यक है कि प्रत्येक कहानीकार किसी एक विशिष्ट शैली में ही रचना करे तथा साथ ही हम यह भी देखते हैं कि कभी-कभी कुछ कहानीकार अन्य सभी शैलियों का समन्वय कर अपनी कहानियों का सृजन करते हैं कहा जाता है कि इस प्रकार की मिश्रित शैली में लिखी गई कहानियों में कहानीकार को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपनी कहानी में प्रभावोत्पादकता, चरित्र-चित्रण और विश्लेषण आदि के लिए उन सभी प्रणालियों का सदुपयोग करता है जिनसे कि उसकी कृति में सम्यक् विकास और व्यापकता सी आ जाती है। इस प्रकार की मिश्रित प्रणाली की कहानियों में जैनेन्द्र की एक रात शरत् की पिंजरा और अज्ञेय की छाया उल्लेखनीय हैं। इन मिश्रित प्रणाली की कहानियों के साथ-साथ कहानी के शिल्प विधान में नए-नए प्रयोग भी किए जाते हैं और नई पीढ़ी के कुछ कहानीकारों ने तो सर्वथा नए ढंग की कहानियाँ भी लिखी हैं। श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र' की कहानी 'शुक बोला' का टैकनिक निस्संदेह हिंदी कथा साहित्य में सर्वथा नवीन है। उन्होंने अपनी कथा का प्रारंभ इस प्रकार किया है—

"एक राजा के दरबार में हीरामन तोता था। वह सिंहल द्वीप से भीषण संग्राम के पश्चात् लाया गया था क्योंकि सिंहल द्वीप का राजा स्वयं उस गुणी और चतुर शुक को सहज में नहीं देना चाहता था। कुछ भी हो, आर्यावर्त के प्रतापी राजा के समक्ष सिंहल द्वीप को पराजित होना पड़ा और हीरामन प्राप्त कर लिया गया।

शनैः शनैः राजा और शुक में इतनी गाढ़ी आत्मीयता हो गई जितनी राजा भरत और हिरण में थी। राजा एक क्षण भी उस शुक का वियोग नहीं सहन कर सकता था और शुक भी उसके अनुराग के कारण अपने अतीत को भूल गया था। वह स्वयं भी राजा से इस तरह घुल-मिल गया था जैसे माया शरीर से।

एक दिन सम्पूर्ण दरबार लगा था—उस दरबार के बीच राजा ने शुक से पूछा 'क्यों हीरामन हमारी मृत्यु हो गई तब ?'

हीरामन ने गंभीर स्वर में कहा 'मृत्यु निरुपाय है पर वियोग नहीं। वियोग का दारुण दुःख मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।'

'फिर ?'

'यदि आपका स्वर्गवास मुझसे पूर्व हुआ तो मैं भी अपने प्राण त्याग दूँगा मैं आपके बिना एक पल भी नहीं रह सकता।"

राजा और समस्त दरबारी हीरामन के इस कथन पर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने हीरामन की अत्यन्त प्रशंसा की कि वह बड़ा ही स्वामिभक्त है।

संयोग की बात कहिए कि राजा का देहान्त शुक के पूर्व ही हो गया। इस सन्ताप को सहन नहीं कर सका। वह राजा की क्षारा पर निरन्तर मंडराता और अंत में मर गया।

स्वर्ग में अप्सराओं के मध्य उन दोनों का पुनः मिलन हुआ। राजा विलास-प्रवृत्ति दिन प्रति दिन बढ़ती गई। हीरामन का कार्य था—उन अप्सर का मनोरंजन करना। वर्ष पर वर्ष बीत गए।

अप्सरायें शुक से नाराज होकर बोलीं 'हम तुम से ऊब गई हैं। एक कथायें, एक-सा कथानक और एक सा परिणाम ! यदि तुम में कुछ नयापन नहीं तब हमें कहानियाँ मत सुनाया करो।

अप्सराओं के इस कथन को सुन तथा राजा से भी उपेक्षित हो शुक कहीं म जाता है तथा पाँचवें दिन पुनः लौटता है। उसकी अनुपस्थिति में अप्सराएँ उस बहुत याद करती हैं और मन ही मन उसकी प्रशंसा करती हैं। उसके वापस लौ पर राजा और उसके मध्य इस प्रकार वार्तालाप होता है—

'राजा ने हैरानी से पूछा क्यों इतने दिन कहाँ रहे ?'
शुक ने उत्तर दिया 'मृत्यु लोक में ?'
अप्सराओं के कान खड़े हो गए।
'वहाँ क्यों गए थे ?'
'आपके लिए कुछ नया लाने के लिए ?'
'क्या लाए ?'

'महाराज मृत्युलोक की दशा अच्छी नहीं है। वहाँ वाद की भरमार वादों का बोलबाला है। साम्यवाद, समाजवाद, पूँजीवाद गाँधीवाद छायावाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद हालावाद पत्नीवाद और न जाने क्या क्या वाद ! पर मैं आपको व की एक कथा सुनाऊँगा। यह कथा पूँजीवादी व्यवस्था में प्रेम के नये रूप प्रतिनिधित्व करती है। नई टैकनिक में, हालांकि मैं टैकनिक का मतलब ना समझता, लिखी गई है।"

शुक ने राजा को जो कहानी सुनाई वह इस प्रकार है—

कथानक : मैंबर जाल—

एक लड़का है 'क' उसकी पत्नी है 'ख'। 'ख' की एक सहेली है मिस 'ग' अवसर पाकर 'ग' 'क' को अपने प्रेम जाल में फँसा लेती है। 'क' गरीबी से तंग है उनका प्रेम प्लेटानिक नहीं, इस मिट्टी में पला प्यार है। दोनों अपने-अपने घरों बहाने बनाकर भागते हैं और गुम होते हैं। कभी-कभी विपुल विलास के सागर

भाकर हुआ 'क' अचानक पूछता है— प्रियर, हमारे प्रेम का परिणाम ? 'ग' उत्तर देती है, तुम बड़े कायर हो, कल की आज चिंता करते हो ?'

पहला घुमाव असली कहानी —

स्वरूप के हाथ काँप रहे थे, जैसे उसके दोनों हाथों को लकवा मार गया हो। उसने अपनी बड़ी मुश्किल से अपनी दिल्ली निवासिनी पत्नी चन्दा की चिट्ठी खोली और वह उसे दुबारा पढ़ने लगा—

'पूज्यदेव ! पत्र आपका मिला। ज्वर बहुत तेज है। ऐसा महसूस होता है कि भयानक ताप से मेरा तमाम शरीर झुलस जाएगा। 'झुलस जाने दो इस पीड़ा से मृत्यु बहुत अच्छी है। मैं अपने हृदय में कोमल भावनाएँ और अधूरी अभिलाषाएँ लिए मर जाना पसंद करूँगी यदि आप जीवन-दीप बुझने के पूर्व अपना दर्शन दे दें तो ! आपका गुलाब-सा चेहरा आज रह-रह कर मेरे आगे घूम रहा है। मोह के बंधन टूटने के लिए कसमसा रहे हैं। विचित्र अनुभूति अन्तर में है, जिसे मैं बयान नहीं कर सकती। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि पत्र पढ़ते ही आप दिल्ली रवाना हो जाइए। आपकी देर यहाँ अँधेरा कर देगी।

—आपकी अपनी–चन्दा'

स्वरूप किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा। उसके आगे चन्दा का कृशकाय रुग्ण और पाण्डुर मुख नाच उठा। चन्दा की कोटरशायिनी आँखों में जीवन और मृत्यु का करुणा-प्लावित संघर्ष। दुष्कल्पनाओं ने उसे वाचाल बना दिया। ललाट पर स्वेद कण उभर आए।

रूमाल से अपने पसीने को पोंछकर वह कुर्सी पर बैठ गया। चिट्ठी को मेज पर रख कर अपने आप को आश्वस्त करता हुआ बोला —'कैसी है यह अनहोनी ! कल स्वप्न में बिलकुल स्वस्थ और आज मरणासन्न। आश्चर्य ! उसके विचारों ने उसे धैर्य दिया यह सब भाग्य के खेल हैं।

अप्रत्याशित उसकी दृष्टि चिट्ठी के दूसरे ओर गई। उसने जल्दी से पढ़ा। नैनों में ज्योति चमक उठी। अधरों पर आशा भरी मुस्कान नाच गई। स्नेह ने मानियों उन शब्दों में लिखा था - 'स्वरूपजी इसे पढ़कर घबराने की जरूरत नहीं। यह तो आपकी कथा 'मुक्ति का आह्वान' का एक अंश है। यह कहानी मुझे बहुत प्रिय लगी। आप नारी के अन्तर में कितना पैठ कर लिखते हैं। प्रसंग से पत्र लिखें। शेष.....

—स्नेहलता

स्वरूप के होठों पर मेरुभरी मुस्कान नाच उठी। उसने पत्र को चूम लिया।

दूसरा घुमाव दो गलतियाँ —

आँखों में आश्चर्य भर कर स्नेहलता ने पूछा, 'देखो चंदा इन मकड़ियों ने कैसा सुन्दर जाल बुना है।

घनिष्ट सहेलियाँ चंदा और स्नेहलता के देखते-देखते दो मकड़ियों ने एक अत्यंत कलात्मक जाल बुन लिया था।

चंदा अपनी गंभीर दृष्टि को लता पर गाड़ती हुई बोली 'प्रेम और संगठन का यही फल होता है। उसने लता के गाल पर अपनी तर्जनी से हल्की चोट की और मुस्कराई 'यदि तुम्हारा असीम स्नेह मुझ पर नहीं होता तो इस परदेश में मेरी कौन देख-भाल करता ? तुम्हारे प्यार ने मुझे नया जीवन दिया है। मैं तुम्हारा किस मुँह से शुक्रिया अदा करूं ?'

'छि पगली इसमें शुक्रिया अदा करने की क्या बात है ! तुम तो मेरी सगी बहिन-सी हो।'

तभी चंदा की दृष्टि उस जाले की ओर गई। जाले पर कोई तीसरी मकड़ी नाच रही थी। चंदा ने उसे संकेत करके पूछा यह तीसरी मकड़ी कौन है।'

लता कृत्रिम गुस्से से बोली "मैं इन मकड़ियों के खानदान को नहीं जानती।"

चंदा तीसरी मोटी मकड़ी को देखती रही। पहले की बड़ी मकड़ी ने मोटी मकड़ी का स्वागत किया। चंदा ने उछलकर कहा, 'यह तीसरी भी मकड़ी ही है और ये पहले वाले जरूर मियाँ बीबी होंगे।'

लता चौंक पड़ी। 'मियाँ-बीबी ?'

और देखते-देखते बड़ी ने सारा जाला तोड़ दिया क्योंकि आगन्तुक मकड़ी से उसका पति प्यार करने लगा। बड़ी मकड़ी अपनी उपेक्षा सह नहीं सकी। दोनों में द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। जाल टूट गया। खेल खतम हो गया।

लता बोली "प्यार में स्वतंत्रता होनी ही चाहिए।"

चंदा उसे भय भरी दृष्टि से देखती रही।

मकड़ा कनल और मूँछें —

इंगलैंड रिटर्न्ड कर्नल चाचा अपनी मूँछों पर ताव देते हुए लता के कमरे में घुसे। लता अपने 'बाब्ड' बालों में कंघी कर रही थी। अपने श्वेत, संगमरमर-से चेहरे पर पाउडर लगाकर उसने एक बार अपने रूप को स्वयं निहारा। उसके अधरों पर मंद स्मित रेखायें नाचीं।

हलो लता " कनल चाचा उसके समीप आये। अपने बायें हाथ की अंगुलियों को उसके बालों में उलझा कर बोले, "बेबी, यह गुन्थी हमने आखिर इसे मार ही दिया।

शीशे में मरी मकड़ी का प्रतिबिम्ब देखकर लता एक बार चिहुँक पड़ी। हठात् चाचा की ओर उन्मुख होकर बोली, 'आप यह कूमला' हैं 'अंकल'। इस प्रकार किसी को नहीं मारना चाहिये।'

'क्यों तुम नहीं जानती लता, यह कम्बख्त मेरी मूँछों पर नाचने लगा मूँछों पर ''''' कर्नल की मूँछों पर, ''और वह भी तुम्हारी 'आंटी' के सामने। उसने हमारा बड़ा मजाक बनाया। कहने लगी, देखा यह छोटा सा मकड़ा भी आपकी मूँछों पर नाचता है ? मैं उसके व्यंग्य को समझ गया और क्रोध में आकर इसे मकड़े हेवन भेज दिया। ''लता ! यह एक कर्नल की मूँछें हैं। मेरी मूँछों से खेलने वालों को मैं गोली नहीं मार दूँगा ? शूट नहीं कर दूँगा ? '' एक नहीं पूरी पाँच गोली मारूँगा। मेरी मूँछें डार्लिंग ! यह मेरी मूँछें हैं कर्नल्स विस्डम।'

कर्नल बहुत उत्तेजित हो गये।

लता भयभीत सी अपने अंकल को देखने लगी। 'अंकल' ने जोर से अट्टहास करके कहा, 'डर गयी हो डार्लिंग ! मत डरो, यह तो मकड़ा है, मकड़ा''''''लो इसे फेंक आता हूँ।'

कर्नल ने मकड़े को दरवाजे के बाहर जाकर फेंक दिया।

वापस आकर वे बोले, 'पाँच बज रहा है लता, पता आज वापस राजस्थान जा रही है। क्या वह अपने पति से नहीं मिलेगी।'

'नहीं उसकी छुट्टियाँ समाप्त हो गई हैं।'

'ओह, '' '' अच्छा '' । कर्नल चाचा चले गये।

लता के मस्तिष्क में ये शब्द गूँजते रहे—कर्नल, मूँछें मकड़ा, गोली और पाँच गोली ...

वह पसीने से तरबतर हो गई। उसका 'मेकअप' खराब हो गया।

तत्सम, चालू और रोमानिक लय –

चंदा के जाने के बाद लता अपने को कुछ दुर्बल समझने लगी। स्वरूप के पत्र बराबर आ रहे थे। ये प्रेम पत्र उसे स्वप्न व अप्सरा कर रहे थे। आज भी एक पत्र आया था। स्वरूप ने लिखा था –लता तुमसे मिलकर मेरी आत्मा अलौकिक आनन्द का अनुभव करेगी। कृपया बताओ कहाँ, कब और कैसे मिला जाये।

अपने आधुनिक कमरे की आरामदेह मखमली शय्या पर पड़ी-पड़ी लता करवटें बदल रही थी। बार-बार वह अपना मुँह तकिये में छिपा लेती थी। उसके

समीप एक मार्मिक पत्र पड़ा था। उसमें लता की एक कहानी 'अंगारे' छपी थी यह कहानी स्वरूप ने संशोधित करके प्रकाशित कराई थी। कहानी में एक विरह का चित्रण था। प्रेम का विवेचन था। प्रेम'' ''हाँ लता भी स्वरूप से प्रेम करने लगी है। वह एक बार उस पुरुष को अवश्य देखेगी जो इतने प्यारे पत्र लिखा करता है।

'मिस साहिबा—यह तरबूज।' नौकर ने उसका ध्यान भंग किया।

'रख दो। लता ने कहा और नौकर चला गया।

लता भारी मन लिये उठी। देखा कि नौकर तरबूज की फाँकों के साथ चाकू भी रख गया है। क्षण भर के लिये उसका पारा गर्म हो गया कि यह कैसा नौकर है कि जरा भी तमीज नहीं। मैं पापा से कहकर इस 'डिसमिस' करवा दूँगी। कुछ देर तक वह शान्त हो गई। उसे स्वरूप के शब्द याद हो आए ''लेखक-हृदय-नवनीत सा कोमल और करुणा का अवतार होता है। वह सागर-सा गंभीर और हिमालय सा शीतल होता है। उसे बदलने मत दो प्रिये।'' वह निश्चल हो गई। यंत्रवत वह चाकू से कटी हुई बड़ी फाँकों को छोटे टुकड़ों में परिणत करने लगी। फिर वह उन्हें एक एक करके खाने लगी। विचारों की तन्मयता के कारण उसके हाथ का तरबूज गिरकर चाकू पर जा गिरा। टुकड़ा फिर कट गया।

वह बड़बड़ा उठी—'चाकू तरबूज पर गिरे या तरबूज चाकू पर कटेगा'' तरबूज चाकू पर गिरे तो तरबूज कटे''''। पर बीज'' बीज तब भी कायम है। बीज कभी नहीं कटता।'''' ''लता चुप और गंभीर। कुछ देर बाद वह उछल कर बोली, बीज कभी नाश को नहीं प्राप्त होता आत्मा कभी नहीं मरती। आत्मा आत्मिक प्रेम ...? मैं स्वरूप से आत्मिक प्रेम करूँगी। आत्मिक प्यार' महान प्रेम आदर्शमय! लता के मन में आत्मिक प्रेम की किरणें विकीर्ण होकर प्रकाश-पुँज में परिणत हो गई।

उसने स्वरूप को तुरन्त पत्र लिखा—'तुम अमुक दिन अमुक गाड़ी से चले आओ।

प्रथम ग्रासे मक्षिका पात —

स्वरूप दिल्ली रवाना हुआ। दिल्ली स्टेशन पर लता आतुरता से स्वरूप की प्रतीक्षा कर रही थी। बार-बार वह अपने हैंड बैग से स्वरूप का चित्र निकाल कर देख रही थी।

गाड़ी आई।

लता ने देखा-एक अत्यंत खूबसूरत नौजवान की काले-नीले चश्मे के शीशों में मौजनी आँखें किसी को खोज रही हैं। वह धीरे धीरे सशंकित दृष्टि चारों ओर

देखती उसके समीप गई। पीछे से अनजान बन कर अपने मृदुल स्वर में पुकारा—'स्वरूप !'

स्वरूप तुरन्त लता की ओर घूमा। उसके मुँह से चलचित्र के हीरो की भाँति टूटे शब्द निकले... 'प्रि....यर, ..लता....' वह उसे देखता रहा—अपलक और निरन्तर।

'चलिए.....चलिए !'

कुली ने सामान उठाया। वे दोनों साथ-साथ चले।

'हैलो लता ! तुम कहाँ ? 'अंकल' कहाँ से कबाब में हड्डी की तरह आ टपके।

वह घबरा गई। बोली 'ओह, चलिए जी मजे में हैं। आप चिट्ठी लिखें तो मेरा भी नमस्ते कह दीजिएगा।'

स्वरूप हैरान, परेशान और विमूढ़।

'चलिए चाचा जी।' लता चली गई। स्वरूप तुरन्त समझ गया। नाटक, विलेन के प्रवेश पर हीरोइन का सफल अभिनय। लता चाचा को 'अंकल की तिमी' दिखा कर लौट आई। घबराई हुई आकर बोली 'गजब हो जाता स्वरूप यदि चाचा तुम्हें पहचान लेते तो बड़ा अनर्थ हो जाता। बड़े आर्योडाक्स हैं। विलायत से क्या और आप अब उन्हें कुत्ता भी विलायती ही पसन्द है। चलो, अब जल्दी करो।

टैक्सी में बैठे। टैक्सी चली।

स्वरूप लता के अद्भुत सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया।

अजीब लड़की से मन —

'ऐसा हमें कोई नहीं मिला, जिसे हम प्रेम कर सकें।'

'बुजुर्ग कहते हैं खोजने पर तो प्रभु भी मिल सकते हैं।'

'मुझ तो नहीं मिला।'

'ऐसा न कहिए, इस शस्य-श्यामला भूमि पर एक-एक से विशाल दिल लिये बैठे हैं।'

मुझे कोई पसन्द नहीं आया। जो पसन्द आए वे पहले से ही 'एंगेज्ड' हैं। वे अपने प्यार में फँस नहीं सकते।

प्रभात का समय।

स्वरूप लता की एक नेपालिन सहेली से वार्तालाप कर रहा था। वह नेपाल के उच्च घराने से सम्बन्धित थी। सलोनी थी, मजेदार थी मुझे दिल वाली थी।

समीप एक मार्मिक पत्र पढ़ा था। उसमें लता की एक कहानी 'अंगारे' छपी थी। यह कहानी स्वरूप ने संशोधित करके प्रकाशित कराई थी। कहानी में एक विधवा का चित्रण था। प्रेम का विवेचन था। प्रेम'''''हाँ लता भी स्वरूप से प्रेम करने लगी है। वह एक बार उस पुरुष को अवश्य देखेगी जो इतने प्यारे पत्र लिखा करता है।

'मिस साहिबा—यह तरबूज।' नौकर ने उसका ध्यान भंग किया।

'रख दो।' लता ने कहा और नौकर चला गया।

लता भारी मन लिये उठी। देखा कि नौकर तरबूज की फाँकों के साथ चाकू भी रख गया है। क्षण भर के लिये उसका पारा गर्म हो गया कि यह कैसा गधा है कि ज़रा भी तमीज़ नहीं। मैं चाचा से कहकर इसे 'डिसमिस' करवा दूँगी। अचानक वह शान्त हो गई। उसे स्वरूप के शब्द याद हो आए "लेखक-हृदय-नवनीत सा कोमल और करुणा का अवतार होता है। वह सागर-सा गंभीर और हिमालय सा शीतल होता है। उसे बहकने मत दो प्रिये।" वह निश्चल हो गई। यंत्रवत् वह चाकू से फाटी हुई बड़ी फाँकों को छोटे टुकड़ों में परिणत करने लगी। चाव कर वह उन्हें एक एक करके खाने लगी। विचारों की तन्मयता के कारण उसके हाथ का तरबूज गिरकर चाकू पर जा गिरा। टुकड़ा फिर कट गया।

यह बड़बड़ा उठी—"चाकू तरबूज पर गिरे तो तरबूज कटे''''' तरबूज चाकू पर गिरे तो तरबूज कटे'''''। पर बीज''''' बीज अब भी कायम है। बीज कभी नहीं कटता।''''''लता मूक और गंभीर। कुछ देर बाद वह उछल कर बोली "बीज कभी नाश को नहीं प्राप्त होता आत्मा कभी नहीं मरती। आत्मा आत्मिक प्रेम....? मैं स्वरूप से आत्मिक प्रेम करूँगी। आत्मिक प्यार'''''महान प्रेम! आदर्शमय! लता के मन में आत्मिक प्रेम की किरणें विकीर्ण होकर प्रकाश-पुंज में परिणत हो गई।

उसने स्वरूप को तुरन्त पत्र लिखा—'तुम अमुक दिन, अमुक गाड़ी से आ जाओ।

प्रथम प्राप्त मस्तिका पाठ—

स्वरूप दिल्ली रवाना हुआ। दिल्ली स्टेशन पर लता आकुलता से स्वरूप की प्रतीक्षा कर रही थी। बार-बार वह अपने हैंड-बैग से स्वरूप का चित्र निकाल कर देख रही थी।

गाड़ी आई।

लता ने देखा-एक अत्यंत खूबसूरत नौजवान की गहरे-नीले चश्मे के शीशों में खोई सी आँखें किसी को खोज रही हैं। वह धीरे धीरे सशंकित दृष्टि चारों ओर

टैक्सी उसके समीप गई। पीछे से अनजान बन कर अपने मृदुल स्वर में पुकारा—'स्वरूप !'

स्वरूप तुरन्त लता की ओर घूमा। उसके मुँह से चलचित्र के हीरो की भाँति टूटे शब्द निकले ...'कि... पर....लता... !' वह उसे देखता रहा—अपलक और निरन्तर।

'चलिए... चलिए !'

कुली ने सामान उठाया। वे दोनों साथ-साथ चले।

'हैलो लता ! तुम कहाँ ? 'पंकज' कहीं से कबाब में हड्डी की तरह आ टपके।

वह घबरा गई। बोली 'ओह, बहिन जी मजे में हैं। आप चिट्ठी लिखें तो मेरा भी नमस्ते कह दीजिएगा।'

स्वरूप हैरान, परेशान और विमूढ़।

'नमस्ते चाचा जी।' लता चली गई। स्वरूप तुरन्त समझ गया। नाटक, विदेश के प्रवेश पर हीरोइन का सफल अभिनय। लता चाचा को 'अकल की मिसी' दिखा कर लौट आई। घबराई हुई आकर बोली 'गज़ब हो जाता स्वरूप यदि चाचा तुम्हें पहचान लेते तो बड़ा अनर्थ हो जाता। बड़े आर्थोडाक्स हैं। विलायत से क्या लौट आए अब उन्हें कुत्ता भी विलायती ही पसन्द है। चलो, अब जल्दी करो।

टैक्सी में बैठे। टैक्सी चली।

स्वरूप लता के अद्भुत सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया।

अजीब लड़की से मन—

'ऐसा हमें कोई नहीं मिला, जिसे हम प्रेम कर सकें।'

'बुजुर्ग कहते हैं खोजने पर तो प्रभु भी मिल सकते हैं।'

'मुझे तो नहीं मिला।'

'ऐसा न कहिए, इस शस्य-श्यामला भूमि पर एक-एक से विशाल दिल लिये बैठे हैं।'

'मुझे कोई पसन्द नहीं आया। जो पसन्द आए, वे पहले से ही 'इंगेज्ड' हैं। वे अपने प्यार में फँस नहीं सकते।

प्रभात का समय।

स्वरूप लता की एक नेपालिन सहेली से वार्तालाप कर रहा था। वह नेपाल के उच्च घराने से सम्बन्धित थी। सलोनी थी, मजेदार थी खुले दिल वाली थी।

स्वरूप से खूब घुलमिल गई थी। लता ने भी स्वरूप को कहा था कि यह नेपालिन ही हमारे सभी व्यापारों को जानती है।

यहाँ लता सवेरे नौ बजे आती और शाम को छः बजे तक लौट आती थी। इस बीच ये रोमांस को लेकर मधुर कल्पनाओं के वितान बुना करते थे। धरती पर खड़े होकर चाँद-सितारों और प्रकृति के नजारों में अपने प्रेम आखिर प्यार की पवित्रता के दर्शन करते थे।

सात दिन बीत गये।

इन सात दिनों में अतृप्ति का मारा स्वरूप क्षण-भर भी सो नहीं सका। वह बेचैन हो उठा। वह इस शर्त पर लता के साथ कदापि नहीं रह सकता।

आठवें दिन नेपालिन लड़की ने उसकी स्थिति को देखकर कहा 'स्वरूप जी! आप व्यर्थ सिर का दर्द खरीद रहे हैं। रेगिस्तान में गुलाब की उम्मीद करना निरी मूर्खता है।

स्वरूप चिन्तित हो गया।

मगरमच्छ की तस्वीर —

कर्नल के कमरे में एक बड़ी मगरमच्छ की तस्वीर थी। यह तस्वीर कर्नल अपनी अंग्रेज पत्नी 'प्रेटीफिश' के कहने पर उसे विलायत से खरीद कर लाया था। आज कर्नल की बीवी को न मालूम क्यों क्रोध आ गया कि उसने मगरमच्छ की तस्वीर को गोली मार दी।

गोली की आवाज सुन कर लता दौड़ी दौड़ी आई 'क्या हुआ आंटी?'

वह आवेश में बोली 'गोली मार दी तुम्हारे 'अंकल' ' नहीं नहीं इस मगरमच्छ को।'

'क्यों?' लता समझ गई—आंटी के अन्तस की घृणा को।

'बड़ा खतरनाक है। कहता है कि मैं इसी तरह अपने अधीन आदमियों को खा जाता हूँ। यह मुझे खा गया। मेरी जवानी को खा गया। गालों की लाली और आँखों की चमक को खा गया। अब दूसरे पर ताक लगाए बैठा है। जालिम धूर्त, धोखेबाज।' आंटी का सारा बदन काँप रहा था।

'डार्लिंग मुझे मत रोको, मैं इसे एक गोली और मारूँगी।' आंटी ने विनीत स्वर में कहा।

'पागल हो गइ हो आंटी! यह तस्वीर है, मगरमच्छ की एक खूबसूरत तस्वीर।' लता ने समझाया।

खूबसूरत!' आंटी व्यथा से अभिभूत होकर बड़बड़ाई, 'यह मगर

खूबसूरती को इस प्रकार बरबाद करता है, जिस प्रकार दीमक लकड़ी को। इसने मेरे साथ धोखा किया। मैं इसे मारूँगी, जरूर मारूँगी "कह कर वह कमरे से बाहर चली गई।

लता ने मन ही मन कहा, 'बेवकूफ औरत !

प्लैटोनिक प्रेम की हत्या —

स्वरूप !

'मधुर प्रेम के आत्मिक अलौकिक आनन्द की तड़पती सिहरन में यदि तुम्हें जीवन भर जलना स्वीकार नहीं है तो मैं उस आत्मिक प्रेम की हत्या करने को तैयार हूँ। स्वरूप, तुम मेरे भावी सुनहले स्वप्न हो, भविष्य हो सर्वस्व हो। आज मैं बहुत बेचैन हूँ इतनी बेचैन जितनी 'रोमियो' के लिए 'जूलियट'। लेकिन मेरे पापा बड़े ऑर्थोडॉक्स हैं, अतः हमारा मिलन संसार से दूर" एकान्त में। अब पत्र पढ़ते ही तुरन्त आ जाओ।' —लता

स्वरूप और लता का महामिलन हुआ। इधर-उधर। प्रकृति की सुरम्य गोद में। पर्वत की शीतल छाया में। यहाँ-यहाँ और जहाँ-तहाँ।

दस दिन के बाद फिर वियोग हो गया। अत्यन्त पीड़ा जनक और असह्य।

अन्त समय लता ने कहा था, 'पत्र जरूर लिखना, प्रिय लता करके सम्बोधित करना और 'तुम्हारी अपनी चम्पा' कह कर समाप्त करना। 'अंकल' समझेंगे अत चम्पा का है।'

महिवाल की दशा में -

सोनी' के प्रेम में अपना अस्तित्व विलीन करने वाला महिवाल 'चिनाब के किनारे अपनी प्रेमिका की याद में इतना तन्मय और बेसुध हो गया था कि उसे यह भी पता नहीं चला कि वह कहाँ और किस हाल में है ? सुनते हैं कि एक बार सोनी ने आने में देर कर दी तो उसने अपने हाथ के चाकू से अपनी जाँघ को चीर डाला। प्रेम की इस चरम सीमा पर किस पत्थर दिल इन्सान का दिल नहीं पिघलेगा ?

स्वरूप पर भी यही तन्मयता व्याप्त थी। वह दफ्तर का कार्य करते करते 'लता-लता' लिखने लग गया था। लता के साथ कविताएँ भी प्रारम्भ हुईं। परिणाम यह निकला कि प्रेम-रस-हीन मालिक ने उसे डाँट दिया।

फिर क्या था ?

उसने तुरन्त इस्तीफा लिख कर दे दिया—'मैं किसी का पैसा गुलाम नहीं हूँ जो झिड़कियाँ सुनूँ। आप अपनी नौकरी सम्भालिए।'

उसी दिन उसने लता को अपनी स्थिति से अवगत करा दिया।

चौथे दिन लता द्वारा भेजा गया दो सौ रुपए का मनीऑर्डर आया। नीचे लिखा था—'तुम ही तो सब कुछ हो, तुम नहीं तो कुछ नहीं।'

स्वरूप अहम् से दहाड़ उठा 'ऐसी नौकरियाँ लता कितनी ही खरीद सकती है। इंगलैंड रिटायर्ड कर्नल जमींदार मि० भट्टाचार्य की भतीजी है वह! इकलौती भतीजी।'

खुशखबरी:—

लता की चिट्ठी आई थी। उसने लिखा था—'स्वरूप! हमारे-तुम्हारे मिलन पर जो नया बीज पनपा, उसे मैंने डॉक्टर चटर्जी की सहायता से बड़ी आसानी से नष्ट कर दिया है। यह तुम्हारे लिए खुशखबरी है क्योंकि यदि अंकल को इस भेद का पता चल जाता तो वे तुम्हें गोली से मार देते क्योंकि आजकल वे चूहा भी विलायती ही पसन्द करते हैं।

तुमने लिखा कि हम विवाह कर लें? यह संभव नहीं है? फिर विवाह कोई जरूरी नहीं। चन्दा बुरी लड़की नहीं, इस पर वह मेरी सखि है। फिर कर्नल चाचा और गोली!

'खैर, रुपए भेज रही हूँ। जरूरत हो तो फिर मँगा लेना, लेकिन अभी दिल्ली मत आना।

तुम्हारी—लता

केशों की महक: जीवन का सौन्दर्य—

स्वरूप का पारा गर्म हो गया। इस प्रकार वह क्यों विवाह से क्यों टाल रही है? बाद में चंदा मान जाएगी। भारतीय स्त्रियों की भाँति उसे अन्त में समझौते का ही सहारा लेना पड़ेगा। वह आज दिल्ली जरूर जाएगा। लता से कहेगा कि यदि वह उसे सच्चा प्यार करती है तो क्यों नहीं इन झूठे बन्धनों को तोड़ कर मुक्त हो जाती।

'मैं तुम्हारे बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। दिल की हर साँस में तुम बस गई हो। तुम्हारे छितराए काले बादल केशों की महक ही मेरे जीवन का माधुर्य और सौन्दर्य है।' वह बेचैनी में अपने आप से कह रहा था—'मैं किसी भी अवरोध को सहन नहीं कर सकता। मजनूँ की भाँति 'लता' को किसी भी सूरत में हासिल करूँगा—मर कर भी या जीकर भी।'

वह दिल्ली रवाना हो गया।

चन चिड़िया उड़ गई—

बेचारा 'प' हजारों उम्मीदें लेकर दिल्ली पहुँचा। उस नपासिन लड़की से पता चला कि 'ग' तो आज विलायत जा रही है। 'क' यानी ला·मा·ग्राउंड

पहुँचा। उसका रोम-रोम पुकार रहा था। लेकिन सबसे पहले वहाँ उसे 'ख' दिखलाई पड़ी। वह सुन्न हो गया। 'क' झल्ला पड़ा 'यह यहाँ कैसे आगई ?' 'ग' ने अपने पति को प्रसन्नता से प्रगाढ़ आलिंगन में ले लिया।

तभी 'ग' वहाँ आ पहुँची। मुस्करा कर बोली, 'ज़रा शरम करो भाई, इंगलैण्ड तो मैं जा रही हूँ।'

'ख' के नेत्र झुक गये।

'ग' स्नेहसिक्त स्वर में बोली, 'डियर 'ख' इन महान लेखक श्रीमान 'घ' को प्यार से रखना और मिस्टर 'क' आप भी हमारी 'ख' को पलकों की रानी बना कर रखियेगा। यह हमारी सबसे प्रिय सहेली है। अब लौटने पर ही भेंट होगी। अच्छा, फेयर वैल, टा टा।

प्लेन उड़ा।

'ख' ने बाद में कहा—'ग कितनी अच्छी सहेली है। मुझे अपनी विदाई पर तार देकर बुलाया। भगवान उसे जीवन में सफल करें।'

'क' 'ग' के शब्दों को नहीं सुन सका। वह क्रोध प्रतिहिंसा विवशता और वेदना से तिलमिला रहा था। प्लेन आकाश में पंख फैलाए पंछी की तरह उड़ रहा था।"

अपनी कहानी का अन्त स्वयं कहानीकार ने इस प्रकार किया है—

"शुक ने पूछा—'महाराज महाराज यह कहानी आपको कैसी लगी।'

बीच में ही अप्सराएँ बोल उठीं—'बहुत सुन्दर! बिलकुल नई! क्या इस प्रकार पुरुषों को उल्लू बनाकर औरतें मस्त रह सकती हैं। तब तो यूँ नीवादी युग में हो जाना चाहिये।'

राजा अधिकार पूर्ण स्वर में बोला—'लेकिन मैं तुम सबको वहाँ जाने की आज्ञा नहीं दे सकता। क्यों शुक, इसका अंत तो बुरा ही हुआ होगा?'

शुक ने कहा—'मरम को जानने के लिये जिज्ञासु बन जाइए देखिए, ग' का परिणाम क्या होता है?'

कह कर शुक अन्तर्धान हो गया।'

यद्यपि विचारों की दृष्टि से कहानी में कोई विशेष नवीनता नहीं है लेकिन शिल्प-विधान की नूतनता के कारण ही वह पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और हिंदी कथा-साहित्य में शैलीगत नवीन प्रयोगों की ओर भी ध्यान के उद्देश्य से ही उद्धरण विस्तृत होते हुए भी हमने उसे यहाँ उद्धृत किया है।

विभिन्न शैली की कहानियाँ तथा शिल्प विधान की नवीनताओं के होते हुए भी हिंदी कथा-साहित्य में कहानी लिखने की वर्णनात्मक

प्रणाली, आत्म चरित्र प्रणाली, संलाप प्रणाली, पत्रात्मक प्रणाली और डायरी प्रणाली नामक पाँच प्रणालियाँ प्रचलित हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा ने इन प्रणालियों की विशिष्टताओं पर प्रकाश डालते हुए एक स्थल पर लिखा है "कहानी लिखने का साधारण ढंग (ऐतिहासिक पद्धति) लेखन शक्ति को बहुत स्वच्छन्दता देता है। इसमें विचार बहुत विशद रूप से प्रकाशित किए जा सकते हैं और घटनाओं का वर्णन बड़े स्वतंत्र रूप से हो सकता है। कहानियों में जीवनी और पत्रों का ढंग रोचकता बढ़ाकर पाठकों की सहानुभूति अपनी ओर कर लेता है। ऐसी रचना पाठकों के हृदय को अपने आप आकर पकड़ लेती है और पाठकों का मन बड़ी तेज़ी के साथ पात्रों और घटनाओं की ओर आकर्षित हो जाता है। किन्तु अंतिम दोनों प्रकार के ढंगों में कुछ दोष अवश्य हैं। जीवनी के समान कहानियों में यह दोष आ सकता है कि सारी कहानी का ज्ञान एक मनुष्य में, जो मैं' रूप में लिखता है, न हो सके। एक पात्र, जिसके साथ कहानी लेखक अपने को मिला देता है कहानी के सभी तत्वों और अंगों पर समान रूप से प्रकाश डालने में असमर्थ हो जाता है। पत्र-रूप में कहानियों का यह दोष हो सकता है कि ये घटनाओं के रूप में बहुत शिथिलता डाल देती हैं। कथानक जिस वेग से बढ़ना चाहता है, उस वेग से वह इसलिये नहीं बढ़ पाता, क्योंकि उसे पूरी स्वतंत्रता नहीं मिलती। जिस तरह तूफान की लहर ज्वार के उतार में दब जाती है, उसी प्रकार घटनाओं का वेग पत्र-रूप में बढ़ने नहीं पाता पत्र में तो जैसे कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को लिख रहा है, यही पाया जा सकता है। वास्तविक घटनाओं का उतार चढ़ाव आँखों के आगे नहीं आता, किन्तु पत्र-लेखक की लेखनी की नोक से टकरा कर गिर पड़ता है। पत्र कहानी की कहानी में जीवन नहीं रहता, वह प्राणहीन होकर लेखनी के पीछे घसिटती चलती है।"[1] डॉ० वर्मा के इन विचारों की मीमांसा करने की अपेक्षा हम यह प्रत्येक प्रणाली पर विस्तार के साथ विचार करना अधिक समीचीन समझते हैं।

वर्णनात्मक (Descriptive) शैली को ऐतिहासिक शैली भी कहा जाता तथा यह सबसे सरल और साधारण शैली कही जाती है क्योंकि उसमें लेखक एक इतिहासकार की भाँति संपूर्ण कहानी कहता जाता है । वस्तुत वर्णनात्मक प्रणाली में कहानीकार पूर्णत तटस्थ रहकर एक कथावाचक की भाँति संपूर्ण कहानी की सृष्टि करता है अत कहानी का सूत्रधार स्पष्ट रूप से कहानीकार ही होता है और चूँकि नायकत्व किसी अन्य पुरुष को ही दिया जाता है अत इस प्रणाली को 'अन्य पुरुषात्मक' शैली भी कहा जाता है। इतिहासकार और कथावाचक की भाँति कहानीकार वर्णनात्मक ढंग से पात्रों तथा घटनाओं की शृंखला प्रस्तुत करता है और प्रसंगानुकूल प्रकृति चित्रण, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, धार्मिक

१ साहित्य-समालोचना—डा० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ४४ ४५)

विवेचना, भावात्मक वर्णन तथा विश्लेषण को भी स्थान देता है लेकिन स्वयं सो ओट में ही रहता है। वर्णनात्मक शैली में कहानीकार को सर्वाधिक स्वतंत्रता और सुगमता प्राप्त होती है अतः स्वाभाविक ही इस पद्धति का प्रचलन और प्रसार अन्य समस्त प्रणालियों की अपेक्षा अधिक है। देखिए—

'रज्जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी और गाँठ में दो तीन सौ की भारी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था। बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिए इसने मड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी स्त्री को बुखार हो आया था, रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने में खर्च अधिक पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस दिन आराम कर लेना ही ठीक समझा।'

—शरणागत वृन्दावन लाल वर्मा

और भी—

"अगर कबरी बिल्ली घर म किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी, पति की प्यारी और सास की दुलारी, चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार-घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर भर में सब कुछ। सास जी ने माला ली और पूजा पाठ में मन लगाया।"

—प्रायश्चित्त भगवतीचरण वर्मा

और भी—

'रेखा की उम्र तीस से अधिक हो चुकी थी। दो बच्चों की माँ थी। अपनी सन्तान में सुखी थी। पति काफी पैदा करते थे। गहने थे। निजी मकान था। जवानी थी अपनी तथा पति की। बच्चे स्वस्थ थे। बड़ा बच्चा सिंघ्या स्कूल में जाता था। छोटा बच्चा हिमू अभी घर ही में पढ़ता था। रेखा की उच्चाकांक्षा से शून्य साधारण स्त्री के सुखी रहने के लिये और किस बात की जरूरत थी?'

—मोमबत्ती का टुकड़ा मन्मथनाथ गुप्त

उपयुक्त अवतरणों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि कहानीकारों में पात्र विशेष का परिचय देते हुए कहानी प्रारम्भ करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है परन्तु यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वर्णनात्मक प्रणाली में लिखी गई कहानियों में तो कहानीकार तुरन्त ही मूल घटना से कहानी प्रारम्भ कर देते हैं, जैसे—

'दोपहर से ही दोनों चार मेढ़ों से एक-एक मिनट इकट्ठा करता हुआ शाम

उसका सुन्दर मुख पर फीकापन आता जा रहा था और एक प्रकार की कुरूपता सी दृष्टिगोचर होने लग गयी थी। लावण्य एवं अरुणिमा का स्थान धीरे धीरे कुरूपता लेती जा रही थी।'

—समझौता　गायत्री वर्मा

आत्म-चरित्र प्रणाली के अंतर्गत एक शैली यह भी प्रचलित है कि उसमें कहानी के विभिन्न पात्र क्रमशः आत्मवर्णन या आप-बीती सुनाते हैं और इस प्रकार उन सबकी आत्मकथाओं के समन्वय से सम्पूर्ण कहानी अपनी पूर्ण एकसूत्रता में तयार हो जाती है परन्तु इस शैली में दो या तीन से अधिक पात्रों का समावेश होने से कथावस्तु में विशृंखलता आ सकती है। विचारकों की दृष्टि में प्रथम पद्धति की अपेक्षा यह अधिक उपयुक्त है क्योंकि उसमें एक मुख्य दोष यह है कि कहानी कहने वाले पात्र के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक रीति से नहीं हो सकता अर्थात् कहानी कहने वाला पात्र अपने भाव, विचार तथा अपने अंतस्तल की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों की अभिव्यक्ति कर सकता है लेकिन अन्य पात्रों के चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में उसे यह सुविधा प्राप्त नहीं होती परन्तु इस प्रणाली में यह दोष नहीं देख पड़ता अतः इसमें यथार्थता का पूर्ण आरोप रहता है और चरित्र चित्रण भी सुन्दरतम रूप में दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचन्द की 'ब्रह्म का स्वांग,' सुदर्शन की 'कवि की स्त्री' अश्क की 'चित्रकार की मौत' तथा सुशीला अवस्थी की 'रूप का रहस्य' नामक कहानियाँ इसी प्रणाली में लिखी गई हैं। 'चित्रकार की मौत' में लालचंद जगत किशोर और राजरानी, 'कवि की स्त्री' में सत्यवान सावित्री और मतिराम तथा 'रूप का रहस्य' में दीक्षा चंद्रा और मनीश नामक तीन-तीन पात्र हैं लेकिन 'ब्रह्म का स्वांग' में केवल दो ही पात्र हैं। इन कहानियों के ये सभी पात्र अपने अपने जीवन की घटनाओं को सुनाते हैं तथा उनके द्वारा कही गई घटनायें शृंखलाबद्ध होकर कथानक को पूर्ण बना देती हैं।

आत्म चरित्र प्रणाली के तीसरे रूप को ग्रहण करने वाली कहानियों में कहानीकार स्वयं ही पूर्ण कहानी का सृजन करता है अर्थात् कहानीकार स्वयं ही कहानी का 'मैं' बन जाता है और अपने आत्मभाषण में कहानी के अन्य पात्रों को सम्मिलित कर लेता है। स्मरण रहे कहानीकार को कहानी की गति बढ़ाने में भी पूर्ण सचेष्ट रहना चाहिए और 'मैं' के चरित्र चित्रण के साथ-साथ अन्य पात्रों के भावों और विचारों के निरीक्षण तथा अभिव्यक्ति की ओर भी ध्यान देना चाहिए। वस्तुतः आत्म चरित्र प्रणालियों के इन तीनों रूपों [illegible] अंतिम रूप ही सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है तथा आत्म विश्लेषण [illegible] अधिक रहती है और आत्म चरित्र प्रणालियों की [illegible] की [illegible]

"बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे की एक बेंच पर बैठ गये।

नैनीताल की संध्या धीरे धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से, भाप के बादल हमारे सिरों को छू छूकर बेरोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रंगकर कभी नीले दीखते, कभी सफेद और फिर देर में अरुण पड़ जाते, वे जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे थे।"

—अपना अपना भाग्य : जैनेन्द्र

और भी—

"जब हम लोग फौरेस्ट के बँगले पर पहुँचे तो पाँच बज गए थे। मई की गरमी से वह बंगला काफी तपा था और साठ मील का सफर तय करने के बाद हम बहुत थक गए थे। इस फौरेस्ट की अपनी निजी सड़क में आए थे जहाँ कि शिकार खेलने की मनाही है।"

—सुलताना की आत्मा : पहाड़ी

और भी—

"लड़की के सीने-पिरोने, भोजन बनाने तरह-तरह के अचार-मुरब्बे डाल सकने और बिनाई तथा कशीदाकारी में निपुण होने के प्रमाण क्रमशः मेरे सामने आ गये। लड़की के कोई बालिग भाई न होने के कारण उनके पिता को ही यह सब परिचय देना पड़ रहा था। वे निम्न मध्यवर्ग के भलेमानस गृहस्थ थे। यह सब दिखाते-बताते उन्हें जो लज्जा और कुंठा बोध हो रही थी वह इतनी तीव्र थी कि स्वयं मैं भी जो वर बनकर वहाँ अपनी आँखों सब देखने भालने गया था, लाज के भार से नत हो उठा।"

—अच्छा लड़का, अच्छी लड़की : चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

और भी—

"उसने एक नजर मेरी ओर देखा और खाँसने लगा।

उसे जोर की खाँसी आई थी। आया करे। मुझे क्या? मैं अपनी धुन में आगे चलता रहा। लेकिन कदम बढ़ाना कठिन हो रहा था। उसकी वह विषादपूर्ण दृष्टि मुझे पीछे की ओर खींच रही थी। मैं अधिक देर उसकी उपेक्षा न कर सका। लौटकर उसके पास आया और देखते ही चौंक उठा और चिल्लाया—प्यारासिंह!'

—जिन्दगी की उमंग : हंसराज 'रहबर'

और भी—

"हम लोग कुछ ही दिन हुए, अभी इस नये घर में आकर बसे थे। सफेद पत्थर के दक्षिणगामी इस घर की उन्मुक्त विशाल अटारी पर खड़े होकर हरित श्यामल वनों के पार विन्ध्या के नील धूमिल चपल शिखर वृक्षों से भरी श्यामलता ममहती धार

आकाश-खंड के से छोटे-छोटे जलाशय विस्तरण से साफ दिखलाई पड़ते। बस, इसी-लिए यह घर मुझे विशेष पसन्द आ गया था। हमारी छत अड़ोस-पड़ोस के सभी मकानों से ऊँची थी। किसी घर में भोजन करते लोग, तो किसी घर के अंतःपुर की खिड़की के पास का शृंगार का आला तो किसी के घर के शयन कक्ष की खिड़की के पास खड़े पलंग और शायद किसी बहुत दूर के घर में स्नानघर का अधखुला दरवाजा हम बखूबी देख सकते थे। ऐसी थी हमारी उस ऊँची छत की रोमांटिक निगुफ़्तान।

—वह पत्थर   वीरेन्द्रकुमार जैन

संलाप (Conversational) शैली को कथोपकथन प्रणाली भी कहा जाता है तथा डा० लक्ष्मीनारायण लाल इसे नाटकीय शैली के अंतरगत ही स्थान देते हैं। कथोपकथन प्रणाली में कथानक और चरित्र का विकास वार्तालाप के द्वारा किया जाता है तथा पात्रों के चारित्रिक विकास एवं घटनाओं के क्रमिक प्रवाह के लिए भी यह पद्धति उपयुक्त सिद्ध होती है परन्तु कहानीकार को इस बात की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि सम्पूर्ण कहानी केवल एक ही तरह कथोपकथन में न लिखी जाय तथा वह वातावरण, दृश्य चित्रण आदि का भी निर्देश करता रहे जिससे कि पात्रों का चरित्र स्पष्ट हो सके और कथावस्तु में भी सजीवता आ सके। बहुत से विद्वान तो कथोपकथन प्रणाली की स्वतंत्र सत्ता ही स्वीकार नहीं करते तथा इसे वर्णनात्मक शैली के ही अंतर्गत सम्मिलित कर लेते हैं लेकिन वास्तव में संलाप शैली को पृथक प्रणाली ही मानना चाहिए। हिंदी के अधिकांश कहानीकारों को इस पद्धति के अपनाने में सफलता भी प्राप्त हुई है। उदाहरणार्थ—

"कणिका की माँ को कलाई पर बंधी घड़ी दिखाते हुए निवारण बाबू ने कहा 'ऐसे अपनी सुपुत्री के लक्षण, नौ बजने आए और अभी तक उसका कहीं कुछ पता ही नहीं।' कणिका की माँ ने कणिका के हिस्से का भात एक थाली में रखकर उस पर दूसरी थाली ढँकते हुए सहज भाव से कहा—'बस आती ही होगी। कहीं सखी सहेलियों में बैठ गई होगी। आखिर इतने अधीर क्यों हो रहे हो।

'हाँ बैठ गई होगी सखी सहेलियों में।' जरा व्यंग्य से निवारण बाबू ने कहा–'मुझे तो आजकल इसके रंग-ढंग अच्छे नहीं नजर आते? तुम्हीं ने शह दे-देकर इस सिर पर चढ़ाया है। अब देखना इसके करतब।

'करतब क्या देखूँगी।' जरा मल्लाकर कणिका की माँ ने कहा–'तुम अब-तक यह क्या बकने लगते हो। अगर ऐसा ही था, तो पहले उसे पढ़ाया क्यों? बाहर घूमने फिरने की आजादी क्यों दी? शर्म नहीं आती तुम्हें अपनी ही लड़की के बारे में ऐसी बातें कहते।'

—अपना राज   मोहनसिंह सेंगर

जैसा कि अभी-अभी हम लिख चुके हैं विचारक संलाप-शैली को नाटकीय शैली के अंतर्गत ही स्थान देते हैं अतः इस कथोपकथनात्मक प्रणाली के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की पद्धति भी कहानीकारों द्वारा प्रयुक्त की जाती है जिसका कि शिल्प-विधान बहुत कुछ एकांकी नाटकों के रूप-विधान के अनुरूप ही होता है। वस्तुतः यह प्रणाली आधुनिक कहानी-कला की देन है और इसका प्रचलन भी अभी अभी हाल में ही होना प्रारंभ हुआ है।[1] अज्ञेय के 'जयदोल' नामक कहानी-संग्रह में 'कविप्रिया' और 'वसंत' नामक दो कहानियाँ नाटकीय शैली के अंतर्गत आती हैं परन्तु इनमें से कविप्रिया तो विशुद्ध एकांकी नाटक प्रणाली में ही लिखी गई है अतः उसे कहानी कहना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। हाँ 'वसंत' में अवश्य ही अज्ञेय ने शिल्प-विधान की दृष्टि से नया प्रयोग किया है और उसमें कहानी तथा एकांकी नाटक दोनों के तत्त्वों का चरम तादात्म्य कर देने के फलस्वरूप सर्वथा एक नई कथावस्तु अवतरित हुई है। नाटकीय शैली का यह उदाहरण देखिए जो कि एकांकी नाटक और कहानी दोनों का सुन्दर समन्वय प्रतीत होता है—

"पति— तो चलो कहीं बाग में चलेंगे या बाहर खेतों की तरफ। आजकल नदी की कछार पर सरसों खूब फूल रही है। बीच बीच में कहीं अलसी के नीले फूल—"

नेपथ्य में कहीं धीरे धीरे वही बाँसुरी बजने लगती है। मानों स्मृति को जगाती हुई मानों पुरानी याद कुरेदती हुई।

---

१ स्मरण रहे प्रेमचन्द आदि द्विवेदीयुगीन कहानीकारों की कहानियों में कथोपकथन के मध्य नाटकीय संकेत भी दिए गए हैं परन्तु इन नाटकीय संकेतों के योग से कथाओं का सौंदर्य नष्ट सा हो जाता है। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द की एक कहानी का यह अंश देखिए—

"धर्मसिंह— हाँ संभव है कि वह तुम्हारा कोई रिश्तेदार हो।
पृथ्वीसिंह—(जोश में) कोई हो यदि वह मेरा भाई ही हो तो भी जीता न बचे।
धर्मसिंह—[illegible]।
पृथ्वीसिंह—मैंने उसे नहीं देखा।
धर्मसिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है। यह वही कुकर्मी धर्मसिंह ही है।
पृथ्वीसिंह—(घबराकर) क्या तुम...मैं...।

वस्तुतः कहानी में घबराकर आदि निर्देशों का प्रयोग कहानी में उपयुक्त नहीं प्रतीत होता क्योंकि कहानी अभिनय की वस्तु नहीं है और वर्तमान कहानीकार [illegible] प्रकार के प्रयोग का व्यवहार ही नहीं करते। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस नाटकीय पद्धति के प्रयोग की [illegible] नाटकीय शैली में लिखी गई कहानियों में अधिक [illegible] है।

स्त्री—(मानो स्वगत) वह कहता था सरसों के फूल में मेरा ही रंग खिलता है। और आम के बौर में—

पति—क्या गुनगुना रही हो, मालती ? तुम्हें याद है उस बार जब मैं—

स्त्री—'कब ?

पति—'बतो मत ? उस बार जब गौने के बाद तुम आयी ही थीं, और मैंने कहा था कि— ...'

स्त्री—(मानो स्वप्न सी और न पसीजती हुई) मुझे कुछ याद नहीं है। मैं तो सोचती हूँ, यह याद भी मर्दों की ईजाद है। उनके लिए भूलना इतना सहज सत्य जो है।"

—वसन्त अज्ञेय

और भी—

"मोसम की थाली पर बैठे छोटे राजकुमार ने पूछा, 'माँ वह महल लाल पन्नों का है न ?'

रानी ने कहा—कौन सा महल बेटा ? यह तुम कुछ खा नहीं रहे हो ? खाओ।'

राजकुमार ने कहा—'माँ, सात समुद्र पार जो नीलम के देश की छोटी-सी रानी है। उनका महल लाल पन्नों का तो है न ?'

माँ ने कहा—'हाँ बेटा, लाल पन्ने का है और उसमें हीरे भी लगे हैं पर अब तुम खाना खाओ उस महल का क्या ... "पर वह कहानी तो रात को होगी।

—राजपथिक जैनेन्द्रकुमार

पत्रात्मक (Epistolatory) प्रणाली में कहानीकार पत्रों के माध्यम से सम्पूर्ण कहानी की सृष्टि करता है तथा समूची कथा का विकास पत्रों के उत्तरप्रत्युत्तर के रूप में होता है और सभी घटनाएं पत्रों में ही वर्णन की जाती हैं। शैली की दृष्टि से यह प्रणाली आत्मचरित्र शैली के अनुरूप ही है क्योंकि इसमें भी प्रत्येक पात्र अपनी हृदगत् भावनाओं को ही पत्रों द्वारा प्रकट करता है और इस प्रकार कहानी में संवेदनशीलता तथा मनोवैज्ञानिकता के लिए पर्याप्त स्थान रहता है परन्तु इस प्रणाली में त्रुटियों का भी सर्वथा अभाव नहीं है। चूँकि पत्रों में बहुत सी अनावश्यक बातें भी शिष्टाचार के लिए लिखनी पड़ती हैं जिनका कि कहानी से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता अतः हिंदी कथा-साहित्य में पत्रात्मक शैली के बहुत से ऐसे उदाहरण भी देखे पड़ते हैं जो कि कलात्मक दृष्टि से सुन्दर नहीं कहे जा सकते।[1] चूँकि कहानी की

१ कुछ उदाहरण देखिए—

"कानपुर
१।१२।२७

प्रिय करुणा

तुम्हारा पत्र मिला। पत्र पर तुम्हारे अक्षर देखकर हृदय में स्पन्दन सी मच गई।

संवेदना विभिन्न पत्रों में बिखरी रहती है अतः एकसूत्रता के अभाव में न तो वातावरण की ही सृष्टि हो पाती है और न पात्रों का चारित्रिक विकास ही संभव रहता है लेकिन

अधरों की मूर्तियों में मुझे ऐसा भान पड़ा जैसे तुम इस समय भी उस दिन की भाँति खिड़की से झाँक कर मुझे देखना चाहती हो और मैं वाटिका में टहलते-टहलते ज्योंही खिड़की के सामने आकर तुम्हारी ओर आँखें उठाता हूँ तुम मुसकराकर मुँह फेर लेती हो परन्तु फेर लेने पर भी मैं उसकी अंतिम झाँकी को अपने अंतस्तल में छिपा ही लेता हूँ। मुँह छिपाकर उसे तुम मुझसे छीन थोड़े ही सकती हो…… ……।

—परीक्षा भगवतीप्रसाद वाजपेयी

और भी—

'गुलमर्ग'

१४ श्रावण

भाई कमल

सुबह नौ बजे बिस्तर से उठा हूँ, अभी तक नींद की खुमारी नहीं टूटी। कल बहुत दिनों के बाद घुड़सवारी की थी अतः टाँगें कुछ थकी सी प्रतीत होती हैं। आज कहीं नहीं जाऊँगा…… ……।"

—एक सप्ताह चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

और भी—

"२१-८-३८

मेरी दुलारी बहन मीना,

स्नेह!

तुम्हारा पत्र कल मिला। आखिर तुम अधीर हो उठी न। तुम नहीं समझ सकती कि हम तुम्हारी अधीरता व तुम्हारे पत्र के शब्द शब्द पर एक दुःख भरा राग मुझे किस क़दर परेशान किया है। ऐसा लगता है जैसे तुम मेरी वह चुलबुली बहन रह ही नहीं गई नहीं तो इस तरह नपे-तुले शब्दों में सिर्फ न जाने कितनी बातों की कैफ़ियत भर माँगकर चुप हो जातीं? वह हृदय में किसी मधुर स्वप्न की याद सी गुदगुदियाँ भरने वाली तुम्हारी बातें वह सदा रंगीन फव्वारों की बूँदों से भरने मुस्कराते शब्द वह रोम रोम में फुरहरी लाने की बयार सी गुदगुदी पैदा करने वाली तुम्हारी बातचीत करने की चुलबुली शैली। ओह! बहन यह सब तुमने कहाँ खो दिया? तुम्हारे पिछले पत्र को ही बात कहूँ उस अवस्था में भी पढ़ते पढ़ते ऐसा लगता था, जैसे मैं तुम्हारे पास पहुँच गई हूँ। तुम कुछ कह रही हो और तुम्हारे एक वाक्य पर हँसते-हँसते दिल लोट-पोट हो रहा है, हृदय से छलक कर आँखों में प्रसन्नता की बूँदें चमक रही हैं और जैसे तुम उन बूँदों को पोंछने कह रही हो—बस बस बहन ज्यादा न हँसो नहीं पेट दुखने लगेगा। और मेरी हँसी का तार ऐसा बँध जाता है जैसे कभी टूटने का ही न हो।"

—मैया का मूल्य भैरवप्रसाद गुप्त

हमारी दृष्टि में तो पर्याप्त सतर्कता बरतने पर इस शैली में इन दोषों का अभाव ही दृष्टिगोचर होगा तथा कला की प्रभाविष्णुता ही दिख पड़ेगी अतः यह कहना कि "इसमें प्रयोगशीलता और कलात्मक आडम्बर ही अधिक है, कहानी की मूल आत्मा अप्रस्फुटित ही रह जाता है" पूर्णतः उचित नहीं है। स्मरण रहे पत्रात्मक शैली के भी तीन रूप हमें कथा साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें से प्रथम में तो केवल एक ही पात्र के माध्यम से सम्पूर्ण कहानी का निर्माण होता है अर्थात् केवल किसी एक ही पात्र विशेष द्वारा पत्र लिखे जाते हैं और उनमें सभी घटनाएँ अंकित रहती हैं, जैसे—

काशी
४ १० '७

प्रिय भाई केशव,

तुम्हारा पत्र दो मास से नहीं आया। मुझे दुःख है। कभी दो चार लाइन तो लिख दिया करो। मैं जानता हूँ, तुम्हें अवकाश नहीं मिलता। तुम दिन रात अपनी धुन में मस्त रहते हो, तुम्हारी सफलता का समाचार मुझे समाचार पत्रों से ज्ञात हो जाता है।

०   ०   ०   ०

आजकल घर में स्त्रियाँ मुझसे अप्रसन्न हैं। मेरा अपराध यह है कि इधर मैंने 'गंगा' नाम की एक दासी को नियुक्त किया है। उसका किस्सा इस तरह है—एक दिन सन्ध्या समय मैं बरामदे में बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। गंगा ने आकर कहा – सरकार, एक औरत नौकरी के लिए आई है, उससे किसी ने कह दिया है कि कोठी में एक दासी की जरूरत है।

मैंने कहा—तंग न कर, इस समय पढ़ रहा हूँ।

उसकी ओर ध्यान न देकर मैं पढ़ने लगा। पुस्तक की तरफ से ध्यान हटा मैंने देखा वह चुपचाप खड़ा है। मैंने समझा इसमें कुछ रहस्य है। मैंने कहा—तू क्यों खड़ा है गंगा ?"

—अपराध विनोदशंकर व्यास

स्मरण रहे कि एक ही पात्र के माध्यम से निर्मित पत्रात्मक प्रणाली की कहानियों के भी दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं और उनमें से एक में तो पत्रों की संख्या एक से अधिक रहती है तथा उन सभी पत्रों का अध्ययन करने पर ही हमें सम्पूर्ण कहानी का रसास्वादन हो पाता है लेकिन दूसरे में केवल एक ही पत्र में समूची कहानी कह दी जाती है। सुदर्शन की 'बलिदान' नामक कहानी में ग्यारह पत्र हैं और प्रसाद की 'देवदासी' तथा विनोदशंकर व्यास की 'अपराध' नामक कहानी में भी क्रमशः

पत्रों की संख्या अधिक ही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि पत्रों की संख्या अधिक रहने पर भी कुशल कहानीकार कथा-शिल्प को अक्षुण्ण रखने में पूर्ण समर्थ रहता है लेकिन इधर कतिपय समीक्षकों का यह भी मत है कि शिल्प-विधान की दृष्टि से केवल एक ही पत्र में सम्पूर्ण कहानी को अंकित कर देना अधिक सुन्दर है क्योंकि इस प्रकार एक ही पत्र में कही गई कहानी में अनर्गल प्रलाप या व्यर्थ की सामग्री का समावेश नहीं हो पाता। प्रसन्नता की बात है कि आधुनिक कथा-साहित्य में इस प्रकार के कुछ सुन्दर उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"उमा प्रिय,

तुम्हें यह खत मैं इलाहाबाद से लिख रहा हूँ, लेकिन यह इलाहाबाद वह नहीं है जिसे तुम जानती हो। दो रोज हुए उस इलाहाबाद की मौत हो गयी। मेरे यहाँ पहुँचने के पहले उसका जनाजा निकल चुका था।

यह नहीं कि भूचाल आया और शहर के सारे मकान ढह पड़े, सड़कें फट गयीं और पानी निकल आया और जहाँ पहले ठोस धरती थी, वहाँ अब पानी लहरें मारने लगा। नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ, सभी मकान अपनी जगह बदस्तूर कायम हैं और सड़कें फासले को कम करने की कोशिश में शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ रही हैं, हस्ब-मामूल बेतहाशा, लेकिन कम नहीं कर पातीं फासले को ...."

—अदालत के धुँधलके में   अमृतराय

ये पत्र केवल एक ही पात्र द्वारा नहीं लिखे जाते अपितु एक से अधिक और दो या तीन व्यक्तियों द्वारा पत्र प्रस्तुत कराकर कहानी तैयार की जाती है। प्रेमचन्द की 'दो सखियाँ' तथा अश्क का 'नरक का चुनाव' इसी शैली की कहानियाँ हैं। आत्म चरित प्रणाली के दूसरे रूप की चर्चा करते समय हम उसकी जिन त्रुटियों का उल्लेख कर चुके हैं उनसे इस प्रणाली में भी सतर्क रहना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा कहानी की कलात्मकता नष्ट हो जायगी। इनके साथ-साथ कुछ ऐसी भी पत्रात्मक कहानियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें कि कथा-वस्तु का आरम्भ और विकास तो पत्रों के माध्यम से ही होता है लेकिन कथानक का अंतिम भाग स्वतंत्र चित्रण विश्लेषण और वर्णनों द्वारा ही सम्पन्न होता है। अज्ञेय की 'सिगनेलर' तथा अश्क की 'मरीचिका' इसी शैली की हैं और विचारकों की दृष्टि में प्रभावोत्पादकता, आकर्षण तथा कौतूहलता इस प्रणाली में लिखी गई कहानियों में अधिक है।

जहाँ कि कुछ समीक्षक डायरी शैली को पत्रात्मक शैली का दूसरा रूप मानते हैं वहाँ कुछ उसे आत्मचरित्र प्रणाली में ही स्थान देना उचित समझते हैं परन्तु विचारपूर्वक देखा जाय तो डायरी शैली का भी स्वतंत्र अस्तित्व है। हाँ इन दोनों प्रणालियों से यह इस दिशा में आत्मीयता अवश्य रखती है और इस प्रकार पत्रात्मक

प्रणाली की भाँति उसमें डायरी के विभिन्न पृष्ठों के माध्यम से सम्पूर्ण कहानी अंकित की जाती है तथा आत्मचरित शैली की भाँति 'स्व' विवेचन ही उसमें भी रहता है और अतीत का चित्रण पूर्ण अनुभूति तथा भावुकता के साथ करते हुए आत्म विश्लेषण एवं मानसिक स्थिति का निरूपण भी सफलता के साथ किया जाता है। श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'ममता' और श्री इलाचन्द्र जोशी की 'मेरी डायरी के दो नीरस पृष्ठ' इस दिशा में अवश्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं परन्तु हिन्दी में इस प्रणाली का उपयोग बहुत ही कम हुआ है और जब कि हमारी नई पीढ़ी के सशक्त लेखकों ने पत्रात्मक शैली को सफलता के साथ अपनाया है तथा कुछ सुन्दर कहानियाँ इस शैली में लिखी भी हैं वहाँ डायरी प्रणाली अभी भी उपेक्षणीय सी पड़ी है। इधर श्री राघी ने तो आधुनिक कथा साहित्य में एक सुन्दर नवीन प्रयोग किया है और 'कैशबुक के पन्ने' नामक कहानी में कैशबुक की टीपनों के रूप में ही सम्पूर्ण कहानी अंकित की है तथा पात्रों के जीवन प्रवाह का मार्मिक चित्रण किया है उदाहरणार्थ--

आय नाम और विवरण व्यय

१—आय आयुतिथि ५-२ ११, महत्व संख्या १२

वि० मा० क०

३-४-८ मा

बारह दिन से मेरा बुखार नहीं उतर रहा। मेरी तीन दिन की अनुनय-विनय पर पसीज कर मा ने आज मुझे मोतीचूर के दो लड्डू खिला दिये हैं। तीन दिन हुए टोकरी भर लड्डू सन्दूक में लाकर रखे गये हैं। तभी से मेरा इन्हीं पर जी लगा था। इस पर पिता जी ने माँ को बहुत डाँटा है। माँ ने कहा—'मुझसे लड़के का मन नहीं तोड़ा जाता, उसे क्यों तक तरसाऊँ। लड्डू नहीं नुकसान करेंगे।' पिता जी ने इस पर भी उन्हें बहुत डाँटा है और वह बहुत रोई हैं।

२—आय आयुतिथि ४-८ १०, महत्व संख्या १०

४-८ १ पंचमा : कहार

मुझे विश्वास न था, लेकिन पंचमा को पूरा विश्वास था कि मैं अपने दरवाजे से फेंककर अपना लकड़ी का गेंद दूर सामनेवाले पेड़ तक पहुँचा सकता हूँ। उसके हौसला दिलाने पर मैंने गेंद उधर फेंका और वह सचमुच उस पेड़ तक पहुँच गया। अपनी शक्ति के परिचय पर मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा और मैं पंचमा का बहुत कृतज्ञ हुआ।

३—आय आयुतिथि ६ १ २०, महत्व संख्या १४

२ ४ ४ पिताजी

पिताजी ने मुझे कोठरी में बंद करने की सजा दी थी। रोते रोते मैं भूखा कोठरी में सो गया। किवाड़ खोलकर पिता जी ने मुझे छाती से लगाकर बहुत प्यार किया और मेरे भूखे सो जाने पर बहुत पछताये। मुझे आज मालूम हुआ कि

पिता जी बुरे नहीं हैं और वह मेरी ज़िद पर ही मुझे सजा देते हैं और फिर भी बराबर प्यार करते रहते हैं।

० ० ०

१—समय आयुतिथि ७ १० १२, महत्व संख्या १

—पंडित रामलाल ६ ३ ४

यह मुझे स्कूल में पढ़ाते हैं। यह मुझे बहुत मारते हैं। मैं इनसे बहुत डरता हूँ। कल इन्होंने एक दूसरे लड़के के कसूर पर मुझे मारा था। आज से मैं स्कूल नहीं जाऊँगा और धूप में बैठ बैठकर बुखार बुला लूँगा। पंडित जी पर आज मुझे बहुत गुस्सा आ रहा है। वह मर जायें तो अच्छा हो।

२—समय आयुतिथि ७-११ १२, महत्व संख्या ३

रामशंकर सहपाठी ? ?

यह बहुत बदमाश लड़का है। मेरी चीजें चुरा लेता है और झूठी शिकायतें करता और पिटवाता है। आज मैंने भी उसकी स्लेट चुराकर अपने बस्ते में रख ली है।

—कैशबुक के पन्ने राधी

इन उपयुक्त प्रणालियों के अतिरिक्त कहानियों की कुछ अन्य शैलियाँ भी प्रचलित हैं और कुछ कहानियाँ ऐसी भी दीख पड़ती हैं जिनमें कि कोई व्यक्ति सुप्तावस्था में अंकित किया जाता है और वह सपने में जो कुछ देखता है उसे ही कहानी में अंकित किया जाता है। इस प्रकार की कहानी स्वप्न शैली की कहानी कहलाती है। स्मरण रहे स्वप्नदर्शक की निद्रावस्था इस ढंग से दिखाई जाती है कि पाठक को प्रारंभ में उसका पता ही नहीं चलता और जब उसकी पत्नी या कोई ऐसा ही व्यक्ति उस स्वप्नदर्शक को जगाता है तभी वह यह जान पाता है कि वह स्वप्न देख रहा था और पाठक भी आश्चर्यान्वित हो यह समझ जाता है कि सम्पूर्ण कहानी स्वप्न शैली में कही गई है। हिंदी में इस प्रकार की कहानियों की संख्या बहुत कम है और अज्ञेय की 'चिड़ियाघर' में ही इस प्रणाली का उत्कृष्टतम रूप दृष्टिगोचर होता है। 'चिड़ियाघर' कहानी में नायक को चिड़ियाघर देखने से चिढ़ रहती है जब कि उसकी पत्नी को चिड़ियाघर देखना ही पसन्द है। कहानीकार ने स्वप्न में ही नायक का अपनी पत्नी के साथ विवश होकर चिड़ियाघर जाना और मनुष्य की स्वार्थपरायणता के स्वरूपों का देखना अंकित किया है। कहानी का रहस्य अंत में ज्ञात होता है जब कि उसकी पत्नी उसे जगाकर चिड़ियाघर ले चलने का प्रस्ताव करती है।

कहानियों की प्रणालियों पर विचार करते समय ही उन कहानियों पर भी विचार करना होगा जो कि आकार में बहुत ही छोटी होती हैं। इधर कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी जा रही हैं जिनका कि आकार बहुत ही छोटा होता है और उन्हें लघु कथा भी कहा जाता है। कुछ विचारकों ने तो लघु कथा और कहानी में विभिन्नता स्थापित करने के प्रयास भी किए हैं परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो सका है कि लघु कथा और कहानी क्या वास्तव में विभिन्न हैं? यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो लघु कथा में भी वे ही विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं जो कि कहानियों में देख पड़ती हैं और आकार भेद के अतिरिक्त कोई भी विशिष्ट अन्तर उनमें नहीं देख पड़ता। पाश्चात्य साहित्य में तो इस प्रकार की लघु कहानी कला के कई सुन्दर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं[1] और इधर हिन्दी में भी कुछ ऐसी लघुतम कथायें देख पड़ती हैं जिनमें कि कथात्मकता और भावात्मकता का सुन्दर समन्वय है। डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' की 'मुन्नी मुन्नी' नामक निम्नांकित कहानी देखिए—

'मुन्नी और चुन्नी में लाग डाट रहती है। मुन्नी ६ वर्ष की है, चुन्नी पाँच की। दोनों सगी बहनें हैं। जैसी धोती मुन्नी को आए, वैसी ही चुन्नी को। जैसा गहना मुन्नी को बने वैसा ही चुन्नी को। मुन्नी 'ब' में पढ़ती थी, चुन्नी 'अ' में। मुन्नी ने माना था कि मैं पास हो जाऊँगी तो महावीर स्वामी को मिठाई चढ़ाऊँगी। माँ ने उसके लिए मिठाई मँगा दी। चुन्नी ने उदास होकर धीमे से अपनी माँ से पूछा, 'अम्मा क्या जो फेल हो जाता है वह मिठाई नहीं चढ़ाता ?'

इस भोले प्रश्न से माता का हृदय गद्गद् हो उठा। 'चढ़ाता क्यों नहीं बेटा' —माँ ने यह कहकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। मुन्नी ने चुन्नी के चढ़ाने के लिए भी मिठाई मँगा दी।

जिस समय वह मिठाई चढ़ा रही थी, उस समय उसके मुँह पर संताप के चिन्ह थे मुन्नी के मुख पर ईर्ष्या के माता के मुख पर विनोद के और देवता के मुख पर झेंप के।'

इधर कतिपय लेखकों ने कुछ कहानियों की 'पैरोडी स्वरूप' भी कई सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। यों तो इस प्रकार की कहानियाँ हास्यप्रधान कहानियाँ ही कहलाती हैं और इनकी शैली भी प्रायः आत्मपरक या वर्णनात्मक ही होती है परन्तु 'पराडी' को कुछ विचारक स्वतन्त्र प्रणाली भी मानते हैं। किसी प्रसिद्ध लेखक

---

१ विश्व की सबसे छोटी कहानी यह कही जाती है—

"दो यात्री साथ साथ रेल के डिब्बे में बठे यात्रा कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में एक ने कहा—'मैं भूतों पर विश्वास नहीं करता। दूसरा मुस्करा कर बोल उठा—'सचमुच। और गायब हो गया।"

की कोई प्रसिद्ध कहानी लेकर उस शैली का अनुसरण करते हुए, उसके समानांतर पर घर, हास्य की अवतारणा की जाती है परन्तु यहाँ यह स्मरण रहना चाहिए कि दोनों की कथावस्तु का स्वरूप गति, शैली, वाक्य विन्यास एवं प्रवृत्ति में समानता होते हुए भी दोनों की विषयवस्तु में विभिन्नता रहती है। हिंदी में कविताओं की पैरोडी के अवश्य कई सफल प्रयोग देख पड़ते हैं और कहानियों की पैरोडी प्रस्तुत करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुंडि' की एक छोटी सी पुस्तक 'सिमिरिखी ने कहा था' अवश्य इस दिशा में उल्लेखनीय है और उसमें उन्होंने कुछ प्रसिद्ध कहानियों की पैरोडी सफलता के साथ दी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूप विधान की दृष्टि से किसी भी कहानी को पैरोडी का रूप प्रदान करना सहज नहीं है और जो भी कलाकार इस दिशा में प्रयास करता है वह निर्विवाद रूप से धन्यवाद का पात्र है अतः हम भुशुंडि जी के इस प्रयासों की प्रशंसा ही करेंगे। यदि हिंदी के अन्य कहानीकार भी इस दिशा में प्रयास करें तो निश्चय ही कथा साहित्य की अभिवृद्धि होगी लेकिन दुःख है कि स्वयं भुशुंडि जी इन दिनों इस दिशा में उदासीन से हैं और 'सिमिरिखी ने कहा था' के पश्चात् उनकी अन्य कोई उल्लेखनीय कृति प्रकाश में नहीं आई। स्मरण रहे 'सिमिरिखी ने कहा था' नामक कहानी गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' की सफल पैरोडी है और इसमें कोई संदेह नहीं कि हास्यव्यंग्य की इतनी सुन्दर कलापूर्ण अवतारणा बहुत कम कहानियों में देख पड़ती है। डॉ० भोलानाथ ने तो अपनी 'थीसिस' हिन्दी साहित्य (१९२६-१९४६ ई०) में 'उसने कहा था' और 'सिमिरिखी ने कहा था' के कुछ प्रसंगों की तुलना भी की है तथा भुशुंडि जी के प्रयोग को पूर्ण सफल माना है, देखिए—

'उसने कहा था'	'सिमिरिखी ने कहा था'
'बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें।'	'प्राइमरी मदरसों के मुदर्रिसों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान तक पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों लड़कों तथा लड़कियों की बोली का मरहम लगायें।
... ...	... ...
'तेरे घर कहाँ है ?'	'आप कहाँ पढ़ती हैं ?'
'मगरे में, और तेरे ?'	'आई टी कालिज में, और आप ?'
'मांझे में — यहाँ कहाँ रहती है ?'	'यूनिवर्सिटी में। आप यहाँ कहाँ रहती हैं ?'

कहानियों की प्रणालियों पर विचार करते समय ही उन कहानियों पर भी विचार करना होगा जो कि आकार में बहुत ही छोटी होती हैं। इधर कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी जा रही हैं जिनका कि आकार बहुत ही छोटा होता है और उन्हें लघु कथा भी कहा जाता है। कुछ विचारकों ने तो लघु कथा और कहानी में विभिन्नता स्थापित करने के प्रयास भी किए हैं परन्तु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो सका है कि लघु कथा और कहानी कला वास्तव में विभिन्न हैं? यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो लघु कथा में भी वे ही विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं जो कि कहानियों में देख पड़ती हैं और आकार भेद के अतिरिक्त कोई भी विशिष्ट अन्तर उनमें नहीं देख पड़ता। पाश्चात्य साहित्य में तो इस प्रकार की लघु कहानी कला के कई सुन्दर उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं' और इधर हिन्दी में भी कुछ ऐसी लघुतम कथाएँ देख पड़ती हैं जिनमें कि कथात्मकता और भावात्मकता का सुन्दर समन्वय है। डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' की 'चुन्नी मुन्नी' नामक निम्नांकित कहानी देखिए—

'मुन्नी और चुन्नी में लाग डाट रहती है। मुन्नी ६ वर्ष की है, चुन्नी पाँच की। दोनों सगी बहनें हैं। जैसी धोती मुन्नी को आए, वैसी ही चुन्नी को। जैसा गहना मुन्नी को बने वैसा ही चुन्नी को। मुन्नी ब में पढ़ती थी, चुन्नी 'अ' में। मुन्नी ने माना था कि मैं पास हो जाऊँगी तो महावीर स्वामी को मिठाई चढ़ाऊँगी। माँ ने उसके लिए मिठाई मँगा दी। चुन्नी ने उदास होकर धीमे से अपनी माँ से पूछा, अम्मा क्या जो फेल हो जाता है वह मिठाई नहीं चढ़ाता ?'

इस भोले प्रश्न से माता का हृदय गद्गद् हो उठा। 'चढ़ाता क्यों नहीं बेटा' —माँ ने यह कहकर उसे अपने हृदय से लगा लिया। मुन्नी ने चुन्नी के चढ़ाने के लिए भी मिठाई मँगा दी।

जिस समय वह मिठाई चढ़ा रही थी, उस समय उसके मुँह पर संतोष के चिह्न थे मुन्नी के मुख पर ईर्ष्या के माता के मुख पर विनोद के और देवता के मुख पर झेंप के।'

इधर कतिपय लेखकों ने कुछ कहानियों की 'पैरोडी स्वरूप' भी कई सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। यों तो इस प्रकार की कहानियाँ हास्यप्रधान कहानियाँ ही कहलाती हैं और इनकी शैली भी प्रायः आत्मपरक या वर्णनात्मक ही होती है परन्तु 'पैरोडी' को कुछ विचारक स्वतंत्र प्रणाली भी मानते हैं। किसी प्रसिद्ध लेखक

१ विश्व की सबसे छोटी कहानी यह कही जाती है—

"दो यात्री साथ साथ रेल के डिब्बे में बैठे यात्रा कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में एक ने कहा—"मैं भूतों पर विश्वास नहीं करता। दूसरा मुस्करा कर बोल उठा—'सचमुच'। और गायब हो गया।"

की कोई प्रसिद्ध कहानी लेकर उस शैली का अनुसरण करते हुए, उसके समानान्तर रख कर, हास्य की अवतारणा की जाती है परन्तु यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि दोनों की कथावस्तु का स्वरूप गति, शैली, वाक्य विन्यास एवं प्रवृत्ति में समानता होते हुए भी दोनों की विषयवस्तु में विभिन्नता रहती है। हिंदी में कविताओं की पैरोडी के अवश्य कई सफल प्रयोग देख पड़ते हैं और कहानियों की पैरोडी प्रस्तुत करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। श्री शारदाप्रसाद वर्मा 'भुशुण्डि' की एक छोटी सी पुस्तक 'चिमिरिखी ने कहा था' अवश्य इस दिशा में उल्लेखनीय है और उसमें उन्होंने कुछ प्रसिद्ध कहानियों की पैरोडी सफलता के साथ दी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि रूप विधान की दृष्टि से किसी भी कहानी को पैरोडी का रूप प्रदान करना सहल नहीं है और जो भी कलाकार इस दिशा में प्रयास करता है वह निर्विवाद रूप से धन्यवाद का पात्र है अतः हम भुशुण्डि जी के इस प्रयासों की प्रशंसा ही करेंगे। यदि हिंदी के अन्य कहानीकार भी इस दिशा में प्रयास करें तो निश्चय ही कथा साहित्य की अभिवृद्धि होगी लेकिन दुःख है कि स्वयं भुशुण्डि जी इन दिनों इस दिशा में उदासीन से हैं और 'चिमिरिखी ने कहा था' के पश्चात उनकी अन्य कोई उल्लेखनीय कृति प्रकाश में नहीं आई। स्मरण रहे 'चिमिरिखी ने कहा था' नामक कहानी गुलेरी जी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' की सफल पैरोडी है और इसमें कोई संदेह नहीं कि हास्यव्यंग्य की इतनी सुन्दर कलापूर्ण अवतारणा बहुत कम कहानियों में देख पड़ती है। डॉ० भोलानाथ ने भी अपनी 'थीसिस हिन्दी साहित्य (१९२६-१९४६ ई०)' में 'उसने कहा था' और 'चिमिरिखी ने कहा था' के कुछ प्रसंगों की तुलना भी की है तथा भुशुण्डि जी के प्रयोग को पूर्ण सफल माना है। देखिए—

'उसने कहा था'

'बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें।'

'तेरे घर कहाँ है?'

'मगरे में, और तेरे?'

'माँझे में—यहाँ कहाँ रहती है?'

'चिमिरिखी ने कहा था'

'प्राइमरी मदरसों के मुदर्रिसों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों लड़कों तथा लड़कियों की बोली का मरहम लगावें।'

'आप कहाँ रहती हैं?'

'[illegible] [illegible], [illegible]'

'[illegible] [illegible] [illegible] रहती है?'

'भगतसिंह के पैठक में थे मेरे मामा होते हैं।
'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।

....

कुछ दूर आकर लड़के ने मुस्करा कर कर पूछा—'तेरी कुड़माई हो गई ?
'—धत्, कहकर लड़की दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

....

'कल'—देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।

....

राम राम यह भी कोई लड़ाई है ?

....

गनीम कहीं दिखता नहीं ....

....

न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या पास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।

....

नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—हाँ, हाँ—वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था।'....आदि

'सिविल लाइन में बंगिल के साथ।'
'मैं मुकारिम नगर में मामा के यहाँ रहता हूँ।'

....

कुछ दूर चलकर लड़के ने पूछा—'आप कविता भी करती हैं ?'
'आप से मतलब ?'—कहकर लड़की आगे निकल गई और लड़का मुँह ताकता रह गया।

....

'हाँ, करती तो हूँ, देखते नहीं। इस मास की 'माधुरी' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

....

राम राम यह भी कवि-सम्मेलन है।

....

मिठाई-नमकीन की तो बात कहे, किसी ने एक बूँद पानी तक की खबर न ली।

....

बेईमान न जाने किस इंतजाम में फँसे हैं कि इधर आने का नाम तक नहीं लेते।

....

आप तो बड़ी जल्दी चोला बदल कर आ गये, मगर वह आनन्द यहाँ कहाँ, जो रायबरेली के कवि-सम्मेलन में था, जिसके संयोजक स्वयं सूफानमैल जी थे। कितनी सुन्दर रचनाएँ थी कुकुड जी की वाह-वाह, आपने भी उन्हें खूब समझाया था कि सूरदास की चौपाइयों में टियर गैस का असर है केशव की कुंडलियाँ एटम बाम का काम करती हैं, बिहारी वीर रस के रसिक थे।" —आदि

....

मृत्यु के कुछ पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्मभर की घटनाएँ एक एक कर के सामने आती हैं ....

आधी रात बीत जाने के बाद नींद हल्की आती है। दिन भर की चिन्तायें एक एक करके उसके सामने स्वप्न में परिणत होती आती हैं ...

वजीरासिंह, पानी पिला दे।

वजीरा जी सिगरेट पिलाइये।

स्वप्न चल रहा है सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये पर सरकार ने हम तीमियों की एक घांघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती...एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे...ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।

स्वप्न चल रहा है। चिमिरिखी की कह रही है—'मैंने आप को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये, पति एम० ए० बी० एच० (मैट्रिक अपियर्ड, थर्ड फेल्ड) मिले... पर हम अबलाओं को पुलिस जैसा अधिकार क्यों न दिया, जिससे हम कवि सम्मेलनों में हूटिंग करने वालों को बिना वारंट जेल में ठूँस देतीं। मेरे चिर परिचित आपको याद है एक बार आपने हजरतगंज के चौराहे पर मुझको गिरने से बचाया था। आज वैसे ही श्रीपति जी की लाज आपको बचानी है...मेरी यही भिक्षा है। आपके आगे ऐनक उतारती हूँ।

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

दूसरे दिन समाचार पत्रों में लोगों ने पढ़ा—

बेलीगारद विराट कवि सम्मेलन में गला बन्द हो जाने से असफल हुए प्रथम श्रेणी के महाकवि खंजन।

'अवतसिंह के बैठक में थे मेरे मामा होते हैं।

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरुबाजार में है।'

... ...

कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्करा कर पूछा—'कैसी खुश्माई हो गई ?

'...धत्' कहकर लड़की दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

... ...

'कल'—देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ साफ़।

... ...

राम राम यह भी कोई लड़ाई है ?

... ...

गनीम कहीं दिखता नहीं...... ...

... ...

न मालूम मेहमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या पास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।

... ...

नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—हाँ, हाँ—वहीं जब आप घोड़े पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था।...आदि

'सिविल लाइन में मौसी के साथ।'

'मैं मुकारिम नगर में मामा के यहाँ रहता हूँ।'

... ...

कुछ दूर चलकर लड़के ने पूछा—'आप कविता भी करती हैं ?'

'आप से मतलब ?'—कहकर लड़की आगे निकल गई और लड़का मुँह ताकता रह गया।

... ...

'हाँ, करती तो हूँ, देखते नहीं ! इस मास की 'माधुरी' में मेरी एक कविता प्रकाशित हुई है।'

... ...

राम राम यह भी कवि-सम्मेलन है।

... ...

मिठाई-नमकीन की तो कौन कहे, किसी ने एक बूँद पानी तक की खबर न ली !

... ...

मेहमान, न जाने किस इंतजाम में फँसे हैं कि इधर आने का नाम तक नहीं लेते।

... ...

आप तो बड़ी जल्दी बोतल खतम कर आ गये, मगर वह आनन्द यहाँ कहाँ, जो रायबरेली के कवि-सम्मेलन में था, जिसके संयोजक स्वयं सूफ़नमेल जी थे। कितनी सुन्दर रचनायें थीं हुरदुर थी की वाह वाह, आपने भी उन्हें खूब समझाया था कि सूरदास की चौपाइयों में टियर गैस का असर है केशव की कुण्डलियाँ प्रेम बाण का काम करती हैं, बिहारी

मृत्यु के कुछ पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। उम्र भर की घटनायें एक एक कर के सामने आती हैं————

— — —

बजीरसिंह, पानी पिला दे।

— — —

स्वप्न चल रहा है सूबेदारनी कह रही है—मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये— पर सरकार ने हम तीमियों की एक घांघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती—एक दिन टांगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे—ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।

— — —

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्रांस और बेलजियम—६८ वी सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

— — —

आधी रात बीत जाने के बाद नींद उचटी जाती है। दिन भर की चिन्तायें एक एक करके उसके सामने स्वप्न में परिलक्षित होती जाती हैं———

— — —

मजीरा जी सिगरेट पिलाइये।

— — —

स्वप्न चल रहा है। पिमिरिक्षी जी कह रही हैं—मैंने आप को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये, पति एम० ए० बी० एड० (मैट्रिक अपियर्ड, बट फेल्ड) मिले— पर हम अबलाओं को पुलिस जैसा अधिकार क्यों न दिया, जिससे हम कवि सम्मेलनों में हूटिंग करने वालों को बिना वारंट जेल में ठूँस देती। मेरे चिर परिचित आपको याद है एक बार आपने हजरतगंज के चौराहे पर मुझको गिरने से बचाया था। आज वैसे ही श्रीपति जी की लाज आपको बचानी है—मेरी यही भिक्षा है। आपके आगे ऐनक उतारती हूँ।

— — —

दूसरे दिन समाचार पत्रों में लोगों ने पढ़ा—

बैलीगारद विराट कवि सम्मेलन में गला पर्ट हो जाने से असफल हुए प्रथम श्रेणी के महाकवि रंजन।

— — —

: ७ :

कहानी का उद्देश्य

जैसा कि राय कृष्णदास का कथन है "आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गई हो या लक्ष्यविहीन हो मनोरंजन के साथ-साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है"[1] अतएव साहित्य के अन्य अंग उपांगों की भाँति कहानी में भी एक निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है और कहानीकार जिसकी पूर्ति हेतु विविध प्रयोग अपनी कहानी में करते भी हैं लेकिन उसे हितोपदेश या ईसप की कहानियों की भाँति व्यक्त नहीं किया जाता। वस्तुतः कहानीकार जीवन के जिस लक्ष्य की ओर संकेत करता है या जो आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत करता है उसी को उद्देश्य भी कहते हैं और प्रत्येक सफल कहानी में जीवन की किसी न किसी मार्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना अपेक्षित है क्योंकि एक मात्र मनोरंजन ही कहानी का उद्देश्य नहीं है। श्री प्रभाकर माचवे के शब्दों में "कथा का साध्य मनोरंजन ही नहीं मनोरंजन भी है। मनोरंजन साधन मात्र है, लक्ष्य कुछ और है। तो फिर और कुछ क्या है? उपदेश। समाज सुधार। राष्ट्रीयता। प्रचार। वोद वाद। या यह सब कुछ नहीं केवल मानव मन को अधिकाधिक वस्तु की ओर सूक्ष्मग्राही अथवा संवेदनशील बनाना?"[2] साथ ही कहानी का उद्देश्य रस परिपाक भी नहीं है और श्री शिवनंदनप्रसाद की दृष्टि में तो "रस कविता का प्रधान गुण है, लेकिन यद्यपि रसात्मक व्यंजना का क्षेत्र सूत्र कहानी में भी अवश्य वर्तमान होना चाहिए फिर भी कहानी का उद्देश्य रस व्यंजना नहीं है। उसका उद्देश्य मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और मानवमन के विविध रहस्यों के उद्घाटन द्वारा जीवन की व्याख्या करना है। इसलिए कहानी में प्रासंगिक रूप से शृंगार, वीर करुण हास्य आदि सभी प्रमुख रस आ सकते हैं, पर कथा-सूत्र के विकास के मूल में अद्भुत रस ही रहता है जिसके प्रभाव से पाठकों का कौतूहल जागृत होता है। श्री जैनेन्द्रकुमार का विचार है कि "मन लगना सा बड़ी पहचान है ही पर मन

---

१ इक्कीस कहानियाँ—श्री राय कृष्णदास और श्री वाचस्पति पाठक (आमुख पृष्ठ ५)

२ आधुनिक हिंदी साहित्य—(पृष्ठ ७५)

लगा रहे। तोता मैना में मन लगता है पर लगा नहीं रहता। एक बार मन को पकड़कर जो बराबर जीवन में जिन्दा रहते आये, वह अच्छी कहानी है। जब जब आप अकुला जायें तब तब आप उसे पढ़ें और उसे जीवन में आप शाश्वत मानने लगें। मन लगे और जितने दीर्घकाल तक लगा रहे उतना ही अच्छा है।' मैक्सिम गोर्की ने कहा है कि सर्वश्रेष्ठ कहानी वह है जो लाठी की मार की तरह हृदय पर चोट करे। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है कि 'कहानी' का लक्ष्य घटनापरक होता है, उसमें आश्चर्यतत्त्व का विधान आवश्यक होता है, फलतः कहानी में पाठकों की कुतूहल-वृत्ति जागरित की जाती है। इसी से अँगरेजी के समीक्षक कहानी का प्रधान तत्त्व 'कुतूहल' (एलिमेंट आव् सस्पेंस) को ही मानते हैं। यह ठीक भी है। किसी कहानी के पढ़ने से 'आगे क्या हुआ या होनेवाला है' की जिज्ञासा के रूप में कुतूहल बराबर बना रहता है। कविता की भाँति किसी विशेष भाव में रमाए रखना उसका प्रयोजन नहीं, किसी निबंध की भाँति नूतन ज्ञानोपलब्धि उसका फल नहीं उसका मुख्य उद्देश्य होता है 'रंजन'। इस रंजन के लिए वह कुतूहल का सहारा लेती है। वह अनुसंधानात्मक चित्तवृत्ति की परितुष्टि करती है। कविता के द्वारा भी रंजन होता है, पर रंजन उसका गौण लक्ष्य होता है। 'रमण' के अनंतर रंजन उसमें भी होता है, किन्तु द्वितीय स्थानीय है कहानी में रंजन प्रथम स्थानीय है। चित्तरंजन की विशेषता कहानी में सबसे अधिक होती है।'[1] साथ ही सीन ओ फाउ लेन Seon O Faolain ने I think it is safe to say that unless a story makes this suitable comment on human nature on the permanent relationship between peop■ Their variety their expediness it is not a story in modren sense [2] नामक कथन द्वारा मानवता और मानव मूल्यों की व्याख्या न करनेवाली, तथा मनुष्य के शाश्वत भावों, अनुभूतियों और समस्याओं पर प्रकाश न डालने वाली कहानियों को किसी भी भाँति आधुनिक कहना उचित नहीं समझा है लेकिन साथ ही कलात्मक दृष्टि से कहानी में किसी भी उद्देश्य की अनुभूति अत्यंत परोक्षरूप में होनी चाहिए अन्यथा कहानी कहानी न रहकर प्रवचन और वार्ता बन जायगी। साथ ही कहानी के उद्देश्य में जीवन-मीमांसा तो नहीं परन्तु हाँ जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण की झाँकी अवश्य दृष्टिगोचर होती है और चरित्र-प्रधान कहानियों में तो स्पष्टतः चरित्र-चित्रण के रूप में ही या तो मानसिक विश्लेषण किया जाता है या फिर लेखक के जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण की अभिव्यंजना की जाती है। इधर आधुनिक कहानियों में तो उद्देश्य के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होगी

---

१ हिंदी का सामयिक साहित्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र (पृष्ठ १४८)

२ The Short Story by Sean O Faolain Page 151

कहानी का उद्देश्य

७:

जैसा कि राय कृष्णदास का कथन है "आख्यायिका चाहे किसी लक्ष्य को सामने रखकर लिखी गई हो या लक्ष्यविहीन हो मनोरंजन के साथ-साथ अवश्य किसी न किसी सत्य का उद्घाटन करती है"[1] अतएव साहित्य के अन्य अंग उपांगों की भाँति कहानी में भी एक निश्चित उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य रहता है और कहानीकार जिसकी पूर्ति हेतु विविध प्रयोग अपनी कहानी में करते भी हैं लेकिन उसे हितोपदेश या ईसप की कहानियों की भाँति व्यक्त नहीं किया जाता। वस्तुतः कहानीकार जीवन के जिस लक्ष्य की ओर संकेत करता है या जो आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत करता है उसी को उद्देश्य भी कहते हैं और प्रत्येक सफल कहानी में जीवन की किसी न किसी मार्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना अपेक्षित है क्योंकि एक मात्र मनोरंजन ही कहानी का उद्देश्य नहीं है। श्री प्रभाकर माचवे के शब्दों में "कथा का साध्य मनोरंजन ही नहीं मनोरंजन भी है। मनोरंजन साधन मात्र है, लक्ष्य कुछ और है। तो फिर और कुछ क्या है? उपदेश! समाज सुधार! राष्ट्रीयता! प्रचार! कोई वाद! या यह सब कुछ नहीं केवल मानव मन को अधिकाधिक मनुष्य की ओर सूक्ष्मग्राही अर्थात् संस्कृत बनाना?"[2] साथ ही कहानी का उद्देश्य रस परिपाक भी नहीं है और श्री शिवनंदनप्रसाद की दृष्टि में तो "रस कविता का प्रधान गुण है, लेकिन यद्यपि रसात्मक व्यंजना का अंश सूत्र कहानी में भी अवश्य वर्तमान होना चाहिए फिर भी कहानी का उद्देश्य रस व्यंजना नहीं है। उसका उद्देश्य मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों और मानवमन के विविध रहस्यों के उद्घाटन द्वारा जीवन की व्याख्या करना है। इसलिए कहानी में प्रासंगिक रूप से शृंगार, वीर करुण हास्य आदि सभी प्रमुख रस आ सकते हैं, पर कथा-सूत्र के विकास के मूल में अद्भुत रस ही रहता है जिसके प्रभाव से पाठकों का कौतूहल जाग्रत होता है। श्री जैनेन्द्रकुमार का विचार है कि 'मन लगना तो बड़ी पहचान है ही पर मन

---

१ इक्कीस कहानियाँ—श्री राय कृष्णदास और श्री वाचस्पति पाठक (आमुख पृष्ठ ५)

२ आधुनिक हिंदी साहित्य—(पृष्ठ ७५)

लगा रहे। तोता मैना में मन लगता है पर लगा नहीं रहता। एक बार मन को पकड़कर जो बराबर जीवन में जिन्दा रहते आये, वह अच्छी कहानी है। जब जब आप अकुला जायें तब तब आप उसे पढ़ें और उसे जीवन में आप शाश्वत मानने लगें। मन लगे और जितने दीर्घकाल तक लगा रहे उतना ही अच्छा है।' मैक्सिम गोर्की ने कहा है कि सर्वश्रेष्ठ कहानी वह है जो लाठी की मार की तरह हृदय पर चोट करे। श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र का मत है कि 'कहानी' का लक्ष्य घटनात्मक होता है, उसमें आश्चर्य का विधान आवश्यक होता है, फलतः कहानी में पाठकों की कुतूहल-वृत्ति जागरित की जाती है। इसी से अँगरेजी के समीक्षक कहानी का प्रधान तत्त्व 'कुतूहल' (एलिमेंट आव् सस्पेंस) को ही मानते हैं। यह ठीक भी है। किसी कहानी के पढ़ने से 'आगे क्या हुआ या होनेवाला है' की जिज्ञासा के रूप में कुतूहल बराबर बना रहता है। कविता की भाँति किसी विशेष भाव में रमाए रखना उसका प्रयोजन नहीं, किसी निबंध की भाँति नूतन ज्ञानोपलब्धि उसका फल नहीं उसका मुख्य उद्देश्य होता है रंजन। इस रंजन के लिए वह कुतूहल का सहारा लेती है। वह अनुभवनात्मक चित्तवृत्ति की परितुष्टि करती है। कविता के द्वारा भी रंजन होता है, पर रंजन उसका गौण लक्ष्य होता है। 'रमण' के अनंतर रंजन उसमें भी होता है किन्तु द्वितीय स्थानीय है कहानी में रंजन प्रथम स्थानीय है। चित्तरंजन की विशेषता कहानी में सबसे अधिक हावी है।'[1] साथ ही शोन ओ फाउलेन Seon O' Faolain ने I think it is safe to say that unless a story makes this suitable comment on human nature on the permanent relationship between peop e Their variety their expediness, it is not a story in modren sense [2] नामक कथन द्वारा मानवता और मानव मूल्यों की व्याख्या न करनेवाली, तथा मनुष्य के शाश्वत भावों, अनुभूतियों और समस्याओं पर प्रकाश न डालने वाली कहानियों को किसी भी भाँति आधुनिक कहना उचित नहीं समझा है लेकिन साथ ही कलात्मक दृष्टि से कहानी में किसी भी उद्देश्य की अनुभूति अत्यंत परोक्षरूप में होनी चाहिए अन्यथा कहानी कहानी न रहकर प्रवचन और वार्ता बन जायगी। साथ ही कहानी के उद्देश्य में जीवन-मीमांसा तो नहीं परन्तु हाँ जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण की झाँकी अवश्य दृष्टिगोचर होती है और चरित्र-प्रधान कहानियों में तो स्पष्टतः चरित्र-चित्रण के रूप में ही या तो मानसिक विश्लेषण किया जाता है या फिर लेखक के जीवन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण की अभिव्यंजना की जाती है। इधर आधुनिक कहानियों में तो उद्देश्य के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक अनुभूति ही प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होती

---

१ हिंदी का सामयिक साहित्य — श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र (पृष्ठ १४०)

२ The Short Story by Sean O Faolain Page 151

है अत आधुनिक कहानियाँ मनोवैज्ञानिक धरातल पर ही पूर्णत प्रतिष्ठित रहती है।

यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्रेष्ठतम कृतियों में कभी भी किसी वाद-विशेष का प्रचार उचित नहीं माना जाता है अतः कहानियों को आदर्शवाद और यथार्थवाद की संकीर्ण परिधि में बद्ध कर देना उपयुक्त नहीं है परन्तु बहुत से विचारकों ने साहित्य-सृजन के लक्ष्य पर विचार करते समय उक्त दो वादों की चर्चा की है अत संक्षेप में उन पर प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा। जैसा कि डॉ० भगीरथ मिश्र ने लिखा है वह धारणा जिससे प्रेरित होकर साहित्यकार ऐसे चरित्र अथवा ऐसी परिस्थितियों का चित्रण करता है जो मानव समाज के लिए अनुकरणीय है (यह आवश्यक नहीं कि वैसे चरित्र और परिस्थितियाँ सम्पूर्ण रूप में लोक में देखी और सुनी जायें), साहित्य में आदर्शवाद कहलाती है। और वह धारणा जिससे प्रेरित होकर साहित्यकार नित्यप्रति देखे सुने, भले बुरे चरित्रों और परिस्थितियों का चित्रण करता है यह अनिवार्यत यह ध्यान नहीं रखता कि ये चरित्र व परिस्थितियाँ मानव समाज की भलाई करेंगी या बुराई, साहित्य में यथार्थवाद कहलाती है।"[1] इस प्रकार चूँकि "आदर्शवाद अनेकता में एकता देखने का प्रयत्न करता है वह विशृंखलता में शृंखला, निराशा में आशा, दुःख में सुख-समाधान की प्रतिष्ठा करने का उद्देश्य रखता है"[2] अत आदर्शवादी कहानियाँ मानवीय जीवन की उच्च संभावनाओं पर ही आश्रित होती हैं। और इस प्रकार की कहानियों के रचयिता के सामने जीवन कैसा हो, यही उद्देश्य रहता है। परन्तु चूँकि "यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसे कल्पना के द्वारा विविध रंगों से अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिये काट छाँटकर उपस्थित करना"[3] अत यथार्थवादी कहानीकार का लक्ष्य या उद्देश्य जीवन का वास्तविक प्रतिबिम्ब अंकित करना ही रहता है और उठों कि आदर्शवादी कहानियाँ हमें आकर्षित कर सकती हैं या हमारे मानस में कुतूहल उत्पन्न कर सकती हैं परन्तु हममें अपनापन नहीं भर सकती तथा न उनके पात्रों को ही हम अपने निकट अनुभव कर सकते हैं वहीं यथार्थवादी कहानियाँ हमें जीवन की यथार्थता से परिचित कराने में पूर्ण सक्षम रहती हैं। स्मरण रहे कि जैनेन्द्र की इस उक्ति द्वारा कि "साहित्य वही है जो यथार्थ का सच्चा अक्स उतार कर हमें पेश करता है"[4] कहानियों का यथार्थवादी होना उपयुक्त माना जा सकता है तथा इसमें

१ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ ४२२)
२ आधुनिक साहित्य—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी (पृष्ठ १६१)
३ हिन्दी साहित्य—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृष्ठ ४२७)
४ साहित्य का श्रेय और प्रेय—श्री जैनेन्द्रकुमार (पृष्ठ १६)

कोई संदेह नहीं कि यथार्थवादी कहानियों में वास्तविकता ही विशेष रूप से रहती है और "यथार्थवाद के अंतर्गत भी एक आदर्शवाद ही है"[1] तथा "आदर्शवाद और यथार्थवाद दोनों ही यथार्थ का चित्रण करते हैं। जिसे हम यथार्थवाद कहते हैं, वह जीवन की साधारणता का चित्रण हमारे सम्मुख उपस्थित करता है और जिसे हम आदर्शवादी साहित्य कहते हैं, वह जीवन के असाधारण व्यक्तित्व की सृष्टि करता है किन्तु है वह भी यथार्थ"[2] नामक विचारों द्वारा कतिपय समीक्षकों ने यथार्थवाद की श्रेष्ठता ही प्रतिपादित की है किन्तु यथार्थवाद का विरोध करने वाले विचारकों का भी नितान्त अभाव नहीं है।

स्वर्गीया सरोजनी नायडू ने एक स्थल पर कहा है कि "यथार्थवाद ही सब कुछ नहीं है। हमें उससे ऊपर उठना चाहिये।" चूँकि आधुनिक कहानीकारों ने विवाहित जीवन की व्यथता और स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्ध की स्वच्छंदता पर जोर देते हुए यथार्थ चित्रण के नाम पर वास्तविकता का ज्यों का त्यों हूबहू चित्रित करना प्रारंभ कर दिया। चूँकि स्वाभाविक ही इस प्रकार के चित्रों में पौरुषता और विलासिता की प्रधानता भी दीख पड़ने लगी अतः उनमें मानव की आत्मोन्नति नैतिक सजगता और शारीरिक स्वास्थ्य की मंजिल तक पहुँच पाने की क्षमता का अभाव ही रहा, यहाँ यह भी स्मरणीय है कि अंग्रेजी के प्रतिष्ठित कहानीकार डेम्स ओपनहेम से किसी लिखने वाले व्यक्ति ने पूछा कि क्या वे अपनी कहानियों के पात्रों को ठीक उसी रूप में चित्रित करते हैं जिस रूप में वे जीवन में देख पड़ते हैं? इस पर उन्होंने कहा कि बात इससे सर्वथा भिन्न है और कोई भी साहित्यकार जैसा अपनी आँखों से देखता है पूर्णतः वैसा ही साहित्य में ग्रहण नहीं करता बल्कि अपनी कल्पना और प्रतिभा का योग लेकर अपने विषय के अनुरूप किसी न किसी रूप में उसका संस्कार अवश्य करता है।[3] प्रेमचंद ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है और उनका कहना है कि "कहानी दीखती तो यथार्थ है पर यथार्थ होती नहीं। उसकी खूबी यही है कि यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम हो। उसका मापदंड भी जीवन के मापदंड से अलग है। जीवन में बहुधा हमारा अंत उस समय हो जाता है जब यह वांछनीय नहीं होता। जीवन किसी का दायी नहीं है, उसके सुख दुख, हानि-लाभ, जीवन-मरण में कोई क्रम, कोई संबंध नहीं जान पड़ता पर कथा

१ साहित्य साधना और समाज—डा० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ १६६)

२ साहित्य साधना और समाज—डा० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ १६६ १६७)

३ When you build a story around a character do you use the character about as you find him in real life?

Practically never things and people as they are in real life wont do for short stories. They are only starting points spring board

—A Manual of Short Story Art: A. M. Glenn Clark pp. 118

मनुष्य के लिए यह अज्ञेय है। लेकिन कथा-साहित्य मनुष्य का रचा हुआ अगम् है और परिमित होने के कारण संपूर्णतः हमारे सामने आ जाता है और जहाँ यह हमारी मानवी न्याय बुद्धि का, अनुभूति का अतिक्रमण करता हुआ पाया जाता है, हम उसे दंड देने के लिए तैयार हो जाते हैं। कथा में अगर किसी को सुख प्राप्त होता है तो इसका कारण बताना होगा, दुख भी मिलता है तो उसका कारण बताना होगा। यहाँ कोई चरित्र मर नहीं सकता जब तक कि मानव न्यायबुद्धि उसकी मौत न माँगे। स्रष्टा को जनता की अदालत में अपनी हर एक कृति के लिए जवाब देना पड़ेगा। कला का रहस्य भ्रांति है, पर वह भ्रांति जिस पर यथार्थ का आवरण पड़ा हो।"[1]

इधर कतिपय विचारकों ने तो मध्यवर्ती मार्ग को ग्रहण करना ही उपयुक्त समझा और इसीलिए प्रेमचंद ने 'यथार्थोन्मुख आदर्शवाद' का समर्थन करते हुए ऐसी कहानी को उत्तम माना है जिसमें यथार्थ और आदर्श दोनों का ही समन्वय रहता है। यों तो जैनेन्द्र जैसे विचारक की इस उक्ति द्वारा कि "साहित्य इस प्रकार आदर्श को यथार्थ से और यथार्थ को आदर्श से तोलता और जोड़ता रहता है"[2] तथा डॉ० भगीरथ मिश्र जैसे निष्पक्ष समीक्षक के इस मतानुसार कि "साहित्य आदर्श और यथार्थवाद दोनों ही को अपनाये। साहित्य का भवन यथार्थवाद की नींव पर खड़ा हो, पर उसके विकास, प्रसार और ऊँचाई के लिए आदर्शवाद का विस्तृत और उन्मुक्त आकाश रहे"[3] यही भास होता है कि अधिकांश आलोचक यथार्थोन्मुखी आदर्शवादी साहित्य को ही सर्वजन सुलभ, सर्वमान्य तथा सर्वहितकारी मानते हैं परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो इस प्रकार का यथार्थोन्मुखी आदर्शवादी दृष्टिकोण कदाचित ही किसी कहानी में दृष्टिगोचर होता हो और इसलिए हमारी दृष्टि में तो कहानियों को किसी भी वाद विशेष की संकीर्ण परिधि में बद्ध करना ही उचित नहीं है। Draw life to life and your moral will draw itself अर्थात् मनुष्य को मनुष्य के रूप में अंकित करो शिक्षा आप ही उद्भासित होगी नामक दृष्टिकोण ही कहानीकार का होना चाहिए और इस प्रकार जैसा कि स्वयं भी रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने कहानी का उद्देश्य पूछे जाने पर कहा था 'कहानी लिखने का उद्देश्य कहानी लिखना है। मैं कहानी इसलिए लिखता हूँ कि कहानी लिखने की मेरी इच्छा होती है किसी विशेष अभिप्राय से कहानी नहीं लिखी जाती""""साहित्य न तो विज्ञान ही है और न धर्मशास्त्र। यदि कुछ निर्दिष्ट नियमों के अनुरूप ही पात्रों का चरित्र-चित्रण उसमें किया गया तो वे चित्र प्राणहीन ही होंगे। हो सकता है वे

---

१ कुछ विचार—श्री प्रेमचन्द (पृष्ठ ४८)

२ साहित्य का श्रेय और प्रेय—श्री जैनेन्द्र कुमार (पृष्ठ ८८)

३ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र (पृष्ठ ४२२)

आकर्षक हो लेकिन उनसे हम जीवित विश्व का आदर्श न देख पायेंगे।' डॉ० राम रतन भटनागर का तो यह कहना है कि "कहानी एक कला है। कला का सर्वोच्च रूप वह है जहाँ वह प्रतिपादित वस्तु या लक्ष्य की ओर संकेत करती है।"[1] श्री विनयमोहन शर्मा के शब्दों में "कहानी का उद्देश्य सात्विक आनन्द प्रदान करना है और यह आनन्द तभी प्राप्त किया सकता है, जब हम जीवन के सत्य के साथ 'शिव' तक भी पहुँच सकें।"[2] श्री रामकुमार वर्मा ने भी कहानी के उद्देश्य पर विचार करते हुए लिखा है कि "उद्देश्य से मेरा तात्पर्य जीवन की किसी विशेष दशा के चित्रण से है। कई समालोचकों का कथन है कि कहानी केवल कला के लिए ही लिखी जानी चाहिए। उसमें उद्देश्य अथवा उपदेश की आवश्यकता नहीं है। कला का विकास ही उसका विकास है, यह बात सर्वांश में सत्य नहीं है। कला का विकास करना भी तो कहानी का उद्देश्य होना चाहिये। ऐसी स्थिति में यदि कहानी कला के विकास का ध्यान सामने रखते हुए जीवन की विशेष घटनाओं का उल्लेख कर दें तो इसमें हानि नहीं वरन लाभ ही होना चाहिए। अतएव जब कोई कहानी लिखी जाय तो लेखक को इस बात की चिन्ता न होनी चाहिए कि मैं इस कहानी को किसी उद्देश्य से लिखूँ। पर यह ध्यान होना चाहिए कि मैं इस कहानी को कला का रूप देता हुआ कहाँ तक जीवन के अंगों में घटा सकता हूँ। यही कहानी का उद्देश्य होना चाहिए।"[3] इसमें कोई सन्देह नहीं कि डॉ० रामकुमार वर्मा की विचार धारा टाल्स्टाय के इस मत के अनुरूप ही है कि कला केवल आनन्द ही नहीं, मानवता की एकता के साधन के रूप में वह व्यक्ति तथा मानवता के कल्याण के लिए मानव-मात्र में एक ही प्रकार की भावनाओं की उत्पत्ति तथा विकास के लिए आवश्यक है।[4]

आधुनिक कहानी का स्वरूप वर्गीकरण और उसके विधायक तत्वों पर विचार करते समय इस बात पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए कि कहानी-कला निरन्तर विकासशील रही है और समयानुसार उसमें परिवर्तन तथा परिवर्द्धन भी होते रहे हैं जिससे कि यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापक रूप में वह अपने विकास पथ पर भी है परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या किसी भी कहानी को

---

१ प्रबन्ध पूर्णिमा—डॉ० रामरतन भटनागर (पृष्ठ ८९)

२ दृष्टिकोण—श्री विनयमोहन शर्मा (पृष्ठ १२)

३ साहित्य समालोचना—डॉ० रामकुमार वर्मा (पृष्ठ ८६)

४ "And above all it is not pleasure but it is means of union among men, joining them together in the same feelings and indispensable for the life and progress towards well-being of individuals and humanity."

—What Is Art by Tolstoy

सफलता असफलता इन्हीं आधार शिलाओं पर निर्भर है ? इसमें कोई संदेह नहीं कि लगभग सभी कहानियों में कथावस्तु, पात्र और चरित्र चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, शैली और उद्देश्य नामक तत्त्व अवश्य पाए जाते हैं और ये कहानी के आकर्षण की निश्चित रूप से वृद्धि भी करते हैं लेकिन क्या कहानीकार के लिये इनका ज्ञान होना आवश्यक है। डा० कन्हैयालाल 'सहल' के शब्दों में "कहानी के रचना तंत्र को पढ़कर कहानीकार नहीं बनते हैं—जीवन की अनुभूतियों से ही कहानीकार बनते हैं।" इस प्रकार विद्यार्थियों की सुविधा के लिए और कहानी-साहित्य का मर्म समझने के लिए ये तत्त्व उपयोगी अवश्य सिद्ध हो सकते हैं परंतु श्री जैनेन्द्रकुमार की दृष्टि में "शरीर-विज्ञान का शास्त्र जाने बिना भी लोग पिता बन जाते हैं-टेकनिक जाने बिना भी उसी तरह कहानी लिखी जा सकती है। वास्तव में जो टेकनिक जानता है वह कहानी नहीं लिख सकता। कहानीकार के पास यदि टेकनिक है तो वह उसी की है।" वस्तुतः साधारण पाठक तो कहानी की टेकनिक या कला से अनभिज्ञ ही रहता है और वह तो केवल यही देखता है कि जिस वस्तु का अध्ययन कर रहा है उसके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है। पाश्चात्य समीक्षक हेनरी हडसन ने तो—"Singleness of aim and singleness of effects are therefore the two great cannons by which we have to try the value of a short story as a piece of art. नामक उक्ति द्वारा सरल और श्रेष्ठतम कहानी में एकध्येयता तथा प्रभाव की एकता को ही आवश्यक माना है तथा यदि कोई कुशल कहानीकार इन दो बातों को ध्यान में रखकर अपनी कृति का निर्माण करता है तो कोई आश्चर्य न होगा कि उपरिलिखित छः तत्त्व आपसे आप उसमें आ जायेंगे। इस प्रकार जैसा कि डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है—"जिस कहानीकार की अनुभूति, संवेदना, जितनी गहरी और महान होगी, उसकी कहानी उतनी शाश्वत होगी और जिस कहानीकार का उद्देश्य, उसका व्यक्तित्व जितना महान होगा उसकी कहानी उतनी ही महान होगी।"[१]

---

१ हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल (पृष्ठ १४१)